जवानो !

जवानो !

विचार और कर्त्तव्य प्रेरक निबन्ध

महात्मा भगवानदीन

पूर्वोदय प्रकाशन
७, दरियागंज दिल्ली

चौथा संस्करण
१९५६

मूल्य : तीन रुपये

उद्योगशाला प्रेस, किंग्सवे, दिल्ली में मुद्रित और पूर्वोदय प्रकाशन,
दिल्ली की ओर से दिलीपकुमार द्वारा प्रकाशित

क्या, कहां ?

द्वितीय खण्ड : विश्वास १११—२२५

यह पुस्तक

महात्मा भगवानदीन जीके इन लेखों पर लिखना यों मेरे लिए मुनासिब नहीं है; एक तो मैं खुद जवान हूं, दूसरे वह मेरे अभिभावक हैं. फिर भी यह सच है कि जवानोंके लिए इससे बढ़कर चीज़ भारतकी भाषाओंमें मैंने दूसरी नही देखी. इसमें आग है जो बिना चेताए रह नहीं सकती. सोतेको इससे जागना होगा. ये विचार व्यक्तित्वको ऐसा दहका सकते हैं कि कभी उसे राख न बनना पड़े, सदा ही वह अंगारा बना रहे.

लेकिन अंगारेमें जो खतरा है वह भी इस पुस्तकमें नहीं है. क्रांति, विप्लव, ज्वाला और ऐसे शब्दोंको शक्ति अधिकांश नकारात्मक होती हैं. उनके खतरेको धर्मकी ओरसे सांत्वना, संतोष और मिठासके शब्द लाकर कुछ ठंडा करना आवश्यक होता है. इस पुस्तककी आग सच्ची आग है, फिर भी (या शायद इसीलिए) ठण्ठी आग है. लेकिन वह ठण्डक वहां धर्मकी ओरसे नहीं आती, जो तर्कातीत है, इससे जवानको जंचता नहीं है. वह तो सहज बुद्धि और सामान्य विवेककी भाषामें ऐसे दी गई है कि अन्दर बस जाती है. विनम्रता, कोमलता, आर्द्रता, संवेदन-शीलता आदि गुणोंकी क्षतिपर विक्रम, पराक्रम, दृढ़ता, पौरुष आदिको नहीं खड़ा किया गया है. बल्कि सबका वहां समन्वय है. समन्वय है, इससे वह

द्वितीय खण्ड : विश्वास   १११—२२५

यह पुस्तक

महात्मा भगवानदीन जीके इन लेखों पर लिखना यों मेरे लिए मुनासिब नहीं है; एक तो मैं खुद जवान हूं, दूसरे वह मेरे अभिभावक हैं. फिर भी यह सच है कि जवानोके लिए इससे बढ़कर चीज़ भारतकी भाषाओंमें मैंने दूसरी नही देखी. इसमें आग है जो बिना चेताए रह नहीं सकती. सोतेको इससे जागना होगा. ये विचार व्यक्तित्वको ऐसा दहका सकते हैं कि कभी उसे राख न बनना पड़े, सदा ही वह अंगारा बना रहे.

लेकिन अंगारेमें जो खतरा है वह भी इस पुस्तकमें नहीं है. क्रांति, विप्लव, ज्वाला और ऐसे शब्दोंको शक्ति अधिकांश नकारात्मक होती हैं. उनके खतरेको धर्मकी ओरसे सांत्वना, संतोष और मिठासके शब्द लाकर कुछ ठंडा करना आवश्यक होता है. इस पुस्तककी आग सच्ची आग है, फिर भी (या शायद इसीलिए) ठण्ठी आग है. लेकिन वह ठण्डक वहां धर्मकी ओरसे नहीं आती, जो तर्कातीत है, इससे जवानको जंचता नहीं है. वह तो सहज बुद्धि और सामान्य विवेककी भाषामें ऐसे दी गई है कि अन्दर बस जाती है. विनम्रता, कोमलता, आर्द्रता, संवेदन-शीलता आदि गुणोंकी क्षतिपर विक्रम, पराक्रम, दृढ़ता, पौरुष आदिको नहीं खड़ा किया गया है. बल्कि सबका वहां समन्वय है. समन्वय है, इससे वह

सात्विक भी है. अब जब कि विश्वके इतिहासमें एक संधि-स्थल आ गया है; पुरानी झड़ रही और एक नई संस्कृति उग रही है, ऐसे समय आत्म-निर्माण और चरित्र-निर्माणकी यह पुस्तक निश्चय ही बहुत उपादेय होगी.

पुस्तककी भाषा और शैलीपर भी ध्यान जाए बिना नहीं रहता, वह इतनी मौलिक और इतनी ताज़ा है. भाषा पर इधर बड़ा बुद्धिभेद रहा है. बहुतोंको टटोल रही है भाषाके उस नमूनेको जिसमें हिन्दुस्तानकी ज़िन्दगीका अक्स हो और जो सही-सच्ची राष्ट्रकी भाषा हो. मेरे ख्यालमें वह नमूना कहीं है तो यहां है.

दरियागंज, दिल्ली
९ अप्रेल, १९४८

जैनेन्द्रकुमार

आत्मा की आजादी

एक

आज तुमने खूब काम किया है, इतना कि बदन थककर चूर हो गया है. किया है, तो ठीक किया है. काम कर डालनेकी खुशी भी है, पर वह निकल तो पा ही नहीं रही, उसको दबाकर बैठ गई है अनेकों चुड़ैलें, घरकी औरतें नहीं, वे भूतकी बहनें भी नहीं, जो आदमी के अनगढ़ दिमागने गढ़ रखी है. वह है चिन्ता चुड़ैलें ! चिन्ताएं किस बातकी ? —यही नोन-तेल-लकड़ीकी. जवानीका नक्शा खींचते समय किसी गाव-के कविने ठीक ही कहा है :

भूल गये राग-रंग, भूल गये छकड़ी.
तीन चीज़ याद रहीं, नोन-तेल-लकड़ी.

हां, वे चुड़ैलें बेशक घेरे हुए हैं. क्या वे सबको घेरे हुए हैं ? नहीं, सबको तो नहीं, पर बहुतोंको. कुछको बिल्कुल नहीं ? तुम उन कुछ-में शामिल क्यों नहीं हो जाते ? तुम उन बहुतोंकी क्यों नकल करते हो, जो चुड़ैलोंसे आंख लड़ा बैठे हैं ? वे चुड़ैलें हैं, सही, पर वे बिना बुलाए नहीं आतीं. जो नहीं बुलाता, उसके पास नहीं फटकतीं. इतना

ही नहीं, उससे कतराती रहती हैं, उससे बचकर निकलती हे, उससे उन्हें डर लगता है, उनको उसमेंसे आग निकलती मालूम होती है, उन्हें उसके पास जाकर जल मरनेका डर रहता है. किसी भारतीय विद्वान्ने 'शंका भूत और मनसा डायन' वाला सूत्र कहकर गागरमें सागर भर दिया है. चिन्ताएं अपने आप कुछ हे ही नहीं, वे तुम्हारे मनकी गढ़ी हुई हैं, और तुम बने हुए हो मनके गुलाम ! मनमालिकके दुःखमें तुम-गुलामको दुःखी होना ही पड़ता है. बनो तुम मनके मालिक. फिर वे चुड़ैलें तुम्हारा कुछ न बिगाड़ सकेंगी. मनमें रहते भले ही मन को सताती रहें, पर तुम्हारा कर कुछ भी नहीं सकेंगी. गुलामकी तकलीफोंका असर मालिकपर बहुत कम हुआ करता है,कभी-कभी तो बिल्कुल भी नहीं.

तुम सोच रहे होगे कि यह क्या बात कही जा रही है ? मैंने कोई चुड़ैल तैयार नहीं की. रही मनकी गुलामीकी बात सो दुनियामें निन्या-नवे प्रतिशतका यही हाल है, कुछ मैं ही अनोखा नहीं हूं. मनपर अधि-कार कुछ इने-गिने साधु ही जमा सकते हैं, गृहस्थ ऐसा नहीं कर सकते. मैं गृहस्थ बनाना चाहता हूं. साधु बनना होता तो मुझे किसी नसीहत की जरूरत नहीं थी. मैं आप ही सैकड़ोंको सलाह बता देता. 'पर उपदेश कुशल सब कोई.'

ठीक, बिल्कुल ठीक. मैं तुमको न साधु बनाना चाहता हूं और न परमार्थी. मुझे तो परमार्थ भी स्वार्थमें छिपा बैठा दिखाई देता है. स्वार्थी तो बनोगे ? मैं तो तुमको उस बीजका पता दे देना चाहता हूं जो तुम्हारे मनमें जड़ पकड़कर बड़ा होता रहता है और कुछ ही दिनोंमें चिन्ता-फलोंकी फ़सल पैदा कर डालता है. उस बीजको गला डालो, पेड़ न उगेगा. 'न होगा बांस न बजेगी बांसुरी.' गलानेमें थोड़ी तक-लीफ तो होगी, पर बहुत आरामके लिए उसे सहन करना ही होगा. फोड़ा चिरवाकर दुनिया आरामका उपभोग कर रही है. तो तुम ज़रा-सी तकलीफ़से क्यों डरते हो ? डर आप ही कौन कम तकलीफ़

वाली चीज़ है ? डरकी तकलीफ़ उस तकलीफ़मे कहीं ज्यादा वज़नी मिलेगी, जिस तकलीफ़को बरदाश्त करनेकी बात मं तुमको बतलाने वाला हूं.

यह याद रहे कि सिरजन शक्ति, यानी कुछ कर डालनेकी ताकत, चिन्ताओंके बोझसे दबकर बुड़बुडानेमे नही रहती. वह चिंतनशीलतामें है, चिन्तित अवस्थामे नहीं. चिन्ता करना और चिन्तामे फंसना—दो अलग चीजे हैं. सोचना सोचमे पड़ना नही है, अन्तर है. जब हम किसी आफ़तमे हों और जान-बूझकर किसी कोनेमे बैठकर उस आफतसे निकलनेका रास्ता ढूंढ निकालनेकी सोचने लगे, तो वह कहलाएगा चिन्ता करना या सोचना और किसी आफ़तमे पडकर हम घबराकर 'हाय मरे, हाय मरे' करने लगे या यह कि 'अब क्या होगा, अब क्या होगा' की फ़िक्रमे पड़ जाएं, तो यह कहलाएगा 'चिन्तामे फंसना या सोचमे पड़ना.' एकमे चिन्ता हमारे बसमे होती है, वह हमारी दासी होती है, हमारा हाथ बंटाती है, कामकी होती है. दूसरेमे वह हमपर सवार रहती है, हम उसके दास होते हैं, वह हमारी कमर तोड़ देती है. तभी हम उसको 'चुड़ैल' कहकर पुकारते है. इस चुड़ैलके बसमे रहकर जो कुछ हम करते है, वह उसका काम होता है; हमारा तो धीरे-धीरे वह काम ही तमाम कर डालती है ! हमको वह इस बेढब तरीकेसे चूसती है कि हमको उससे चूसे जानेका पता तक नही चलता. पर जब वह हमारी दासी बनकर काम करती है तब उसका सारा काम हमारा काम हो जाता है. वह हमारे सिरजनमें सहायक बन जाती है, हमसे हमारा काम ही नही, समाजका भी काम करा लेती है. चिन्ता-चेरीसे नहीं, बचना है हमें चिन्ता-चुड़ैलकी चालोसे. 'चिन्ता' नामसे स्त्री जंचती है, वह है भी स्त्री ('स्त्री' शब्द यहां कायरताकी तरफ इशारा करता है, स्त्री रूप-धारी मानवकी तरफ नही). दुर्गावती, लक्ष्मीबाई, पार्वती सीता स्त्रियां नहीं थीं. आर्ककी जोन भी स्त्री नहीं थी. विजयलक्ष्मी भी स्त्री नहीं है. सैकड़ों जाटनियां और गोरखनें भी स्त्रियां नहीं हैं. रूस

में तो स्त्रियां ढूंढनेसे दो-चार ही मिलेंगी. गरज यह कि जो कायर वह स्त्री, चाहें वह मर्द ही क्यों न हो. खैर, चिन्ता कायरता है, वह कायरों में ही रहती है, बहादुरोंमें नहीं.

बताइए, आप अपनी शुमार किसमें करते हैं ? कायरोंमें अपना नाम लिखाकर आप आफ़तोंसे बचना भी चाहें तो नहीं बच सकते. लेंडी कुत्ता पूंछ दबाकर दो-चार जख्मोंसे छुटकारा पा सकता है, पर डरने सिकुड़नेसे नहीं. कायरताका धर्म है डरना, डरका धर्म है सिकुड़ना, सिकुड़नेका धर्म है बिना मौत मरना. अब कहिए, आप क्या कहते हैं ? पूंछ उठाकर दो-चार ज़ख्म खाना-खिलाना पसन्द करते हैं या मरना पसन्द करते हैं ? अगर आप हिन्दू हैं तो मरनेके बाद फिर और जीना है; अगर आप मुससमान हे तो आक़बतमें दोज़खकी आगमें जलना है. छटकारेसे छुटकारा नहीं मिलेगा. बन्धनोंमे कुछ बदन फुला बन्धन तोड़कर ही छुटकारा नसीब होगा.

आइए, अब उन्हीं बन्धनोंको समझ लें और यह भी समझ लें कि उनको किस तरह तोड़ना होगा.

(१) जिस काममें हम लगे हुए है, अगर उसमें हम जबरदस्ती लगाए गए हैं—फिर चाहें उसमें हमें हमारे कमीने पेटने लगाया हो या रिस्तेदारोंने. उसमें लगे नहीं रहेंगे, उसमें लगे चैन मानें यह तो एक ओर.

उपाय ? तदवीर.

अपनेको अकेला समझो, अकेला.

हस्तिनापुर (मेरठ) के जंगलोंमें मेरे पास एक घोड़ी थी. कभी-कभी वह रस्सा तुड़ाकर भाग जाती थी. दिन भर जंगलमें चरती, रातको डरके मारे आश्रमके फाटकपर आ खड़ी होती. दो दिनके बाद रातका आना भी बन्द हो जाता. फिर दिनों गायब रहती. पन्द्रह-बीस दिनके बाद मवेशीखानेमें इतवी मोटी मिलती कि उसके लिए यह कहना झिझकसे खाली न होता कि क्या यह वही मरियल घोड़ी है.

आपका भी यही हाल होगा. डरसे आपका जो अपनापा हो गया है, वह अपने पांवपर खड़े होनेसे ही जाएगा.

(२) उन ज़िम्मेदारियोंके बोझको सिरसे उतारकर फेंक दो, जिन्होंने तुम्हारी उपयोगिताको दबा रखा है या कुचल डाला है. तुम जो बनना चाहते थे, उसकी याद तकको, उन ज़िम्मेदारियोंने हड़प कर लिया है.

यह किस तरह ?

झिझक है, उसे छोडो. उतारकर बोझा फेंको तो, हलके हो जाओगे. हलके होकर वह तदबीर पूछनेकी जरूरत ही न रह जाएगी.

(३) उन हट्टे-कट्टे निठल्लोंको खिलाना छोड़ दो, जिनकी वजह-से तुमको अपनी ताकदसे ज्यादा काम करना पड़ता है.

यह क्यों कर ?

उनके हट्टे-कट्टेपनपर नज़र डाल जाओ तो तुमको पता लगेगा कि तुम उनका भला न कर, बुरा ही कर रहे हो. तुम्हारे भरोसे वे अपने बलका उपयोग ही नही करते. अपनी ताकतसे काम न लेना बदहज़मी पैदा करता है. बदहज़मी बीमारी और बीमारी मौत. इस मौतके ज़िम्मेवार तुम.

(४) अपनी ज़रूरतोंकी कतर-ब्योंतसे रिवाजोंका पेट न भरो. यह तो मुश्किल है. मुश्किल नहीं, आसान है. यह देखनेमें मुश्किल और करनेमें आसान है. इसको छोड़ते ही तुम्हारी ताक़त बढ़ जाएगी और समाजके लिहाज़से भी तुम ज़्यादा कामके आदमी बन जाओगे.

(५) आख़िरी बात, पर सबसे ज़रूरी. ज़बर्दस्ती जिसको तुम अपना मालिक, हाकिम या गुरु मान बैठे हो, उसे वैसा मानना छोड़ दो.

यह सुनकर जी फड़क उठा. यह तो आपने मनचाही बात कही. पर यह हो कैसे ? यह बताइए.

बेशक यह मुश्किल काम है. यह उतना ही मुश्किल है जितना अपने हाथसे खाए जहरसे बचना. जैसे अपने हाथसे खाए ज़हरके मामलेमें

देर करना ज़िन्दगीसे हाथ धोना होता है, ठीक उसी तरह इस मामलेमें देर करना भी कई ज़िन्दगियोंका बिगाड़ना होता है. इस तरहका डरपोकपन सारी जिन्दगीको खराब ही नहीं कर देता बल्कि इतना दुःख भी देता है कि उसके सामने वह दुःख कुछ नहीं है जो हमको अपनी जा-बेजा इच्छाओंके पूरा करनेमे उठाना पड़ता है.

गीता पढ़कर लोग कृष्ण न बनकर अर्जुन बनते जा रहे हैं. पर अर्जुन वह जो गीता सुननेसे पहले था यानी कायर अर्जुन, क्लीब अर्जुन. उनको अपनेसे ही डर लगने लगा है. अपनेसे डरना सबसे बड़ी भूल है, पर यह हो सबसे रही है. असफलताका यही कारण है. इस डरने ज़िन्दगी मिट्टी कर रखी है. इसने ना-उम्मेदीको जन्म दिया है. ना-उम्मेदी और गुलामी बहनें-बहनें हैं.

श्रीकृष्णकी सीख देखनेमे ऐसी जंचती है, मानो अर्जुनको कह रहे हों—"अपना मतलब निकाल, किसीकी परवाह न कर." पर वास्तवमें बात ऐसी है नहीं वे तो भीष्म और द्रोण जैसे महारथियोंको उस पापसे छुड़ाना चाहते थे, जो वे दुर्योधनके, अपनी अन्तरात्माके विरुद्ध, नौकर बनकर कर रहे थे. अर्जुन भी कुछ इसी तरहकी भूल करनेकी सोच बैठा था और यदि कृष्ण उसके सारथि न होते तो कर भी जाता. फिर जानते हो, उसकी ज़िन्दगी कैसी होती ? कहीं मुंह दिखाने लायक न रह जाता.

अब अगर तुम सुखी होना चाहते हो तो यह काम करना ही होगा. इस ज़बर्दस्त बन्धनको तोड़कर ही सुखी हो सकते हो. तो भी आओ, यह समझ लें कि ऐसा करना पाप तो नहीं है. अर्जुनको भी यह शंका हुई थी. उसकी तसल्लीकी गई थी, टाला नहीं गया था. तुम्हें भी टाला नहीं जाएगा, तुम्हारी तसल्ली की जाएगी.

तुम्हें जो सलाह दी जा रही है, वह झूठे देवताओंको उठा फेंकनेकी दी जा रही है. ज़बर्दस्तीके गुरुओं व मालिकोंको धता बतानेकी दी जा रही है. इसमें तुम्हारी खोटी वासनाओंकी मदद नहीं की जा रही और

न लालच या घमण्डको भड़काया जा रहा है. अराजकताका सबक भी इसमें कहीं नहीं है. यह तो सीधी-साधी विज्ञानकी और सचाईकी बात है. ऐसी सचाईकी जो विज्ञानकी कसौटीपर कसी जा सकती है. हां, इसमें शक नहीं कि हम इस युगकी धोखेबाजियोंके तरफदार नहीं हैं और न उनको ठीक ही माननेको तैयार हैं.

हम यह भी नहीं कह रहे कि जवान जिसकी चाहे पगड़ी उतार फेंके, जिसका चाहे मज़ाक उड़ाए, जिसकी चाहे किताब जला दे, जिसकी चाहे आज़ादी छीन ले, जिसका चाहे धन लूट लें, या जो जीमें आए कर डाले. हम तो उसको अन्तर-आत्मा या जमीरका कहना मानना सिखा रहे हैं. मनकी न सुनकर उसको अन्तरात्माकी पुकार सुननेकी बात कह रहे हैं.

"मैं हूं"—यह हम सिखाएंगे ही. "मैं हूं" जिन्दगी है. "मैं हूं" यह तरक्कीकी राह है. "मैं हूं" नहीं, तो कुछ नहीं. हां, "मैं ही हूं"..."मैं ही सब-कुछ हूं"—इस घमण्डके गढको हम ढाना चाहते हैं. ये गढ़ आजके युगमें जगह-जगह खड़े हो गए हैं. ये उछृंखलताकी नींव पर खड़े हैं. आत्म-संयम वहां नामको भी नहीं है.

दिल काबमें रखकर, मन वशमें कर, ज़मीरकी रहनुमाईमें अन्त-रात्माके नेतृत्वमें किया हुआ गदर या क्रान्ति बनाती है बहुत, बिगाड़ती है बहुत थोड़ा. वह भी उसका बिगाड़ती है जो निकम्मा होता है.

उस क्रान्तिकी जय मनाते हुए, आजकी बात सोचो और आत्माकी आवाज़ सुनो.

काम करो, सोचमें न पड़े रहो

दो

वह गिरा कोई ! यह मत सोचो कि वह कौन है, दौड़ो, और उठाओ ! सोचमें पड़े कि मौक़ा हाथसे गया. जो गिरा है, वह पड़ा नहीं रहेगा, वह तुम्हारे उठानेके लिए नहीं गिरा है. कोई और जानदार दौड़ेगा और उसको उठाएगा, तुम हाथ मलते रह जाओगे. देखो, वह आया उठाने ! उठा दिया उसने !

लो, एक और गिरा और उसने हड्डी तोड़ ली. दौड़ो, लाओ एक गाड़ी और पहुंचाओ उसे अस्पताल ! दूसरा मौका, झिझके और गए ! लो वह पहुंच गया जानदार, वह है भी फुर्तीला. भारी पांव वाली औरतकी तरह चलकर दुनियामें निर्वाह नहीं होता. दूसरी भूल !

वह गिरा बच्चा ! आया मोटरके नीचे ! वह दौड़ा जानदार और उसने उठा लिया. तुम देखते के देखते रह गए ! क्या ख़ूब ! एक, दो, तीन—फ़ेल.

समझे कुछ, तकलीफ़ोंके मुक़ाबलेका एक ही उपाय है, वह है फ़ौरन सारे सीनको बदल दो; और अगर सोचो ही, तो कभी-कभी, और वह भी कुछ सैकण्ड.

हकीम घण्टों सोचे तो मरीज़की जान लेले. तांगा हांकने वाला यों सोचे तो दसियोंको गिरा दे. रेलगाड़ीका ड्राइवर यों सोचे तो गाड़ी लड़ाकर सैकड़ोंको इस दुनियासे चलता कर दे; और फौजका जनरल ऐसे सोचे तो हजारोंको तलवारके घाट उतरवा दे.

जो जानदार है, वह जवान है. बहुत सोचना जवानका काम नहीं. फुर्तीसे कर डालना जवानी है. सोचना, सोचना, सोचते रहना बुढ़ापा है. बुढ़ापा आधी मौत है. जीवन बचपन है. जानदार और कामका जीवन, जवानी है. उम्रका जवानीसे कोई रिश्ता नहीं.

बुढ़ापेका दूसरा नाम है ढीली जवानी. हरदम चुस्त, हरदम तैयार—यह हुआ ज़िन्दगीका एक उसूल. ग़लती करो, ग़लतियां करो, रोज़ करो, हर वक्त करो; पर एक तरहकी ग़लती दो बार न करो. जिससे भूलें नहीं हुई, वह कुछ है ही नहीं. जिन्दगी भूलोंके ढेरका एक नाम है. और अक़्ल, बुद्धि ? वह, वह है इन्हीं भूलोंसे सीखा हुआ पाठ, सबक़. किताबका सबक़ भूला जा सकता है पर भूलकी किताबका सबक़ दिलपर अमिट रहता है. यह सबक ज़िस्ममें जान फूकता है. यही फुर्ती बनकर मौके पर कूदता है और सबसे बाज़ी ले जाता है ! भूल करनेसे झिझकना, काम करनेसे झिझकना है. काम करनेसे झिझकना, जानको जान समझनेसे झिझकना है—जीते-जी मुर्दोमें अपना नाम लिखा लेना है. भूलकी पाठशालामें सीखे हुए सबक़ बड़े कामके होते है, वह बना देते है आदमीको निर्लेप ! वह सिखा देते हैं आदमीको दुनियादारीके तालाबमें कमलकी तरह रहना. करना, करना और करना, पर फंसना नहीं. अंग्रेजीमें इसको कहते है—इम्पर्सनल लाइफ (Impersonal life). गीतामें इसका नाम है अनासक्ति योग. अनासक्तिका नाम है—बेलाग ज़िन्दगी.

रामायण सुनते हो, महाभारतके फ़िल्म देखते हो, शियोकी मजलिसोंमें शामिल होकर हुसैनके कारनामे सुनते हो, सुन्नियोंकी ताज़ियेदारीमें हिस्सा लेकर भूखे-प्यासे मरनेकी तकलीफोंका जिक्र सुनते हो;

किसलिए ?—यही न कि तुम समझो कि तुम्हारे बुजुर्गोंने तकलीफोंमें पड़कर क्या-क्या खेल खेले ?

तकलीफोंमें हाथ डाल-डालकर ही तुम ज्ञानी और दानिशमन्द बन सकते हो. तकलीफोंका हाल पढ़-सुनकर उनमें पड़नेकी हिम्मत भले ही आजाए, पर अक्ल न आएगी, न आएगी. उलझनोंका सुलझाना सुलझानेसे आएगा. सुलझानेकी बात सुनकर न आएगा, सुलझाते देखकर भी न आएगा. सुलझाते हुएके हाथ चलते देख सकते हो, उसके मनकी ऊबनका अनुभव तुमको कैसे होगा ? तैरना तैरनेसे ही आता है, तैराकीपर किताब पढ़ नेसे नही.

तकलीफ़ोंसे बचकर भागना न बहादुरी है, न बुद्धिमानी ; वह कायरता है और है नादानी ! तकलीफ़ोंमें पड़े-पड़े सड़ना और भी बुरी बात है. यह ज़िंदगीकी दौड़के मैदानमें खड़ी की हुई रुकावटें हैं, खोदी हुई खाइयां हैं, गढ़ी हुई भूल-भुलैयां हैं. उन्हें तो कूदकर,लांघकर, रास्ता निकालकर पार करनेमें ही हमारा भला है.

अपने ऊपर आई हुई तकलीफोंका रोना औरोंके आगे रोकर न तुम अपना कुछ भला कर सकते हो और न किसी औरका. सीताके हरे जानेपर वाल्मीकि और तुलसीदास दोनोंने ही रामको रुलाया है और खूब रुलाया है; पर कहीं वह लक्ष्मणको भी रुला देते तो गई थी सीता और उसीके साथ हिंदुस्तानकी इज्जत. मेरी रायमें पौलस्त्य-वध और मानस दोनोंके राम कथा-कहानीके राम हैं. असली राम न रोए न सोचमें पडे. उन्होंने घबराये हुए लक्ष्मणको संभाला और एक क्षण खोए बिना लग गए सीताकी खोजमें और लगा लिया उसका पता.

रामके आगेके कारनामे हमें इसी नतीजे पर पहुंचनेको मजबूर करते हैं. रामने और अकेले रामने, घरसे सैंकड़ों कोस दूर वाले रामने लंका विजयकर जो चमत्कार दिखाया है, वह रोनेवाला राम नहीं हो सकता. करिश्मे रोऊ नहीं दिखाया करते. करिश्मे चमत्कारी व्यक्ति दिखाया करता है. चमत्कारीका होता है सुरसुराता सर, हिलता

हाथ और मौनी मुख. तुम भी अपनी तकलीफ़ोंमें गूंथ लिया करो चालोंकी एक माला. और तय कर लिया करो कि कोन-सी चाल कब और कैसे चली जाएगी. शतरंजके खेलमें जो जितनी चालें आगेकी सोच-कर चलता है, वही बाज़ी जीता करता है. अपनी चालोंकी जांच करते वक्त जितनी जल्दी तुमको अपनी भूल मिलेगी, दूसरेको नहीं. तुम्हारे सामने हर चालका उचान-निचान जो है. पर यह सब कामयाबीके साथ होगा तब, जब तुम भूलोंके स्कूलमें बिला-नागा जा चुके होगे और बेलाग ज़िंदगी बिताना सीख चुके होगे.

तजुर्बे हासिल करते हुए बेलाग जिंदगी बिताना जिंदगीका दूसरा उसूल है.

ज़िंदगी सोच-विचारकी चीज़ नहीं, वह तो बितानेकी चीज़ है. असलमें ज़िंदगी एक सीढ़ी है, तकलीफ़ें उसके डंडे है. सीढ़ीके ऊपर पहुंचना ज़िंदगी बिताने वालोंका काम है. डंडोंपर संभलकर पांव रखनेसे ही हम फिसलनेसे बच सकते हैं. एक पांव जमानेमें देर लगाएंगे पर दूसरा पांव उठानेमें जल्दी करेंगे. जितने डंडे हम चढ़ चुके हैं, उनके बारेमें सोचनेमें हम वक्त जाया नहीं करेंगे. हम सोचेंगे उन डंडों-की जिनपर पांव रखकर हमें ऊपर चढ़ना है. तभी आजादीकी छतपर पहुंच पाएंगे. यह ज़िन्दगी एक गोरख-धन्धा है. हमें चाहिए कि उसको सुलझानेके लिए कदम उठानेसे पहले हम दो-चार नहीं ; बल्कि बीसियों हल सोच लें और फिर एकके बाद एक लगातार काममें लाने लग जावें. ऐसा करनेसे हम झुंझलाहटके शिकार होनेसे बच जाएंगे. ऊब उठनेकी बात फिर पैदा ही न होगी.

सचाई बड़ी अच्छी चीज है. कुछ बुजुर्गोंने तो सचको ही खुदा कहा है. सच है भी इस नामके लायक़. सच जब ईश्वर ही है तो मौजूद भी होना चाहिए. पर यह याद रहे, वह आकाशकी तरह सब जगह मौजूद है. सचमें तकलीफ़ोंको मिटानेकी ताकत नहीं, उलझनोंको सुलझानेका बल नहीं. यह बल तो बालूके जर्रे जितनी व्यवहार-बुद्धि,

यानी अमली सूझ-बूझ में है. वही तकलीफ़ मिटा सकती है, उलझन सुलझा सकती है. आफ़तमें पड़नेपर न सचाई देह धरकर आएगी और न ईश्वर. उस वक्त काम करेगा तुम्हारा दुनियावी तजुर्बा, व्यावहारिक ज्ञान. वह बताएगा भूल किसतरह की है, क्यों हुई और कैसे ठीक होगी. सचाई और राम हिम्मतके दूसरे नाम हैं. या अगर ये अलग कुछ हैं तो खड़े-खडे—"वाह बहादुर, वाह बहादुर, खूब किया, खूब किया" कहते रहते है. क्या, क्यों और कैसेके झंझटमें सचाई और राम नहीं पडते. यह काम तो दानाई, बुद्धि और अक्लमन्दीका है.

क्या, क्यों और कैसेसे आगेका रास्ता तय करनेके लिए हमारी रोज-मर्राकी समझ हमारा साथ देगी. वह बतलाएगी कि काम कब और कैसे शुरु किया जाए ? कौन हमारे मददगार होंगे ? काम करनेकी लगना तुमको यह बता देगी कि तुमको क्या चीज़ चाहिए और तजुर्बा वह चीज़ें तुम्हारे सामने लाकर रख देगा. आदत हो जानेसे ये काम रोज-बरोज आसान होते चले जाएंगे. यह याद रखना चाहिए कि जाननेसे करना ज्यादा कामकी चीज़ है. संतोष होगा करनेसे, जाननेसे नहीं. जान-कारी कभी-कभी दुविधामें डाल देती है. दुविधा बेचैनी है. बेचैनीका नाम असन्तोष है. असन्तोषसे बचनेका तरीका है—बुराई-भलाईका आंकड़ा तैयार करना. वह आगे बताया जाएगा.

बुराई-भलाई के आंकड़े

तीन

सुख-दुःख बाहर कहीं नहीं है. हमारे सिवाय हमको कोई दूसरा न सुखी कर सकता है न दुखी! समझनेके लिए यों मान लीजिए कि हमारे अन्दर दो बक्स रखे हुए हैं. एक सुखका दूसरा दुःखका. न मालूम क्यों कुछ लोगोंको दुःखका बक्स खुला रखनेकी आदत पड़ गई है. कम ही लोग हैं, जो सुखका बक्स खुला रखते है. दुःखका बक्स खुला रखते-रखते हम यह समझने लग गए हैं कि सुखका बक्स हमारे पास है ही नहीं. और फिर औरोंके बतलानेपर भी यह नहीं मानते कि हमारे अन्दर सुखका बक्स मौजूद है. और यह कि हम अपने-आप सुखी भी हो सकते हैं. बहुत सुनाने समझानेपर जब हमको औरोंकी बात माननी पड़ती है तब हम दूसरा बक्स खोलनेकी कोशिश करते हैं और एकाध बार इसे खोलनेमें सफल भी हो जाते हैं. तब भी अपनी आदत-से मजबूर फिर उसको बन्द कर देते हैं और अपने दुःखका बक्स फिर खोल बैठते हैं. अभ्यासवश इसे बन्द करनेकी याद ही नहीं रहती और यों दुःख या कम-सुख और ज्यादा-दुःखके चक्करमें पड़कर अपनी तरक्की

की चालको बिल्कुल बन्द कर देते हैं या बहुत मन्द कर देते हैं.

सुख-दुःख बाहर न होते हुए भी इतनी बात जरूर है कि बाहरी मामलोंकी वजहसे हमारे बक्स खुलते और बन्द होते हैं. कौन बातें कौन बक्स खोलती हैं और कितनी देर खुला रखती हैं इसका हिसाब रखनेसे दोनों बक्सोंपर हमारा पूरा अधिकार हो जाएगा. एक तरहसे यों हम दुःखसे बच ही जाएंगे. हिसाबके बाद आंकड़ा यों मिलाना होगा.

भला या बुरा कोई भी काम जब तुम शुरू करते हो तो दो तरहकी बातें तुम्हारे सामने आया करती हैं; एक हिम्मत घटाने वाली और दूसरी हिम्मत बढ़ाने वाली. पहली बुरी लगती है, दूसरी भली.

सन् १९१० में मुझे गुरुकुल खोलनेकी धुन सवार हुई. कुछ दिन बाद वह लगन बन बैठी. अब क्या था ! अन्तरात्मा बोलने लगा. ऐसा हमेशा ही होता है, हरएकके साथ होता है. यानी लगन लगी और अन्तरात्मा जागा. इसी अन्तरात्माने बताया जो कहे 'गुरुकुल खोलना बुरा, 'गुरकुल खोलना मूर्खता', उसकी सुनना ही नहीं. और जो कहे, 'गुरु कुल खोलना भला', 'उसका खोलना बुद्धिमानी', 'उसके लिए यही ठीक समय है', उसके पास रहना घण्टों रहना और हफ्तों रहना. उसकी खूब सुनना-समझना. पर करना अपनी. अन्तरात्माकी आज्ञा मानी गई, मैं काममें लग गया. दुःख पास न फटका. ११ नवम्बर सन् १९१० को लगन लगी और ११ मई सन् १९११ को गुरुकुल खुल गया. खुलनेसे ठीक पहले बड़ी विपत्तियां आईं पर अन्तरात्माके बताए मन्त्रसे पलक मारते टल गईं.

'गुरुकुल खोलना बुरा है, वे वक्त है, भूल है', जिनकी यह राय थी वह मेरे दुशमन न थे. मेरे मित्र थे, मेरे भलेकी कहते थे. मगर उनकी यह राय सिर्फ मेरे लिए थी. मेरी जगह कोई और होता तो वे अपनी कुछ और ही राय देते. यह ठीक है वह मुझे तकलीफोंसे बचाना चाहते थे. जो हमें काम करनेसे रोकते हैं, वह हमारे दुशमन ही होते

हैं, ऐसा नहीं मानना चाहिए. ऐसी कठिनाइयां तुम्हारे सामने आवेंगी. उस समय तुम दूसरोंको खोटी-खरी न सुनाना, अपनी बातसे हटना भी नहीं. तुम अपना समय उनको समझानेमें न खोना जो तुम्हारे कामको ठीक नहीं समझते. तुम अपने वक्तका सदुपयोग करना उनको समझाने-में, जो तुम्हारे काम को ठीक समझते हैं. इसी तरह अपने तरफ़दारोंकी तादाद बढ़ाए जाना. ना-तरफ़दारोंकी गिनती अपने आप ही कम होती जाएगी. ना-तरफ़दारोंको तुम मत छेड़ो, वे तुम्हें नहीं छेड़ेंगे. इस सुख-दु:ख के आंकड़े मिलानेका सबक तुमको घरसे सीखना होगा. अगर तुम यह चाहते हो कि तुम्हारे बच्चे तुमको काम करते हुए न छेड़ें तो तुम भी उनको खेल खेलते न छेड़ो. अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारी स्त्री तुम्हें दोस्तोंके सामने हल्की बात न कह बैठे, तो तुम भी उससे उसकी सहेलियोंके सामने ऐसी बात कह बैठनेकी भूल न करो.

घरेलू आँकड़े बनाते-बनाते सामाजिक आँकड़े बनानेमें तुम अभ्यस्त हो जाओगे और इस तरह सुख-दुखपर बहुत दर्जे तक काबू पा जाओगे.

कुछ लोग समझते हैं सोचना काम है. सोचना काम नहीं, कामका हिस्सा समझा जा सकता है. पर वह तब, जब सोचने वालेने हाथ-पांव हिलाकर कुछ कर दिखाया हो. यदि ऐसा न हुआ, तो वह सोचना न काम है और न काम का हिस्सा. ऐसे सोच-विचारका नाम है निठल्ला-पन. आंकड़ेमें इस काममें लगा वक्त दाँई ओर, यानी खर्च के नाम ही डाला जाएगा—और वह भी बट्टे-खाते !

तुम्हारे बक्सका ताला बन्द है, उसकी ताली खो गई है. उसके खोलनेकी तरकीबें घंटों, दिनों, हफ्तों, महीनों सोचकर तुम ताला नहीं खोल सकते. पर एक कील लेकर ताले के सूराखमें डालकर उजड्डपन-से इधर-उधर हिलाकर हो सकता है कुछ देरमें तुम उसे खोलनेमें सफल हो जाओ. और कहीं तुम्हारा मन उधर हो और बुद्धिको थोड़ा कष्ट दो तो और जल्दी उसे खोल सकते हो. बड़ी-बड़ी ईजादोंकी जड़

में तुमको मिलेगा केवल 'लगे-रहना' और केवल 'काममें लगे रहना'. एक सफल उपन्यास-लेखकसे पूछा गया, "तुम उपन्यास-सम्राट् कैसे हो गए ?" उसने जवाब दिया, "एक दिन भी लिखनेकी नागा न करनेसे." मुलायम रस्सी पत्थरमें निशान कर देती है; बूंदें सिलपर गड़ा कर देती हैं. यह उदास हृदयोंको उकसानेके लिए कोरी कल्पनाएं नहीं हैं सचाईके ठोस गुर हैं. एक साल कामका और निठल्लेपनका आंकड़ा मिलाकर देखो तो. अगर बाईं तरफकी रकम दाईं तरफकी रकमसे ज़्यादा है तो तुमने ज़रूर कुछ ऐसा काम कर डाला है जो न सिर्फ़ तुम्हारे लिए बल्कि तुम्हारे कुटुम्बके लिए, तुम्हारे समाजके लिए और तुम्हारे देशके लिए उपयोगी है.

सोचना और सोचना ही सोचना, 'खाली बैठना' है. काम करना और काम किए जाना 'काम करना' है. काम करते-करते जो सोचा जाए, उसका नाम भी 'काम' है. काम करते-करते सोच-विचारका नाम है 'सिरका काम', जिसे अंग्रेजीमें ब्रेन वर्क (Brain work) कहते हैं. यह सिरका काम हाथके कामको चौगुना कर देता है. तभी इसको कामका नाम मिला है. कोरे सोचनेसे कामकी चाल धीमी ही नहीं पड़ती, रुक जाती है और कामके पुरजोंमें जंग लगाकर उन्हें हमेशा के लिए बेकार कर देती है. पढ़ना काम नहीं है, निठल्लापन है. हां, वह पढ़ना काम है, जो किसी कामके लिए पढ़ा जाए. काममें लगे-लगे अगर कायरता आ दबाए तो गीता पढ़ना काम समझा जाएगा. रोज़ उसका अव्वलसे लेकर आख़िर तक पढ़-जाना निठल्लापन नाम पाएगा. बेमतलब अख़बारोंका पढ़ना निठल्लापन है. निठल्लापन ही नहीं, नशा है, लत है, बीमारी है. हां, एक व्यापारी अपनी चीज़ोंके भाव जाननेके लिए अख़बार ख़रीदता और पढ़ता है, वह सचमुच काम करता है और कुछ खोकर भी कमाता है. हिन्दुस्तानमें ख़बरोंके अख़बार हैं, समाचारोंके समाचार-पत्र हैं—यानी बेकारोंके 'कार' हैं. काम-त्रप, यानी कामके पत्र, हैं ही नहीं. आजकल सब सरकारी ग़ज़ट बने हुए

हैं. कुछको छोड़ सभी धनवानोंकी भाटगीरीका काम करते हैं, या दुकानदारोंकी दलाली का. इनको पढ़ना काम कैसे हो सकता है ? इस आंकड़ेमें पूरे सतर्क रहनेके लिए ऊपरकी लकीरें लिखी गई हैं. ये इशारे हैं. इनकी मददसे आंकड़ेमें कौन रकम किधर लिखी जानी चाहिए, इस काममें मदद मिलेगी.

निराश हुए और गए. उम्मीद सहारा है, उम्मीद ही जीवन है, निराशा मौत है. उम्मीद श्रद्धाकी बहन है, और सदा साथ रहनेवाली बहन हैं. उम्मीद है तो काम करनेका बल है और काम कराने का बल है तो जय मिलेगी ही. जय इत्र है और इत्र परिश्रमके फूलोंका. इत्र मनों फूलोंसे तोलों ही मिलता है. पर इत्रका तोला फूलके मनसे ज्यादा मूल्यवान होता है. बहुत मेहनतसे ही जय मिलती है. जय परिश्रमके दुःखको भुला देती है और उससे कहीं ज्यादा प्यारी लगती है. परिश्रम इंजनकी उम्मीद भाप है. परिश्रम देहकी आस—श्वास है. किसीने ठीक कहा है : 'जब तक श्वास तबतक आस'. आशामें तकलीफ भले हो, मौत नहीं. जयमें सुख है, आनंद है पर उस सुख और आनंदमें मौतका कांटा छिपा रहता है. कौन नहीं जानता, अपने बेटेको देखनेके लिए बीमारीके बिस्तरपर पड़ी ज्यों-त्यों दम जुड़ाती मां उसे देखकर दम तोड़ देती है. आशा और जयमें यही तो अन्तर है. इच्छा-पूर्तिमें यही तो फर्क है. जयमें कभी-कभी आशाका अन्त हो जाता है और इसलिए मौत आ धमकती है. झूठी, नकली जय भी कभी-कभी जय मान ली जाती है, और इस तरह आशाका अन्त हो जानेसे जो चीज मिलती है, वह होती है—हार, असफलता, नाकामयाबी.

इसलिए आशा और निराशाका खाता रखना बहुत जरूरी है. आशाकी पूंजी बढ़ानेमें यह जानकारी बड़ी मदद देती है कि परिश्रम किए जानेका फल होता ही है, और बहुत मीठा होता है. घंटों दही बिलोने पर मक्खन निकलता है. वर्षों पानी देनेपर आमके पेड़से फल मिलते हैं. लाखों मन पत्थर जैसी कड़ी मिट्टी काटनेपर हीरेकी एक

कनी नसीब होती है. पर वह कनी हजारों मजदूरोंकी मज़दूरी चुराकर वर्षों बैठे-बैठे उनको खाना भी दे सकती है, अगर वह कनी उन मज़दूरोंको ही दे दी जाय.

इस साधारण ज्ञानके बलपर, जवानो, आशाकी पूंजी बढ़ाते हुए तुम सुखी रह सकते हो, और कांटोंसे भरी जमीनको फूलोंकी सेज बना सकते हो. इन आँकड़ोंको रोज-रोज मिलानेपर तुम्हारा चेहरा चमक उठेगा, तुम्हारे मुंहसे फूल झड़ने लगेंगे, तुम्हारी आंखें जगमगाने लगेंगी. वक्तके असरसे तुम बचे रहोगे. बालकों जैसी उछल-कूद और चपलता तुममें बनी रहेगी और तुम मनचाही मौत पा सकोगे.

एक ग्रामीण मुसलमान, बूढ़ी तजुर्बेकार औरतसे, किसी हिन्द नवयौवनाने पूछा, "अम्मा, तुम्हारे अभी कितने रोज़े और बाकी हैं ?" वह हंसते चेहरेसे बिना प्रयास बोल पड़ी, "गये विचारे रोजड़े, रह गए नौ और बीस." यह वह जाननी है कि तीस रोज़ोंमें से अभी उन्तीस बाकी हैं, पर इसका जिक्र वह पूछने पर ही करती है और इस तरह करती है, मानो वह उन्तीस उस एकके मुकाबिलेमें कुछ भी नहीं हैं, जिसे वह पूरा कर चुकी है. इस तरह वह 'हो चुका' का पल्ला 'होने को है' के पल्लेसे सदा भारी रखती है. तभी तो हर वक्त उसके चेहरे पर हंसी खेलती रहती है. दुनिया बन रही है, बिगड़ नहीं रही है.

कितना बनना बाकी है, उसकी तरफ नज़र डाली—और तुम गिरे सोचकी गहरी खाईमें. चाहे उसमें डूबो नहीं, पर वहांसे निकलना आसान नहीं. आदर्श या वह जगह जहां हमें पहुंचना है, कितनी दूर है—यह मत सोचो, सोचो यह कि तुम आदर्शकी ओर कितना बढ़ चुके हो. दूसरोंसे झगड़ बैठनेमें कारण हमारे 'हो चुका' के खातेकी कमी ही हुआ करती है. जिनका 'होनेको है' का खाता बहुत होता है, वह चिड़चिड़े मिज़ाजके होते हैं. हर किसीसे उलझ बैठते हैं. इस उलझनमें उलझकर न खुद आगे बढ़ पाते हैं और न अपने रिश्तेदारों, भाइयोंको आगे बढ़ने देते हैं. बूढ़े बाप अपने दुधमुंहे बच्चोंसे चाहते हैं कि वे

उनकी तरह रहें-सहें. और जब वह वैसा नहीं करते, तो आपेसे बाहर हो उनपर बरस पढ़ते हैं. बूढ़ी माताएं अपनी नन्ही-नन्हीं बच्चियोंकी उछल-कूद, धौल-धप्पड़, तोड़-फोड़, लूट-खसोट,छीना-झपटी देखकर ऐसी नाक-भौं सिकोड़ती हैं कि कहते नहीं बनता. वह चाहती हैं कि वह नन्हीं रहती हुई ही उन जैसी बूढ़ी बन जाएं. हां, वह बूढ़े-बुढ़िया खुश मिलेंगे, जो यह देखकर खुश होते हैं कि हमारे तीन वर्षके बच्चे वह बातें नहीं करते है, जो वह तब करते थे, जब दो वर्षके थे या एक वर्षके थे. अहा ! अब तो वह घुटनों न चलकर, खड़े होकर एक-एक कदम चलना सीख गए हैं. अहा ! अब तो वह चम्मचसे ले-लेकर दूध पीना सीख गए हैं. अहा ! अब तो वह छोटे-छोटे वाक्योंको बोलना सीख गए हैं.

यशोदा और नन्दकी कथा लोग सुनते जरूर हैं, पर उन जैसा व्योहार वह अपने बच्चोंके साथ नहीं करते. वह अपनी खाली दुनियामें यशोदा और नंदको अपने प्यारे कान्ह-कन्हाई पर अनाप-शनाप प्यार उंडेलते देखते हैं, और मस्त हो-होकर कथा-रसपान भी करते हैं पर घर लौटकर वही लोग बीसवीं सदीके बुड्ढे-बुढ़िया बन जाते हैं और बालकों को फटकारने लग जाते हैं.

जवानो ! अपना 'हो चुका' का खाता संभालो. 'होने को है' के नाम अपने कीमती वक्तकी रकमें लिखना छोड़ो. सुखी होनेका यही उपाय है. तरक्कीके कांटोंसे बचकर चलनेमें ही भला है. उन्हें उठाकर फेंक डालना ही धर्म है.

स्वतन्त्र राय और सदिच्छाएं

चार

सब आदमी सब बातोंमें कुछ-न-कुछ राय रखते हैं. यह ठीक भी है. हमारे जीते रहनेके यह सबूत हैं. पर मुश्किल यह है कि हमारी रायों में बहुत-सी अपनी नहीं होतीं. वह सब होती हैं उधार ली हुई. उधारकी रायोंसे आप कुछकी नजरोंमें साहिबेराय, रायवाले या रायोंके धनी माने जा सकते हैं, पर अपनी नजरोंमें आप वैसे नहीं जंचेंगे. समझ-दारोंकी नजरोंमें भी आप वह जगह न पा सकेंगे, जो आप तब पाते, जब आपके पास बहुत-सी रायें आपकी अपनी होतीं. जो रायें आप अपने आप बनाते हैं, वह परखी हुई होती हैं, बहुत-सी अजमाई हुई होती हैं. उन रायोंसे आप दूसरोंपर असर डाल सकते हैं. दलीलके साथ उनकी रायोंको बदल भी सकते हैं. आपकी अपनी रायें आपको मजबूत बनाती हैं. उधार ली हुई रायें भी, उधार लिए हुए धनकी तरह, थोड़ी देरके लिए आपको चमका दे सकती हैं, पर थोड़ी देरके लिए ही! उधारकी रायोंका बल, शराबके नशेसे पाए हुए बलके समान, आपको बहसके मैदानमें भड़काए हुए कुत्तेकी तरह, लड़ा सकता है और

अपने जैसोंपर जय भी दिला सकता है ; मगर न वह आपका कुछ भला कर सकता है और न समाज, धर्म या देशका. ज्ञानकी बढ़ती हुई दौड़में उस बलके बूते आप आगे निकल जानेकी उम्मीद न रक्खें. उधारकी रायोंकी पूंजीपर बने सेठ कभी ऐसा सोचते भी नहीं. मूर्खोंपर रौब जमानेके लिए ऐसी रायें बड़े काम आती हैं.

इनमें यह गुण न होता, तो इतने लोग इन्हें अपनानेको क्यों दौड़ते? किसी धर्ममें पैदा होने वाले, किसी धर्मकी असली किताबें खुद पढ़े-समझे वगैर, उस धर्मके बारेमें जो रायें रखते हैं, वह सब उधारकी होती हैं. उनका भंडार उनके पास बेहद रहता है. बहसके मैदानमें वह रायें उनके हाथमें बन्दूक, तलवार बनकर थोड़ी देरके लिए चमत्कार दिखा देती हैं. इस चमत्कारसे जीवन-महायुद्धकी उस नाचीज़ लड़ाईमें वह जय तो पा लेते हैं, पर धर्मका, या नाम वाले धर्मका भी भला न कर, कुछ बुरा ही कर बैठते हैं.

समझनेके लिए जरा घरकी तरफ चलें. हरेक मां चांदके दागोंके बारेमें एक राय रखती है. वह उसकी अपनी नहीं होती. वह उसकी बपौती है. बापसे बपौतीकी तरह अगर मांसे मौती शब्द बन सकता है, तो वह उसकी मौती है यानी मांसे पाई है. वह अपनी इस मौती -बपौती रायको अपने बच्चेके दिलमें ठूंस देती है. बालक समझता तो है नहीं, वह उसको ऐसे ही सच और बिल्कुल ठीक मानने लगता है, जैसे किसी कालेजका एक आर्य ग्रेजुएट वेद (भगवान्) में बताई हुई बातोंको ; या अमेरिका, बर्तानिया, जर्मन, जापानसे लौटा हुआ मुसल-मान पी-एच० डी०, कुरान (शरीफ) से बताई हुई बातोंको. सब धर्म वालोंको अपनी धर्म-पुस्तकोंके प्रति ऐसी ही इज्जत होती है. वेद, कुरान, बाइबिल, धम्मपद्, तत्त्वार्थ-सूत्र, जेन्दावस्थाके बारेमें उनको कभी खोले बिना भी, आर्यसमाजी, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैनी, पारसी विद्वान् (ज्ञानी नहीं) बिना झिझके यह राय जाहिर कर देगा कि यह किताबें ईश्वर, खुदा, सर्वज्ञ, बुद्धकी कही हुई हैं, और उनमें कोई बात

गलत नहीं है, और कि उनमें सब कुछ भरा है.

यह साफ है कि यह उनकी अपनी (अपनी बनाई हुई) राय नहीं होती. बपौतीमें पाए हुए कपड़े, रुपए, मकान, रिश्तेदार, सरकार, धर्म, खुदा तक जब कानूनन हर तरह उनके माने जाते हैं, तब बपौतीमें पाई राय उन्हींकी क्यों न समझी जाय ! तर्कके तीखे तुरंगपर अटल आसन आसीन उनके इन शब्दोंको कौन धकेलकर धरतीकी धूल चखा सकता है ? हां, एक है और वह है—उन्हींका ज़मीर, उन्हींका अन्तरात्मा. ऐसा नहीं होता, तो मूसा, ईसा, बुद्ध, महावीर, मुहम्मद कहांसे आते ? मौलाना रूम, ब्रेडला, कबीर, नानक, दादू जैसी अनेक आत्माओंका जन्म व्यर्थ होता. हां तो वह बालक अपनी मांका पाठ याद कर लेता है. वह पाठ उसका धर्म बन जाता है. फिर उसको उस चांदमें बुढ़िया चरखा कातती हुई दिखाई देने लगती है. उसकी पौनीसे निकलता हुआ धागा उसको साफ दिखाई देने लगता है. अपने इस प्रत्यक्ष प्रमाण (यानी ज्ञान) को लेकर वह अपने मातृ-धर्मके प्रचारका बीड़ा उठाता है और सारी दुनियाको आर्य (अपनी मांके धर्मको मानने वाला) बनाने वाला झण्डा हाथमे लेकर अपने साथियोंमें सिंहगर्जना करता है, और पलक मारते वह उनको अपना अनुयायी बना लेता है.

इन अनुयायियोंकी मददसे उसे दिग्विजय मिलती है. इसे आप आलंकारिक भाषा न समझें. दुनिया-भरके बालक चांदके बारेमें ऐसी या इससे मिलती-जुलती राय रखते हैं. इने-गिने ना-समझ विज्ञानियों या उनके बहकाए हुओंको छोड़कर सब बड़े-बूढे भी इस रायसे सहमत हैं. आप भी इसी रायके होंगे.

जानी हुई दुनियाको सभा मानकर और इसपर रहनेवाले छोटे-बड़े सबको राय देनेवाले मानकर, अगर इस बातपर राय ली जाय कि जमीन गेंदकी तरह गोल है या थालीकी तरह चपटी, सूरजके चारों ओर घूम रही है या सूरज इसके चारों ओर, गायके सींग पर टिकी हुई

है या हवा पर, तो आजकलके साइन्सदानोंको एड़ी-चोटीका जोर लगा कर ही अपनी जीतकी उम्मीद रखनी होगी.

आप ज़रा बीमार पड़कर देख लीजिए. उधारकी रायसे आपकी सलाहकी छत, बे-कौड़ी-पैसे पट जायगी. यह राय उनकी ही है, जो न डाक्टरी पढ़े, न हिकमत-वैद्यक. ऐसा नहीं, दस डाक्टर, दस हकीम, दस वैद्य भी आपकी छतको ऐसी ही रायोंसे पाट देंगे.

आजकी लड़ाईके बारेमें वे तक, जो राधास्वामियोंके आदि गुरुकी तरह बारह बरससे भी ज्यादा अपने आपको एक कोठरीमें बन्द किए बैठे हैं, खुदाकी तरह यह राय ज़ाहिर कर डालते हैं कि जीत किसकी होगी और हार किसकी. रेडियोपर जाहिरकी हुई लडाईकी रायें, फिर चाहें वह लन्दनसे फेंकी हुई हों, या अमेरिका, जर्मनी, जापानसे, नब्बे फीसदी उधार ली हुई होती हैं. और मुल्कोंकी तरह हिन्दुस्तानकी सरकार लड़ाईके बारेमें फैलाई अफ़वाहोंको रोक रहीं है, और यह ठीक भी है, पर मेरी रायमें अफ़वाहें इतना नुकसान नहीं करतीं, जितनी उधार ली हुई राये.

अफ़वाहें अफ़वाहोंसे काटी जा सकती हैं, पर रायें रायोंसे भिड़कर आग पैदा करती हैं, मजबूत बनती हैं. यह एक राय ही तो है कि अरबका एक मालिक है और उसका नाम—अल्ला है, खुदा है; हिन्दुतानका एक मालिक है उसका नाम—अलख वा राम है. एक यह भी राय है कि अलख, अल्लाह, खुदा, राम—सब एक ही मालिकके नाम हैं. पर ये तीनों रायें खूब टकराती हैं और वर्षोंसे टकराती रही हैं.

उधारकी रायें कुकेनकी तरह मनको सुन्न कर देती हैं. मनके मुंहमें लगे विवेकके-दांत कुछ स्वार्थी उखाड़ लेते हैं और जिनके दांत उखाड़ते हैं उनको पता भी नहीं चलता ! बे-दांतके बच्चेकी तरह मन, बे-तुकी रायोंके बड़े-बड़े दांत निकालने लगता है और पेटको खराब कर देता है. जवानो ! तुम अपने मनको,अपनी रायोंको, तजुर्बेकी सिलपर रगड़, अन्तरात्माके आज्ञा-रसमें घोलकर पिलाना शुरू करो और

उसको कब्जसे बचाओ.

अब देखें, तुम्हारी रायोंमें से कितनी उधारकी हैं और कितनी तुम्हारी अपनी. खातेमें अपनी-अपनी रायोंका ज़्यादा होना ज़रूरी है. अपनी ही अपनी हों तो कहना ही क्या.

जाके पाँव न फटे बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई.

यह एक कहावत है. कहावतें आपबीतीका निचोड़ हुआ करती हैं. इसीलिए सचाईका पुञ्ज होती हैं. सच अगर हीरा है, तो वह उसकी कनी होती हैं. आगकी तरफ अपने छोटे बच्चेको जाते देखकर, मां यह चिल्लाकर चुप नहीं हो बैठती कि आग गरम होती है, तुम जल जाओगे; वह भुगत चुकी है, इसलिए बोलती कम है—या बिल्कुल नहीं—वह तो दौड़ती है और उसे वहां पहुंचनेसे पहले रोक लेती है. बच्चा भी मुस्करा देता है और शायद गुपचुप यह कहता-सा मालूम देता है कि मां, तुम्हारा यह रोकना मुझको जंचा नहीं, मैं आज नहीं तो कल मौका पाकर आगकी तकलीफ़ भुगतकर देखूंगा. एक बार उंगली जलाये बिना उसका आगका ज्ञान धुंधला रहता है. आधी दुनियाके सरमें इस धुंधलेपनकी वजहसे दर्द रहता है. लाखों आदमी ऐसी युक्तियों, तदबीरों, उसूलों, सिद्धान्तोंके जालमें फंसे हुए हैं, जिनका कोई आधार नहीं है. इस बे-बुनियादके सिद्धान्तोंने करोड़ोंका दिमाग़ खराब कर रक्खा है.

ख़ास-ख़ास मौकोंपर समाजका हमपर ऐसा रौब छाता है कि हम बिना कान-पूंछ हिलाये सरकसके शेरकी तरह रूढ़ियोंके कोड़ेसे थरथराते चाहे कुछ करते रहते हैं. विवाहके वक्त हम कितने ही पढ़े-लिखे, कितने ही उम्रके क्यों न हों, अनपढ़ और उम्रमें छोटे पुरोहितके हाथकी कठपुतली बन जाते हैं. 'क्या कर रहे हैं ?', 'क्यों कर रहे हैं ?', 'किसलिए कर रहे हैं ?' यह सवाल उठानेकी हमें हिम्मत नहीं होती. 'नहीं करेंगे', 'हरगिज़ नहीं करेंगे' की आवाज़ तो फिर उठायेगा ही कौन ! यह बातें हमें भले ही छोटी-सी जंचती हों पर बीज होनेसे पेड़ बने बिना नहीं रह सकतीं. तब फिर यही वनकी शक्ल

अख्तियार कर लेती हैं और हमें अपनेमें ही भटकाए रखती हैं.

जवानो! अपनी जानकारीकी डायरी आपबीतीकी नींवपर बनाओ, परबीतीको बालूका ढेर समझो. उसपर बनी अटारी कभी भी गिर सकती है. सुनते यह हैं कि बालूपर भीत बनती ही नहीं है, मालूम नहीं किसलिए फिर हम परबीती पर अटारी खड़ी करते हैं. हिन्दुस्तानके कालेजोंमें राजनीतिका सबसे होशियार प्रोफेसर वही माना जाता है, जिसने राजनीतिके व्यवहारिक मैदानमें कभी कदम न रक्खा हो. और शायद हिन्दुस्तानी सरकार अब लड़कियोंके मेडिकल कालेजमें 'बालक-जनने' में क्या तकलीफ होती है, इस मजबूनपर लेक्चर देनेके लिए छांट-छांटकर लन्दनसे बांझ मेम बुलाया करेगी! इस कामके लिए बाल-संतनी (Nuns) और भी ज़्यादा ठीक रहेंगी!

जैसी सरकार वैसा दरबार, वैसे ख़िदमतगार, वैसी रैयत भी लाचार! मतलब यह कि हमारे जवान इसी रंगमें रंगे हुए हैं. उन्हें चाहिए कि वह समझ लें कि वह वह हैं, जिसको वह भुगत चुके हैं. वह वह बन जाएंगे, जो वह भुगत लेंगे. तब उनको चाहिए कि वह कदम-कदमपर अटक जाए और समझ लें कि उनसे क्या कराया जा रहा है? उनका जितना तजुर्बा है, जितना उनको कुदरतका ज्ञान है और उनकी जो जानकारी है—वह नये कामोंको परखनेके लिए बहुत काफी हो सकती है, अगर मेहनत कर वह ऊपर समझाया लेखा तैयार कर लें.

इच्छाएं जन्मसे हमारे साथ हैं, मरते दमतक रहेंगी. इच्छाओंको सबने कोसा है. हमारी रायमें वह शरीरका धर्म हैं. आत्माका है या नहीं, यह अभी जाननेकी जरूरत नहीं, क्योंकि हम कोरे आत्मा नहीं हैं. जब वे शरीरका धर्म हैं तो इनको नाश करनेकी जरूरत नहीं. कम की जा सकतीं हैं और करनी भी चाहिएं. 'अमीर' ने चिढ़कर यह कहा है:

काट के फेंक दे जड़, नख़्ले तमन्ना को 'अमीर'
फूल कम्बख़्त में आया न कभी फल आया

पर इसका भी मतलब यही है कि बुरी इच्छाओंको रोको और भलीकी हद बांधा.

इच्छा उस सोचका नाम है, जो हम उस चीजके लिए करें जो हमें जन्मसे नहीं मिली. कुछ चीजें ऐसी हैं, जो हमें मिलीं तो जन्मसे हैं, पर फिर भी हम उनके पानेके लिए सोचते हैं. इस इच्छाको हम इच्छा नहीं मानते. यदि इच्छा किसीकी किताबमें बुरी चीज मानी गई है तो हम सलाह देंगे कि ऐसी इच्छा खूब करनी चाहिए. इस इच्छाको बुरी होनेका दोष नहीं लगता. जैसे ज्ञानकी इच्छा करना, बलकी इच्छा करना, सुखकी इच्छा करना, आज़ादीकी इच्छा करना—यह चारों चीज़ें हमें जन्मसे मिली हुई हैं और खूब मिली हुई हैं. इन्हें तो हम भूले हुए हैं. इनकी याद दिलानेके लिए कुछ चीजें चाहिएं. उनकी इच्छा करना अच्छा है. यों इच्छाएं दो तरहकी होती हैं—एक भली, एक बुरी. किताब, गुरु, औजारोंकी इच्छा भली है, क्योंकि यह हमको ज्ञानकी याद दिलाती है, जो हमारे अन्दर है ; चाहे जहां घूमनेकी आजादीकी इच्छा भली इच्छा है, क्योंकि यह हमें बलकी याद दिलाती है ; तैरने, उड़ने की इच्छा करना अच्छा है, क्योंकि इससे ज्ञान पाकर हमारी तसल्ली होती है और सुखकी याद आती है. आर्थिक आजादी, सामाजिक आजादीकी इच्छा करना अच्छा है, क्योंकि यह आत्माकी आजादीकी याद दिलाती है. किसीकी किताब फाड़ डालनेकी इच्छा करना, पाठशालाको ढा देनेकी इच्छा करना बुरा है, क्योंकि यह हमें जन्मसे मिले ज्ञानसे दूर फेंक देने वाली इच्छाएं हैं. किसीके घूमने-फिरने पर रोक लगानेकी इच्छा, परीक्षामें रोकनेकी इच्छा बुरी इच्छा है ; इनसे हम जन्मसे मिले बलसे दूर पड़ जाते हैं. मतलब यह है कि वह सब इच्छाएं बुरी हैं जो दूसरोंको दुःख पहुंचाएं और अपनी जन्मसे मिली ताकतोंसे हमें दूर फेंके.

जवानो, इच्छाओंका आंकड़ा रखना जरूरी है. बुरी इच्छाओंको कम करते जाओ, अच्छी इच्छाओंकी हद बांधो ज्ञानी, शक्तिशाली, सुखी और आजाद होनेकी इच्छाओंको जितनी पैनी कर सको, करो.

धीरता और वीरता

पांच

आफ़तें आई हैं, आती हैं, आती रहेंगी. कोई इनसे नहीं बचा.

आफ़तें सभी देहपर ही आती हैं. भूलसे यह मन और आत्मापर आई मान ली जाती हैं. दुनियां माननेकी ज्यादा है. हम जो समझ बैठें, वह हो ही जाते हैं. चाहिए यह कि देहपर आई मुसीबतोंको देहतक ही रहने दें, उन्हें अन्दर दाखिल न होने दें. यह काम जरा मुश्किल है, पर अभ्याससे हो सकता है. देहपर आफत झेल लेनेका मतलब यह है कि देहपर कुछ भी आए, अपने सिद्धांतपर अटल बने रहें. सिद्धांतपर अटल रहनेका मतलब है, अपनी अन्तरात्मा (यानी ज़मीर) की बातपर डटे रहना. जमीरकी बातपर डटना घमंड नहीं है, हठ भी नहीं है; लोग भले ही इसको ये नाम दे डालें. हठ और घमंडसे भी आफतोंका सामना होता है, पर कामयाबी नसीब नहीं होती. रावण और दुर्योधन खूब लड़े और कभी-कभी अब जीते अब जीते-से मालूम भी हुए, पर जीत हुई राम और युधिष्ठिरकी. इसलिए नहीं कि रामने रावणको मार डाला, या दुर्योधन मारा गया ; पर इसलिए कि आजके दिनतक

राम और युधिष्ठिर सचाईके निशान माने जाते हैं. हुसैन मरनेपर भी जीते थे, और जीते हैं. हुसैनको लड़ाईके मैदानमें हरानेवालेका, नहीं-नहीं, उनको कत्ल करनेवालेका नाम आज बहुत थोड़ोंको मालूम है ; और क्यों मालूम हो ? वह जीतने पर भी हारा था. हुसैन हैं, पर वह कहां है ? राम, युधिष्ठिर, हुसैन अपनी अन्तरात्माकी बातपर डटे रहे, और इसलिए उनकी जीत हुई और आज तक जीवित हैं. ये घमंडी या हठीं न थे, नम्रताकी मूर्ति थे. स्थिरता और नम्रता बहिनें हैं. हठका नम्रतासे कोई मेल नहीं. आफतोंपर या उनके कारणोंपर जीत बोलनेके लिए जरूरत होती है उन जवानोंकी, जो जिंदगीके उसूलोंपर बहादुरीके साथ डटे रहते हैं. क्या हमने वैसी आदतें डाल ली है ? यदि हां, तो आफतें हमारा कुछ न बिगाड़ सकेंगी.

ईसाको क्रॉसपर चढ़ानेवालेका नाम कौन जानता है ? ईसा तो आधी दुनियाके दिलोंमें घर बनाए बैठे हैं. ईसाने कौनसी लड़ाई जीती थी? ईसा अपने जमीरकी आवाज सुनते थे, और उसीको सुनते थे.

मौकेपर फुर्तीसे, पर बिना घबराए धीरतासे, काम लेनेवालेकी जीत हुआ करती है. उतावले बनकर या घबराकर कुछ करना धीर-वीरोंका काम नहीं. उतावलेपनका जीतसे कोई सम्बन्ध नहीं. बिना विचारे, उतावलेपनसे लड़ाई या लड़ाइयां जीती जा सकती है, पर विजय-लक्ष्मीके दर्शन नहीं हो सकते. विजय-लक्ष्मी उतावलोंको नहीं वरती, उतावले उसकी नजर पर नहीं चढ़ते, उसे तो धीर-वीर ही सुहाते हैं. 'वीर' धीर होता ही है. धीरता अचानक नहीं मिलतीं, उसका अभ्यास करना होता है. महाभारतमें विजय अर्जुनकी नहीं हुई, जीत हुई कृष्णकी या युधिष्ठिरकी. हिंदू कृष्णको पूजते हैं, युधिष्ठिरको धर्मराज कहकर पुकारते हैं. अर्जुनको बहादुर मानते हैं. असलमें अर्जुन मनका रूपक है और कृष्ण आत्माका. मन होता है उतावला, वह कुछ कर सकता है, तो ठीक बनकर. आत्मा होती है गम्भीर. स्थिरता, धीरता, मुस्तकिल-मिज़ाजी उसकी खासियतें हैं, मनकी नहीं. मन

आफतोंमें फंसा सकता है, फसाने पर रुला सकता है पर न उनसे विजय दिला सकता है और न उनसे छुटकारा. मनका काम है अहंकार, खुदी. खुदी (अहंकार) गिरावटकी सीढ़ीका एक डंडा है. गिरावट जीत-से दूर होते चले जानेका नाम है. इसलिए मनके चक्करमें फंसकर तुम अहंकारकी तसल्लीपर उतर आओगे और समझौतेपर राजी हो जाओगे. समझौता आफतोंको दम लेनेका अवसर दे देता है, और इसलिए सुख देता-सा मालूम होता है. वास्तवमें होता यह है कि आफतें दम ले-कर दूने जोरके साथ फिर हल्ला बोल देती हैं और फिर समझौता करने वालेको हाथ मल-मलकर पछताना पड़ता है.

समझौता कानोंको अच्छा लगता है, हार कानोंको कड़वी मालूम होती है ? पर समझौता हारसे कहीं बुरी चीज है. समझौता हिजड़ा है, हार औरत है. हार, हार, हार—हारोंका जोड़ जीत. समझौता, समझौता, समझौतोंका जोड़ पतन, मौत. हारमें देहको हानि पहुंचती है, कायरोंका मन भी दुःख मानता है. कायरोंका मन देहसे लगाव भी रखता है. हारमें धीर-वीरका मन दुःखी नहीं होता, कमजोर नहीं होता, उलटा बल पाता है. जब मनपर ही असर नहीं होता, तब आत्मापर असरकी चर्चा करना बेकार है. समझौतेमें अन्तरात्मा सिकुड़कर रह जाती है. वीरका मन फुंकारता है, कायरका मन आरामकी सांस लेता है. पर वीर और कायर दोनों ही की देह उस समय तो आफतोंसे बच जाती है, और कायर तो पुकार ही उठता है—'जान बची लाखों पाए'. समझौता बहुत बुरी चीज है. समझौतेकी दोस्ती हिजड़ेकी दोस्ती है. हिजड़ा वक्तपर सदा धोखा देता है. समझौतेको साथ लेकर कभी आफतोंमें नहीं कूदना चाहिए. समझौतेके साथ कूदनेमें आफतें घटनेकी जगह बढ़ेंगी और हम जिन्दगी भरके लिए दासताके पिंजड़ेमें बन्दकर दिए जाएंगे.

'लाल' एक छोटा सुर्ख चोंचका खुबसूरत पक्षी है. उसकी मादाको 'मुनिया' कहा जाता है. लाल मुनियाके लिए लड़ते हैं. लाल लड़ाने-

वाले खास-खास लालोंको मजबूत बनाते हैं. जिस खास लालने किसी एक लालको कुश्तीमें जीत लिया तो उस खास लालका वह हारा हुआ कहलाने लगता है. उसका नाम ड्योढ़ा क्यों रखा गया, इसका पता नहीं; ड्योढ़ा, शायद इस नाममें 'मेहतर, प्रजापति' आदि शब्दोंकी तरह, कोई दार्शनिकता हो. खैर, वह ड्योढ़ा कितने ही अच्छे ढंगसे बहिश्तमें पले, पर ड्योढ़ा ही रहेगा. यानी जब भी अपने जीतनेवालेसे लड़ेगा, हारता ही रहेगा. समझौतेमें यही ऐब है. वह आदमीको अपने प्रतिपक्षी का ड्योढ़ा बना देता है. समझौतेका अर्थ ही सिद्धांतोंसे हटना है. समझौतेसे हम यह बताते हैं कि हम मूर्ख है, असमर्थ हैं; हमारा आत्मा उतना ऊंचा नहीं है, जितना प्रतिपक्षीका. हारसे हम यह बताते हैं कि हमारा आत्मा तो बहुत ऊंचा है, पर हमारी देह निर्बल है, हमारे साधन अपूर्ण हैं. हम प्रबल-देह और साधन-पूर्ण होकर जुटेंगे और जय बोलेंगे. पाण्डव जुएमें हारे थे, आत्म-बलमें वे हार कर भी जीते थे. हुसैन साधनोंमें अपूर्ण थे—धूर्त्तातामें हारे थे, आत्म-बलमें नहीं. वर्तमान लड़ाईमें बहादुर जहाजी कप्तान घिर जानेपर जहाज डुबा देगा, दुश्मनके हाथमें नहीं जाने देगा. रूसियोंने जर्मनोंको खाली गांव दिए, आत्माएं नहीं दीं; गांव रूसियोंने फिर ले लिए. फ्रांस, यूनान, बेल्जियमने आत्माएं दीं, फिर गांव तो गए ही. जब आत्माएं वापिस लें, तो गांव मिलें !

यह समझ बैठना भूल है कि वक्तपर हिम्मत हिजड़ोंमें भी आ जाती है. जरा सोचनेपर यह भूल दूर हो सकती है. बिना विचारे हिम्मत कर जानेका नतीजा सफलता हो सकती है, पर बहुत कम. और अगर किसी वजहसे हो ही जाए तो टिकाऊ नहीं होती. आमतौरसे उसका नतीजा हार ही हुआ करता है. वीरमें सोडा-वाटर जैसा उबाल नहीं आया करता. उसमें निरन्तर दहकती आग रहती है. कारण पाकर ही दहकती आग ज्वालामुखीका रूप धारणकर चमत्कार कर जाती है. वीर अचानक पैदा नहीं होते. वे बरसोंकी मेहनतसे तैयार होते हैं. हां वीरत्वका बीज सबमें है, पर उसको वृक्षका रूप देनेमें समय लगता है.

समयकी सूझपर लोग भरोसा किये बैठे रहते हैं. वह समयपर कभी न आएगी, समयकी सूझ वास्तवमें उस अनुभव-शक्तिका दूसरा नाम है जो हर एक आदमीमें रहती है. और जिसके बलपर वह अनेकों कष्ट हंसते-हंसते झेल लेता है. इस दुनियांमें भाग्यको भी स्थान है, पर जीवनमें एक ही बार. भाग्यसे मिली जीतके सम्बन्धमें कभी ठण्डे दिलसे खोज नहीं की गई, नहीं तो पता चलता कि जीत भाग्यकी नहीं हुई, किसी और ही की हुई है. अन्धेके हाथ बटेर लग जानेसे अंधा शिकारी नहीं माना जा सकता !

अन्तरात्मा, ज़मीर और उसकी बातसे कुछ लोग चिड़ते हैं. वह मन या मस्तिष्कको ही सब-कुछ मानते है. मन-मस्तक उन्हें कुछ दिखाईसे देते हैं, ठीक-ठीक तो वह भी दिखाई नहीं देते. खैर, इस मानवी-मशीनका मस्तक भी बड़ा ज़बरदस्त पुर्जा है. आइए, उसे समझ लें. अन्तरात्माको भुलाकर मनके माननेवालोने मनको दो तरहका माना है. एक ऊपरका मन (Consciou smind), एक भीतरका मन (Sub-conscious mind) भीतरके मनको वे करीब-करीब अन्तरात्मा जैसा ही मानते हैं. इस अन्तरात्मासे मिलते-जुलते 'भीतर वाले' को भी छोड़िए. भीतर केवल ऊपरका मन है.

मान लीजिये, आप तैरना नहीं जानते. चले गए गहरेमें, वहां लगे डूबने. इतनेमें एक जवान दौड़ता है और अपनी जान जोखिममें डालकर आपको बचाता है. उसने क्यों बचाया ? क्या इसका जवाब इतना काफी हो सकता है कि उसने डूबते देखा, आंखोंने मस्तकको ख़बर दी, मस्तकने देहको हुक्म दिया, देह कूद पड़ी ; पांव तैरनेमें मदद देते रहे, हाथोंने डूबतेको घसीट लिया ! मानो आदमी नहीं, बचानेवाली मशीन थी. खैर, मशीन नामसे हमें चिढ़ नहीं—वह मशीन ही सही—पर नदीके किनारे खड़ी और मशीनें क्या करती रहीं ?

आदमी मशीन ही सही, पर वह जानदार मशीन है. वह मस्तक, जिसको तुम एक पुर्ज़ा समझते हो, पुर्ज़ा ही सही; पर वैसा पुर्ज़ा आद-

मीकी बनाई मशीनोंमें नहीं मिलता. आदमीमें वह पुर्ज़ा है. कहांसे आया, कैसे आया, इन बातोंको जाने दीजिए. देखना यह हैं कि किनारे पर खड़ी अनेकों मशीनोंमें से एक मशीनके पुर्ज़े ने ही इतनी फुरती क्यों दिखाई ? उस पुर्ज़ेके मालिकने बरसों तैरना सीखा, डूब-डूबकर जान बचाना सीखा; डूबते हुए बचानेवालेको भी किस तरह ले डूबते हैं, ये सब बातें जानीं; उनके घबराहटमें किए कामोंसे बचानेके उपाय सीखे, और तब कहीं उसे वह फुरतीसे कदम रखना आया जो उसने आज कर दिखाया.

मतलब यह कि अन्तरात्माकी तरह मस्तकको भी तैयारीकी ज़रूरत होती है. और यह कि बड़ी-बड़ी तकलीफमें होकर ही समयकी-सूझ जैसी कला सिद्ध होती है. पहले मन-देवताको पहचानना होगा, उसे सबल बनाना होगा. कल्पना-कबूतरीको दरवाजा खोलकर उड़ाना होगा, और उसे ज़बरदस्ती घण्टो उडते रहना सिखाना होगा. विवेक-हंसको ज्ञानके मोती चुगाने होंगे, और उससे सचाईके दूधमे से झूठके पानीको अलग करना सिखाना होगा.

इस प्रकार मनको और मनकी अनेकों ताकतोंको बढ़ानेमें स्वार्थ नहीं है; और उसकी खातिर जिनको छोड़ना पड़े, वह छोड़ना त्याग भी नहीं है—यह सब तो अपनेसे ठीक-ठीक काम लेना है. अपनेसे ठीक-ठीक और पूरा काम लेना ही धर्म है. कबीरकी इस बातका कि हथेली पर सर रखकर आओ तो ईश्वर मिलेगा, यह अर्थ नहीं है कि रेलके आग कट मरो. उसने खुद भी तो ऐसा न हीकिया, उन दिनों रेल नहीं तो बनारसके किनारे गंगा तो थी. नेक बननेमें कोई नेकी नहीं है. नेकी तो नेकी करनेमें है. नेकी करनेमे भी इतनी नेकी नहीं है, जितनी नेकी-नेकी कर भूल जानेमें है. नेकी कर, नेकी की नेंक चाहें भी नेंक चैन न लेने देगी. सुखी होनेके लिए उसे भूलना ही होगा. नेकी करना निकम्मोंका काम नहीं, कमज़ोरोंका भी नहीं. कमज़ोर चिड़चिड़े होते हैं चिड़चिडेपनसे भलाई दूर भागती है.

तकलीफ़ोंका सामना करनेके लिए मनोबल बढ़ाना ही होगा. मनोबल बढ़ानेसे भी ज्यादा जरूरी है, उस मनोबलसे काम लेना. यही तो सबक है जो सीखना है. यह सबक पैदा होते ही शुरू हो जाता है. प्रकृति नवजात-बालकमें भूखका कांटा चुभोती है, बालक जोरसे चिल्ला-चिल्लाकर जमीन आसमान एक कर देता है. इससे दूध तो उसे जिसकी गरज हो देता ही है पर उसके फेफड़े खूब मजबूत हो जाते हैं. यह काम बालक आप ही कर सकता है, कोई और नहीं. जवान उम्रके लिहाजसे समाजके सामने बच्चा है. उसका यह हक है कि बड़े होनेतक दूसरोंसे अपने लिए खाना हासिल करे और मज़बूत बने. अपने 'मैं' को उपयोगिताकी नींवपर मजबूत खड़ाकर दूसरों के 'मैं' को समझना आना चाहिए और टक्करोंसे बचना चाहिए. घमंडकी नींवपर खड़े 'मैं' ही टकराते हैं. मिल-बैठकर काम करनेके लिए 'मैं' का मज़बूत होना जरूरी है.

'मैं-ओं' का ठीक-ठीक निर्वाह ही दुनियांकी बढ़वारी कहलाती है. इसीको विकास (Evolution) नाम दिया गया है. विकसित 'मैं' यह जान लेता है कि सुखी रहना एक कला है. इससे स्वच्छन्दता की चाह उसे नहीं रह जाती. स्वतन्त्रता प्यारी लगने लगती है, और फिर अकेले ही नहीं, सब मिलकर उस ओर बढ़नेमें लग जाते हैं, जहां हमें पहुंचना है.

दो शब्दों में, 'हम हैं' के साथ-साथ विचारशीलता जाग जाती है, विवेक चमक उठता है. जीते रहनेकी जरूरत मालूम होने लगती है. इसलिए हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि हम अपने 'मैं' को सच्चा 'मैं' बनाएं. यही सच्चा 'मैं' हमपर आई आफ़तोंको कम कर देगा, दूर कर देगा और देहपर आई आफ़तोंको मन या आत्मातक न पहुंचने देगा. तब हम तकलीफ़ोंमें हंसनेका चमत्कार दिखा सकेंगे और सबको अचरजमें डाल सकेंगे.

सुख की राह

छः

आइए, पहले यह समझलें कि सुख है क्या ? लेकिन यह क्या कोई समझनेकी चीज है ? सुख भले ही सैंकड़ों तरहका हो, पर मैं तो तभी अपनेको सुखी मानूंगा, जब मुझको वह सुख मिले, जिसे मैं चाहता हूं. मैं प्यासा हूं, मुझे पानी पिलाकर ही आप सुख पहुंचा सकते हैं. न रज़ाई उढ़ाकर और न धर्मका उपदेश सुनाकर. ठीक, बिल्कुल ठीक ! प्यासा पानी पीकर ही सुखी होगा, पर न एक घूंट पानी उसको सुखी कर सकता है और न एक घड़ा. उसे एक गिलास ही पानी सुखी कर सकता है. पर क्या मैं आपसे यह पूछूं कि अगर आप भी प्यासे हों और आपका कोई बहुत प्यारा भी, और पानी हो सिर्फ एक गिलास—तब आपका सुख किसमें होगा ? तब ? तब मेरा सुख होगा, उस प्यासेको—अपने प्यारे-को—पानी पिला देनेमें और खुद प्यासे मर जानेमें. अगर यह बात है तो आपको सुखका मतलब समझनेकी ज़रूरत नहीं. सुखको सब समझते हैं, और खूब समझते हैं. ठीक समझते हैं. सुख एक ही किस्मका है और वह है उसके मनकी भावनामें. फिर दुनिया दुखी क्यों ?

अपने अन्दरके सुखको क्यों नहीं पा लेती ? बात असलमें यह है कि उस अन्दरकी चीज़ पानेको भी चाहिए हिम्मत. हिम्मती ही सुखी है. हिम्मत का ही नाम सुख है. सीतामें हिम्मत थी, चल दी पतिके साथ जंगल. जंगलमें नंगे पांव चलकर पड़े छाले दुख देते होंगे देखनेवालोंको, या आज रामायण सुननेवाले भक्तोंको, पर वह सीताको दुख नहीं देते थे. दुखी थी कम हिम्मती उर्मिला, जो रिवाजोंकी दासी बनी रही और महलोंके दुख-सुख भोगती रही. क्यों न चल दी पतिके साथ ? उसके लिए मैथिलीशरण गुप्त आंसू बहाकर उर्मिलाशरण भले ही बन जाएं, वाल्मीकि और तुलसी उसे दुनियाके सामने लानेकी हिम्मत नहीं कर सके. उन्होंने हिम्मती जानकीको आदर्श मानकर जानकीशरण बने रहनेमें ही अपना और औरोंका भला समझा. जानकी सुखी थी और आजीवन सुखी रही. सुखी होनेके लिए इस सुखी सीताको नमूना समझकर रूढ़ियोंके कांटोंको कुचलते, पांवोंमे छाले डालते, आगे बढ़ते चले जानेकी जरूरत है

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं

यह सूत्र उसके मुंहसे निकला मालूम होता है, जो देश-फरोशी, दिमाग-फरोशी, आत्मा-फरोशी करके दुश्मनके हलवे-मांडेपर पलकर मोटा-ताजा होता जाता है और चैन नहीं पाता, तथा सुख जिससे हर घड़ी दूर होता जाता है. वह हिम्मतकर पीले और सफेद ठीकरोंपर लात मारता है तथा खुली हवामें दम लेकर, परिंदेकी तरह चहचहा उठता है :

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं,
निजाधीन दुख सुख बन जाहीं.

भगवान कृष्णने अर्जुनके साथ और किया ही क्या था ? उसकी सोई हुई हिम्मत जगाई थी. वह दुविधामें था. दुविधा ही दुःख है. दुविधा हिम्मतकी कमीका दूसरा नाम है. दुविधा यही तो है न कि रूढ़ियों-रिवाज़ोंका गुलाम बनकर चला जाए या अन्तरात्मा, जमीरकी हुक्मबरदारीकी जाए. अर्जुनको यही तो सोच था, "लोग क्या कहेंगे", इसकी परवाह करूं या "मेरा भगवान् क्या कहेगा इसकी ?" उसका भगवान्

कौन ? उसके मनमें बैठा राम. वही राम तो कृष्ण है. वही राम सातसौ श्लोकोंकी गीता मैदान-जंगमें कुछ सेकण्डिोंमें सुनाकर अर्जुनकी कमान-पर तीर चढ़ा देता है. वह तीर चढ़ानेवाला, हम सबके मनमें बैठा है. "बस जरा गर्दन झुकाओ, देख लो."

और हमारे प्यारे नबी, मुहम्मदने, क्या किया ? ईरान, रोम और ईथियोपियाके गुलाम अरबोंमें हिम्मत फूंक दी. काबेके तीन सौ-साठ बुत, काबेमें ही थे, पर हमारे नबी और उनके सच्चे साथियोंके दिलमें वे लकडीके तीन-सौ-साठ टुकड़े थे. बुत, काबेकी ईंट-पत्थरकी तरह नबीकी नजरोंमें, लकड़ीका ढेर थे; तभी तो वह बुतोंके वहां रहते हुए भी काबेका तवाफ़ (परिक्रमा) कर गए. नबी बुत-शिकन नहीं थे. वह बुज़दिली-शिकन थे. कायरताको कुचल डालनेवाले थे. लकड़ी-पत्थर तोड़ते वह क्या भले लगते, उन्होंने तोड़ी गुलामी, बुज़दिली, कायरता. अरबोंके दिलसे कायरता हटी, हिम्मत आई, बुत दिलसे हटे, फिर काबे-से भी उठ गए और लकड़ी लकड़ीकी तरह काममें आ गई. यह याद रखिए, बुत-शिकनी बुत-परस्ती है. बुत-शिकन बुतको खुदा मानकर उसको तोड़ने जाता है और दिलमें सोचता और कहता जाता है, "मैं तुझे तोड़ता हूं, बता तू मेरा क्या बिगाड़ सकता है ?" जब कि बुत-परस्त उस बुतको खुदाकी यादका एक जरिया मानता है. हमारी ज़बान क्या है ? एक मांसका टुकड़ा, पर उसको हिला-हिलाकर तो हम खुदा-की याद करते हैं. कुरान और गीता क्या हैं ? स्याही रंगे काग़ज़के टुकड़े, पर उनको पढ़-पढ़कर हम राम-रहीमको पाना चाहते हैं. कोई बुत-परस्त या नाबुत-परस्त उनको खुदा नहीं कहता, और न मानता है ! खलीफा उमरने अरबोंका एक बुत और हटाया. काबेमें लगे 'संगे अस-वद' (काले पत्थर) को चूमते वक्त वे कहा करते थे, "है तो तू एक पत्थरका ही टुकड़ा, पर मैं तुझे सिर्फ इसलिए चूमता हूं कि नबीने तुझे बोसा दिया था (चूमा था)" नबीने बुतोंका तवाफ किया, बुत लकड़ी बन गए और लकड़ियोंमें पहुंच गए. खलीफ़ाने पत्थरको पत्थर कहा, पर

उसे पत्थरोंमें नहीं पहुंचा सके. नबी नबी थे, ख़लीफा ख़लीफा. मुसलमानोंने नबीकी राह बन्द कर दी और बीसवीं सदीने ख़लीफाकी. मुझे तो ख़लीफाओंके बाद मुस्तफा-कमाल ही मुसलमान जंचे, पर पता नहीं उनको इस सदीके कितने मुसलमान मुसलमान मानते हैं ? हां संतोंमें मुसलमान हुए, हुक्मरानोंमें बहुत कम.

करोड़ों दुःखी है, दुःख दूर भी करना चाहते हैं; पर राह चलेंगे मन की, ज़मीरकी नहीं ! प्रकृतिके नियमोंको तोड़कर ही चलेंगें. भूखे मरेंगे, नंगे रहेंगे या फिर शराब पीयेंगे, बेहोश रहेंगें, मदहोश बनेंगे और कपड़ों से लदकर चलेंगे ! पेटको ठूंस-ठूंसकर भरेंगे, मानो वह किसी बजाज़ या हलवाईके गोद लिए लड़के हैं ! मज़ाक उड़ायेंगे किसका ? साइन्सका, विज्ञानका, ज्ञानका, यानी अपना. साइन्स आखिर इन्सानी तजुरबेका निचोड़ ही तो है, उससे चिढ़ क्यों ? रुपयेसे अगर कोई ज़हर मोल लेकर खा ले, तो अपने सारे रुपयोंसे चिढ़कर उन्हें फेंक तो न दोगे. यूरोप पागल होकर अगर साइन्ससे भूचालका काम ले, तो इसमें साइन्सका क्या दोष ? इस तरह पागलपन होता रहा है, हो रहा है, होता रहेगा. यह पागलपन किसी समझदारको क्यों बेज़ार करे ? ज़िन्दगीके क़ानूनोंको मानकर ही सुख मिलेगा. विज्ञानियोंकी तरह तहतक पहुंचकर ही सुखी हो सकते हो.

महावीर, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद ऐसे ही विज्ञानी थे, जैसे आर्किमीडस, न्यूटन, एडीसन इत्यादि ये बिजली और भापके किस्सोंमें पड़कर लगे दुःखके कारणोंकी खोज करने और उन्हें खोज भी लाए. कुदरती क़ानूनोंपर चलकर ही कुछ कर जाओगे, नहीं तो जिन्दगी बेकार जाएगी.

जिन्दगीकी आजकी समस्याएं पुराने हलसे ही नहीं सुलझेंगी. पुराने और नये दो अलग रास्ते हैं, वह कहीं नहीं मिलते. मालाके दाने सूतसे मिले रहते हैं, पर वे आगे-पीछे नहीं हो सकते. हम हिम्मत और स्पिरिट तो कृष्ण, वीर, बुद्ध, ईसा और मुहम्मदकी अपनाएंगे पर हम हम ही रहेंगे. स्टालिन, लेनिन बनने चलता, तो न लेनिन बनता और न स्टा-

लिन. मुस्तफा-कमाल खलीफा उमर बननेकी कोशिश करता तो तुर्कीका यह नकशा ही न होता, गांधीने गीता पढ़ी, सुदर्शन चक्र नहीं सम्भाला. जैन उसे जैन कहने लगे, ईसाई ईसाई, मुसलमान मुसलमान, और हिन्दू हिन्दू. वह तो गांधी ही है, और गांधी ही रहकर देह त्यागेगा.* तुम, तुम बनो. मालामें अपनी जगहके मोती बने रहो. हिम्मतके सूत्रके सहारे टिके चमकते रहो.

ठीक है, सरकारने पुलिस तैनात कर रखी है, वह चोरको पकड़ेगी; मजिस्ट्रेट उसको दण्ड देगा, जेलखाना बन्द करेगा. तो क्या इस नाते तुम घरमें आए चोरका मुकाबला करना छोड़ देते हो ? तुम पुलिसकी बाट नहीं जोहते, चोरको पकड़ते हो, और अगर वह हाथापाईपर उतर आता है, तो मुक्के भी जमाते हो. ठीक इसी तरह, जो खुदा करता है, वही होता है; जो तक़दीरमें लिखा है, वह भुगतना ही पड़ेगा—क्या इस नाते हाथ-पर-हाथ रखे बैठे रहोगे ? अगर ऐसा करते हो तो तुम कम-हिम्मत हो. सुख न पा सकोगे. हाथ, पांव, मन, मस्तक जो तुम्हारे पास हैं, वह कामके लिए हैं, सिर्फ दिखानेकी चीज नहीं. खुदाके सच्चे मौतक़िद हजरत मुहम्मद हाथ-पर-हाथ रखकर नहीं बैठे, तीर-कमान लेकर फौजी जनरली भी की और बादशाह बनकर अदलो-इन्सान भी बांटा. बाप बनकर बेटियोंको पाला-पोसा, और नाना बनकर धेवतोंको पुचकारा ही नहीं उनके ऊंट बनकर उन्हें पीठपर चढ़ाया भी. लेकिन याद रहे, जनरली, बादशाही, बापपन और नानापन किसीको उन्होंने अपने सरपर नहीं चढ़ने दिया. सिपाहीको कन्धे चढ़ाया, पर जनरलीको मुंह न लगने दिया; जनरलीकी मुंहजोर घोड़ीकी हड्डियां उनके रानोंके बीचमें हमेशा चर-चर बोलती रहीं. गुलाम तकको सर चढ़ाया, पर बादशाहीकी शेखी उनके जानुओंकी रगड़मे मुंहकी राह फेन उगलती रही. खजूरके तिनकोंका बिछौना और उनके रूखे-सूखे फलोंकी खुराक जब बादशाहीको मिले, तो वह अकड़ भी कैसे पाए ? शायद ही कोई बाप हजरत जैसा

* यह लेख गांधीजीके निधन से पूर्व लिखा गया था.

अपना बेटीको प्यार करनेवाला मिलेगा. पर बादशाहीकी हैसियतसे वफ़ात पानेपर भी न एक चप्पा ज़मीन छोड़ी और न एक कौड़ी नक़दी. जो खुदाका मौतक़िद और हिम्मतका पुतला है, वह अपनी औलादके लिए खनकते ठीकरे तरकेमें नहीं छोड़ जाता, वह उनको दे जाता है हिम्मतका ख़जाना.

'जो किस्मतमें लिखा है, वह होकर रहेगा', 'किया कर्म भोगना ही पड़ेगा'—यह कहा महावीर स्वामी और बुद्ध भगवानने. पर वह कब हाथ-पर-हाथ धरकर बैठे ? वह तो बैठ सकते भी नहीं थे. हज़रत मुहम्मदने बादशाही कमाई, पर उसे अपनाया नहीं. यह दोनों (महावीर, बुद्ध) उसे ओढ़े-ओढ़े आए और उतार फेंका. हिम्मतवालोंको दूसरेकी दी हुई चीज़ पसन्द नहीं आती, भगवान्‌की भी दी हुई नहीं. जिस्म मां-बापसे मिला था, छोडा नहीं जा सकता था, पर उसे छोड़ा जैसे ही बना रखा था, किरायेके मकानकी तरह; भले किरायेदारकी हैसियतसे उसे ख़ूब लीपा-पोता, चमकाया, पर अपनाया नहीं. ये दोनों राजकुमार राजकुमारपनका कलंक धोनेके लिए कुछ दिनों भूखे-प्यासे रहे, पर कुछ ही दिनों, उसके बाद इतने काममें लगे कि आजकी यह रेल, तार, हवाई जहाज़की दुनिया उनके कामका हिसाब नहीं लगा पाती. राजपाट छोड़ना क्या कम हिम्मतका काम है ? पर उससे भी ज्यादा हिम्मत का काम है राजपना छोड़ना, जो इन दोनों राजकुमारोंने यों ही छोड़ दिया. असलमें इन्होंने छोड़ा पुराना रस्ता, और निकाली नई सड़क. इन्होंने विज्ञानियोंकी तरह परीक्षण किए और सचाई तक पहुंचे. उंगलियां झुलसाईं, हाथ गलाए, तब कुछ पाया. इन्होंने फटकारें सहीं और आज भी यशोधराके उलाहने सुन रहे हैं. अपनी देह तुड़वाई, पर सिद्धान्तकी देहपर खरोंच तक न आने दी.

समझ लीजिए और खूब समझ लीजिए कि सिर्फ़ सच्चे, पक्के, पूरे ज्ञानसे जीवन सुखी नहीं हो सकता. उसमें हिम्मतकी पुट देनी ही होगी. बिल्लीकी गर्दनमें घण्टी बांधनेकी बात तुम अक्लसे सोच सकते हो, पर

बांधनेकी हिम्मत नहीं—तो सोचनेकी बात बेकार है. बेहिम्मतवालेके दानी दिमाग़को ठस्स ही कहना पड़ेगा. अर्जुनके ज्ञानको हिम्मतका पुट दिया गया था. स्टालिनके ज्ञानपर हिम्मतके कई पुट लगे हुए थे, वह लोहेका नहीं था, ख़ून, मांस, चमड़ेका ही था. पर उसका नाम लोगोंने लोहेका आदमी रख दिया था.*

और भी आदमी हैं, तुम भी आदमी हो. जो कसौटी औरोंके पास है, वही तुम्हारे पास है. फिर तुम अपनी कसौटीपरक सकर ठीक-बे-ठीककी पहचान क्यों नहीं करते. तुमको जलेबी बनानी आती हो या न आती हो; पर तुम खानेपर और अच्छा न लगनेपर होशियार-से-होशियार हलवाईकी कारीगरीमें नुक्स निकालनेके हक़दार हो. क्या करना ठीक है, क्या बे-ठीक, इसे समझ सकते हो और बड़े-से-बड़े वेदपाठीकी भूल पकड़ सकते हो. दूसरोंकी कसौटीपर कसी बातें न अपनाओ, और अगर अपनानी ही पड़ें, तो अपनी कसौटीपर कसकर देख लो. अपनी कसौटीपर कसी बात सच्चे एत्तक़ादके नामसे पुकारी जाती है, उसीका नाम सच्चा विश्वास है, वही सम्यक-दर्शन है. इस विश्वाससे बड़ा बल मिलता है. सचाई तुम्हारी ओर रहती है और तुम्हारा बल सौ-गुना हो जाता है. दूसरोंकी कसौटीपर कसी बातोंमें तुम्हें शक रह सकता है, और रत्ती-भर शक लाखों मन अक्लको बेकार कर देता है, बेजान बना देता है. जीवनमें यह बड़े मार्केकी बात है. कर्णके रथको हांकनेवाला शल्य था. शल्य कहते हैं शकको, और कर्ण कहते हैं कानको. शक हमेशा कानकी राह दिल-दिमाग़में दाख़िल होता है. सुना-सुनाया धर्म शकसे खाली नहीं होता. कर्णके दिलमें अपनी जीतके बारेमें शल्यने शक पैदा कर दिया था और यों उसको कमज़ोर बना दिया था. अर्जुन भी रूढ़िवादी और शक्की था, कमज़ोर था. उसको गीता सुनाकर, कृष्णने शक दूरकर बलवान बना दिया था. कर्णकी हिम्मत खसोटी गई, अर्जुनमें हिम्मत ठूंसी गई. एक क्षणकेलिए भी अर्जुनका यदि कृष्ण (हिम्मत) का साथ

*रूसी बोलीमें लोहेके आदमीको स्टालिन कहते हैं.

छोड़ देते तो वह ख़तम हो जाता और अगर कर्णका शल्य चुपचाप सारथी रहता तो जीत कर्णकी होती. असलमें मन और मस्तककी, मंसल (एक दवा) और पुटाससे, हिम्मतके धड़ाकेका चमत्कार पैदा होता है या मन और मस्तकके गरम-नरम तारोंके मिलनेपर हिम्मतकी चिनगारी निकलती है. सुख दिखाई दे जाता है और फिर मिल तो जाता ही है.

कृष्ण, यानी अन्तरात्मा या ज़मीरकी सलाहके सिवाय सब सलाह बेकार ! सलाह सलाह ही नहीं है, अगर वह तुममें हिम्मत न जगा दे, तुम्हारा शक न मिटा दे, तुम्हारे मन और मस्तकको एक स्वरमें न ला दे. विश्वास, लगन, हिम्मत, श्रद्धा, एत्तक़ाद (Conviction) सबका एक ही मतलब है. एत्तक़ादके बिना बाहरका युद्ध हमारे अन्दर घुस बैठता है. दुश्मनसे लड़नेकी बजाए मन-मस्तक आपसमें ही लड़ने लगते हैं. बुद्धि कुछ कहती है, मन कुछ. आत्माके दो टुकड़े हो जाते हैं. खींचातानीमें दुश्मनको मौका मिल जाता है और सुखकी जगह दुख आ बैठता है.

सुखी रहना चाहते हो तो किसीकी शक न दूर कर सकनेवाली नसीहत मानकर न चलो, फिर चाहे वह बापकी हो, गुरुकी हो, भगवान्‌की हो. जब नसीहतके बाद भी शक रह गया, तो नसीहत कैसी ! अगर किसी नसीहतसे तुम्हारा शक दूर हो जाए, तुममें सच्चा विश्वास पैदा हो जाए, तो उसीको मानकर चल पड़ो, फिर चाहे वह बच्चेकी हो, मूर्खकी हो या शैतानकी.

सुखी रहना चाहते हो तो यह ख्याल दिलसे निकात फैंको कि जो क़ायदे चले आ रहे हैं, वह ठीक है; जो रिवाज चले आ रहे हैं, वह भले हैं; जो पुरानी किताबोंमें लिखा है, वही आज भी ठीक है; बेशक वह ज़मीरकी, अन्तरात्माकी, कसौटीपर कसी चीज़ें हैं, पर तुम्हारी कसौटी पर नहीं. अगर तुम्हारी कसौटीपर ठीक उतरें तो अपना लो. फिर वह तुम्हारी हैं, तुम्हारी होकर रहेंगी, तुम्हें सुख देंगी. यही राह सुखको गई है.

अहंकार छोड़ो

सात

जवानो, 'मैं' आदमीका सहारा है. 'मैं' जीवनका बीज है, आदमीका तो है ही. 'मैं' नहीं, आदमी नहीं. 'मैं' को बचाना ही चाहिए. उसके लिए जान भी जोखममें डाली जा सकती है. मैं यानी सीधा-सादा मैं तो हमें बनाए रखनेके लिए जरूरी है; पर टैं-वाला मैं बनीको बिगाड़नेवाला होता है. टैंसे न निभी और न निभेगी. लालचकी भूख कभी नहीं मिटती. टैंका पेट भी कोई नहीं भर पाता. टैंमें 'मैं हूं', 'मैं-ही हूं' की भावना रहती है. पण्डितोंने उसका नाम रक्खा है अहंकार. अहंकारका अर्थ है—'मैं-पन'. यह सबमें है. बहुतोंमें इसने टैंका रूप पा लिया है. हर टैं-वाला मैं अपने अहंकारके पेटको भरनेमें लगा है. सारी उम्र लगे रहकर भी वह उसको नहीं भर पाता. 'मैं' की तसल्ली न किसीसे हुई, न हो रही है, न कभी हो सकेगी. जवानो, इसकी तसल्लीमें लगे और गए.

अहंकारी अकेलेमें जब अपनी खोज करता है, वह सचमुच अपनी ग़लती नहीं पाता, अपनेको बिलकुल ठीक पाता है. और भी कितने

उसको ठीक ही समझते हैं. अहंकारकी ऐनकमें दिखाई ही ऐसा देता है. अहंकारीको अपने अहंकारी होनेका पता भी नहीं होता. वह करे तो क्या करे ? दिकके बीमारको जिस तरह मौतके बहुत पास पहुंचकर अपनी बीमारीका पता चलता है, ठीक उसी तरह अहंकारीको आफ़तमें फंसकर ही अपनेमें अहंकारके होनेकी बात सूझती है. अब तीर कमान से छूट चुका होता है, वापिस लौटे तो कैसे ?

अहंकारी अपनेको अहंकारी नहीं मानते. दुर्योधन और दुःशासन अपनेको अहंकारी नहीं समझते थे. जुएमें जीतके बाद जीती हुई चीज़ के भोगनेके वह अपनेको हर तरह अधिकारी समझते थे. इसमें उनकी भूल कहां थी ? सब जुआरी यही करते हैं. रावण भी आमरण सीता हर लानेको ठीक ही समझता रहा. अपनी समझमें उसने सचाईके लिए जान दी. भले ही वह औरोंके लिए अहंकारकी वेदीपर बलि हुआ हो.

हम सब भी अहंकारके साथ ऐसे घुल-मिल गए हैं कि हम अपनेको कभी अहंकारी नहीं जंचते; पर दूसरे सब हमें अहंकारी जंचते हैं, दूसरे सब हमको अहंकारी दिखाई देते हैं. यही सबूत है कि हम अहंकारी हैं. जवानो, अपनी इस बुराईको मान लेनेमें ही भला है. अहंकारको कुचलकर तुम टोटेमें न रहोगे. इससे तुम्हारे सीधे-सादे 'मैं' को कोई धक्का न लगेगा. अगर तुम सचमुच घर, दुकान या समाजके ताना-शाह बनना नहीं चाहते और सचमुच तुममें किसीके क्रीत, दास या पिटठू बननेकी इच्छा भी नहीं है, तो तुमको अहंकारको भूखा मारनेकी कला सीख ही लेनी चाहिए. सचाई, इन्साफ और सहयोगके कदमोंमें घमण्ड-का सिर डाल देना ही अहंकारको भूखा मारना है. सचसे आत्मा ताकत पाती है, इन्साफसे वह आजादीका मजा चखती है, और सहयोगमें आनंद मानती है. सहयोगसे प्रेम उबलता है, प्रेम हृदयको जीत लेता है. इन्साफ राज जमाता है, ताक़त राजरानी है. यह बात सब जगह सच उतरेगी—घरमें, दुकानमें, समाजमें, छोटे और बड़े मामलोंमें.

पेट भरनेपर अहंकार दास-दासियां तैयार करता है; और वही

भूखा रहनेपर सखा-सखियां, भाई-बहिन, साथी-साथिनें बनाने लगता है. अब कहो, तुम्हें दोस्त चाहिएं या दास ? दास मौका पाकर तुमसे ज्यादा अहंकारीसे जा मिलेंगे, दोस्त तुम्हारा आजीवन साथ देंगे. राज-युगका खात्मा हुआ, घमण्डियोंकी पंचायत चल बसी. अब जमाना है भाइयोंका, साथियोंका, हमजोलियोंका. इकलेका व्यापार कम हो रहा है, साझेकी दुकानें चमक रही हैं. अहंकार अध-पेट रह रहा है. भूखों मरनेके दिन आ रहें हैं. टैं-वाले 'मैं' को भूखा मारे बिना गुजारा न चलेगा.

तुम कहते हो, दोस्त नहीं मिलते. हां, नहीं मिलेंगे. तुम अहंकारी हो, अहंकार छोड़ो तो दुश्मन दोस्त बन जाएं. अहंकारपर पांव रख-कर सचाईको सर झुकाओ, हवा बदल जाएगी. अपनी शान बढ़ाकर तुम जीवनमें विजयी नहीं हो सकते, अपनेको फैलाकर, यानी समाजके सच्चे सदस्य बनकर, जीवन आनन्दसे बीत सकता है, जय भी मिल सकती है.

अगर तुममें अहंकार बढ़कर काबूसे बाहर हो गया है तो घबरानेकी जरूरत नहीं. उससे चरित्र संगठनका काम लेना शुरु कर देना चाहिए. इस कामके लिए वह पूरा योग्य है. उसका जन्म ही इसीलिए हुआ है. पर समाज-सम्बन्धमें वह बिलकुल ना-तजुर्बेकार साबित हो चुका है. ऐसे अवसरोंपर उसे पास नहीं फटकने देना चाहिए और हो सके तो भूखों मार डालना चाहिए. बहुत भावुक बननेसे काम न चलेगा. भावु-कताके मामलोंकी ओर ध्यान ही न दो. समस्याओंको समस्या-भर समझो, उनके होकर न रहो. अहंकारवश तुम हर बातको अपनी निजी बात समझ बैठते हो और फिर उसके बिगड़ने-बननेसे दुःख-सुख मानते हो. यह तो भूल है, इसे सुधारो. समस्याओंको और उनके हलको अनुभवसे ज्यादा कुछ न समझो, फिर उन अनुभवोंसे मौकेपर फ़ायदा उठाओ.

टैंमें आकर कुछ कर बैठना कोरा गंवारपन है. टैंको कुचल

डालना ज़िन्दगीपर गहरा असर डालता है. इस असरकी पहुंच सब ओर होती है. बापने टेंमें आकर प्रह्लादको खो दिया. घरवालोंकी टेंसे मीरा हाथसे निकल गई. तुम भी अपनी टेंमें अपनेको न खो बैठना. अहंकार मारकर अपने बेटेतकको अपनी बात प्यारसे समझानी चाहिए. उसकी मुहब्बतको बराबरके बनकर हासिल करना बुरा नहीं. अपने बड़े कह गए हैं कि सोलह वर्षका बेटा, बेटा नहीं, दोस्त होता है. बाप-पनकी टें छोड़े बिना वह दोस्त नहीं बन पाएगा. बेटेके दोस्त बननेसे बापपनेको कोई धक्का नहीं लगेगा; क्योंकि तुम तो उसको दोस्त समझ-कर सचाई और इन्साफके साथ अपने कामोंका मेल बिठाना चाहते हो. बेटेके साथ इन्साफके वक्त बराबरका वर्ताव करनेसे तुम उसकी नज़रों में और भी ऊंचे उठोगे. वह अब तुम्हें कोरा बाप ही न मानकर गुरु भी समझने लगेगा. पर तुम यह काम गुरू बननेके लिए थोड़ा ही कर रहे हो. तुम्हारी गरज तो अपनेको ठीक बनानेकी है.

अहंकारसे तुमको बेजा आत्म-बलिदानका रोग भी लग सकता है. बेजा आत्म-त्यागसे तुम अपना नुकसान भी कर सकते हो. अहंकारको भूखा मारकर तुम उस बीमारी और नुकसानसे बच सकते हो. जबर-दस्ती किए दान-त्याग, और दिखावेके धर्मके नामपर किए गए परमार्थसे बढ़कर दार्शनिकोंको और कोई चीज़ न मिलेगी जो आत्म-शुद्धिमें बाधा डाल सके. उस दानको लेनेवाले, उस त्यागसे फ़ायदा उठानेवाले, उस परभार्थको उपयोगमें लानेवाले, अपनी आत्माको मैला कर लेते हैं. उस दान, त्याग और परमार्थसे जो सड़ांद निकलती है, वह समाजकी सेहत को बिगाड़कर उसे सदाको रोगी बना देती है.

मैं और टें-वाले 'मैं' का अन्तर कभी न भूलना. टें-वाले 'मैं' को छोड़नेकी बात कही जा रही है, 'मैं' छोड़नेकी नहीं. भूखे मर जाओ पर उसके हाथका दिया न खाओ जो सच्चा आनन्द मानकर तुमको नहीं खिलाता. बीमारीमें कराहते रहना पसन्द करो, पर उउके हाथसे दवा स्वीकार न करो जो सच्चा आनन्द मानकर तुमको दवा नहीं दे

रहा. मतलब यह है कि सच्चे मनसे न किए उपकारका बोझा अपने ऊपर लादकर आत्माको न दबाओ. यह अहंकार नहीं है, सच्चे 'मैं'की शान है, पहचान है. ऐसी आत्माएं हीं फलती-फूलती और फैलती हैं.

आदमी हिल-मिलकर रहनेवाला प्राणी है. अहंकार हेल-मेलमें टांग अड़ाता है. यों, इसको भूखों मारनेकी कही जाती है. हिल-मिलकर काम करनेका यह मतलब हरगिज नहीं है कि औरोंके साथ मिलनेमें तुम अपने गुण ही खो बैठो. तुम्हारी विशेषता तुम्हारे साथ रहनी चाहिएं. और वे हेल-मेलसे और भी फूलें-फलेंगी, मुरझाऐंगी नहीं. औरोंकी विशेषताओंको तुम अपनी भी कैसे कह सकते हो. अपनानेकी कोशिश कर कुछ अंशोंमें अपना भी लोगे, तो निभाव न हो सकेगा और जल्दी ही हेल-मेलमे फर्क आजाएगा. स्वाभिमानी भूखा मर सकताहै, झगड़ा नहीं करता, हेल-मेलमें मैं को झुकानेकी बात हम कह ही नहीं रहे. हम सिर्फ यह कह रहे हैं कि हेल-मेलमें 'मैं' की खुराक न ढूंढों. हेल-मेलपर 'मैं' को पालो नहीं. हेल-मेलमें तो हम समयकी पुकार और जरूरतोंको झुकते हे, न कि एक दूसरेको. मातृभूमि, यानी मादरे-वतनको एक-एकके झुकने और मिलकर झुकनेमें, किसीके अहंकार को झुकाना नहीं पड़ता. किसीके घरमें आग लग जानेपर किसीको कन्धे पर पानीका घड़ा उठानेमें कोई झिझक नहीं होती. 'मैं' खुशदिल है, टें-वाला 'मैं' खिसखिसाया चुप बैठा रहता है. पटरीसे रेलगाड़ी उतर जानेपर सब पत्थर उठानेमें लग जाते हैं, कोई एक दूसरेकी ओर नहीं देखता. मतलब यह कि समयको झुकनेमें 'मैं' बनी रहती है, टें आ ही नहीं पाती.

जवानो, अहंकारको मजबूत करनेकी बात छोड़ो. 'मैं' बिना न तुम्हारा भला होगा, न समाजका, न देशका. दूसरोंको झुकनेकी बात हम कह ही नहीं रहे. मिलकर छान उठानेमें तुम किसीको नहीं झुकते, अगर झुकते हो तो छायामें बैठनेकी जरूरतको, जो सबके कामकी चीज

है. मिलकर दुश्मनका मुकाबला करनेमें तुम किसीको नहीं झुकते; अगर झुकते हो तो उस आरामको, जो उन्हें भगाकर पाओगे. मिलकर मुल्कको आजाद करनेमें तुम किसीको नहीं झुकते, अगर झुकते हो तो उस आजादीकी देनको, जिसको झुकनेसे तुम्हारा 'मैं' बढ़कर दुनियामें फैल और यही जिन्दगींका मकसद है.

यह सब होगा 'मैं' की 'टैं' का पेट भरना छोड़नेसे.

क़बलियत बनाम चापलूसी

आठ

तुम कामयाबीकी सोचते हो, सफलताके राग अलापते हो. अलापे जाओ ! देह इस तरह आजीदन तो मिलनी नही ! वह न मर्द है, न औरत. उसमें न दिल है, न दिमाग़. वह न रीझती है, न खीजती. वह तुम्हारे सोचने और प्रार्थना करनेसे कभी तुम्हारे पास न आएगी. प्रार्थनाके सबसे सच्चे विश्वासी थे महात्मा गांधी. वह भी प्रार्थनामें दिनका बहत्तरवां हिस्सा खर्च करते थे, और वह भी वह हिस्सा— जिसको करीब-करीब सारी दुनिया आधा मुर्दा बना रहनेमें खो देती है. बाकी इकहत्तर हिस्से, यानी तेइस घण्टे चालीस मिनट, उनके क़ाब-लियत देवीकी पूजामें ही जाते थे, और क्यों न जाएं ? उसीने तो उनको महात्मा बनाया था. नामके महात्मा तो हिन्दुस्तामें इतने हैं कि उनकी नामोंकी फेहरिस्तसे एक जिल्द तैयार हो सकती है, पर क़ाबलियतसे बना तो वह अकेला ही महात्मा था. क़ाबलियतवाले सभी महात्मा होते हैं. क़ाबलियत आत्म-विश्वास कराती है. क़ाबलियतसे झिझक दूर हो जाती है. झिझक है क्या चीज़ ? यही कि यह पता न होना कि "मैं

हूं क्या?" "मैं हूं क्या?" के जवाब बतानेमें क़ाबलियत बड़ी मददगार होती है और यों झिझकको दूर करती है. क़ाबलियत आत्माके चमकानेमें सैकल यानी रेगमारका काम करती है. इसीसे तो क़ाबलियत वाला वहां भी रास्ता निकाल लेता है, जहां औरोंको रास्ता नहीं मिलता.

सवाल हो सकता है कि क़ाबलियत क्या चीज है ?—क़ाबलियत उस गुणका नाम है, जिसके ज़रिए हम आफ़तोंके जालमें फंसकर बिना घबराए उससे निकल भागनेकी गली पा लेते हैं. वह अफ्रीकाके सहारामें और अंधमहासागरकी लहरोंपर कुतुबनुमा बन जाती है, वह घटाटोप अंधेरी में बिजलीकी तरह कौंधने लगती है, वह डूबतेको तुंबी और मरतेको रसायन है. वह भरोसेका हथियार तो है ही, पर कभी न साथ छोड़नेवाली भी है. मुश्किल यही है कि यह क़ाबलियतकी देवी जल्दी खुश नहीं होती. पर इससे क्या ? है तो कामकी चीज. जवानो, जवानी इसीके खुश करनेमें बिता दो, टोटेमें न रहोगे. इससे जिनकी आंख लग गई, वह बुड्ढा भी हो तो जवान हो जाता है और जवानोसे कहीं ज़्यादा ज़ोरसे इसके पीछे लग जाता है. ईरानके मशहूर कवि सादीकी आंखें चालीस की उम्रमें इससे चार हो गई. फिर क्या था ? इसीके हो गए, चमक गए और चमक रहे हैं. इसे देखते ही वह चिल्ला पड़े थे, 'गए यों ही बचपनके चालीस साल' दर्शन करते ही अधेड़ बच्चा बन गया !

बच्चा हजार बार गिरकर भी खीजता नहीं, घबराता नहीं, ऊबता नहीं, ना-उम्मीद नहीं होता; खुश-खुश उठता है और फिर गिरनेके लिए चल पड़ता है ! 'क़ाबलियत—सखी' उसे मिल ही जाती है. जवानीमें यही गिर उठकर चलने-पड़नेकी हिम्मत नब्बेतक रह जाती है. अधेड़में और भी कम, और बूढ़ेमें बहुत कम. गिर-उठकर चल पड़नेकी ताकतका नाम ही बचपन भरी जवानी है. बच्चा चलना सीखनेमें किसीकी खुशामद करना पसंद नहीं करता. उंगली पकड़कर चलना चाहता नहीं, चलनेके लिए मजबूर किया जाता है. यों ही तो वह 'क़ाबलियत-सखी'

को पा लेता है. उंगली पकड़कर चलना पहले तो बच्चेको बुरा लगता है, फिर उसमें लुत्फ़ आने लगता है, फिर चाट पड़ जाती है. आलस और सस्ती बढ़ने लगती है. चुड़ैल चापलूसी हंसी-हंसी आकर हाथ पकड़ लेती है और सखी बन बैठती है. चापलूसी भी है बड़े कामकी चीज, बड़ी दूरतक ले जा सकती है. गुलामको बादशाह बना सकती है. गुलाम-वंशका राज हिन्दुस्तान देख चुका है. गुलाम-वंशमें बेटेको गद्दी नहीं मिली. क़ाबलियत देवीने जिसको वरा, गद्दी उसे ही मिली और उसी-से संभली.

चापलूसी जल्दी ही खुश होती है और जल्दी ही चमत्कार दिखाती है, तभी तो लोग उसे अपनाते हैं. भरोसेकी चीज़ वह नहीं है और कोई आत्माभिमानी जवान उसको मुंह लगाना पसन्द न करेगा. भारतके प्राचीन इतिहासकी दोनों पुस्तकें, रामायण और महाभारत, क़ाबलियत देवीकी खोजमें किए हुए प्रयत्नों और उठाए हुए कष्टोंकी कथाके सिवाय और हैं ही क्या ? तभी तो वह एक भारतीय जवानमें रूह फूंक देती हैं. स्कूल-कालेजोंमें पढ़ाई जानेवाली, हिन्दुस्तानकी तवारीखें चापलूसीकी फ़तहकी कहानियां हैं, जो भारतीय जवानको नामर्द बनाती, चापलूसीसे दोस्ती करातीं और हिन्दुस्तान-भरका नहीं तो प्रान्तका नक़ली शासक तो बना ही देती हैं. नौकरसे शाह बनना फिर उसे रुचता ही नहीं बल्कि वह चापलूसीके इतना मुंह लगता है कि उसकी खातिर जान देनेके लिए तैयार रहता है. लागू शेरकी तरह उसे अपनी देहका ध्यान ही नहीं रहता. जवानो, चापलूसी चुड़ैलसे बचना ही होगा. चापलूसीको समझ लेना-भर ही उससे बचनेके लिए काफी है. चापलूसी और गुलामी बहनें-बहनें हैं. चापलूसीको अगर क़ाबलियतकी सौत होनेका मौका हाथ लग जाए, तो वह मिन्टोंमें उसको पतिकी नजरोंसे गिरा देती है. चापलूसी रहने वह उसकी याद ही भूल जाता है ! वह चापलूसीको ही अपनी तरक्कीका सबब समझने लगता है ! चापलूसी-पति कितना ही ज्ञानी और विद्वान् क्यों न हो, वह अपनी तरक्की औरोंके तलवे सहलाने और पंखा झलनेमें

ही समझेगा. नौकरी तो उसे बादशाही जंचती है ! चापलूसी-पति कितना ही सफल व्यापारी क्यों न हो; और यदि तीसरी स्त्री लक्ष्मी भी उसके घरमें जीती-जागती हो, तो भी वह चापलूसी चुड़ैलके इशारेपर एक-न-एक दिन कुछ चीज ले, थानेदारके सामने हाथ जोड़कर खड़े होनेमें ही अपना भला मानेगा. चापलूसी आत्माभिमानको निकाल बाहर करती है, हिम्मतको धता बता देती है. अन्तरात्मासे बात करनेका वह अवसर ही नहीं देती. असलमें वह अपने पतिका कोई काम भी तो अटकने नही देती ! चापलूसी अपने पतिके प तनपर पलती है. आत्म-विश्वासी और स्वाभिमानीके पास यह एक पल नही टिक सकती.

राम और युधिष्ठिर, दोनों ही आत्म-विश्वासी थे. चापलूसीसे इन दोनोंको आसानीसे राज्य मिल सकता था, पर दोनोंने ही चौदह और बारह वर्ष जंगलमें रहकर क़ाबलियत देवीको पुष्ट करनेमें खर्च किए और चापलूसी चुड़ैलको मुंह न लगने दिया. समझौता चापलूसीका गुप्त हथियार है. इसे धोखेसे क़ाबलियतका अस्त्र न समझ बैठना. समझौतेके मौकेपर हज़रत मुहम्मद हिराकी गुफाओंमे बैठकर क़ाबलियत देवीसे अकेलेमें सलाह करते थे. और यों चापलूसीके डाले डोरोंसे साफ़ बच जाते थे. एक राम है, राम अल्लाह है, इस ख़यालको फैलाकर वे चापलूसीको दुनियाके परदेसे नेस्तनाबूद कर देना चाहते थे. इसीलिए उन्होंने यह भी बताया कि सिवाय खुदाके दुनियापर और किसीकी सल्तनत नहीं हो सकती. पर दुनिया राम-रहीमको छोड़ चापलूसीकी ही बनी रही ! अगर वह क़ाबलियतको अपनाती तो जल्दी अपनेको जानकर परमात्माको भी जान लेती और अपने ऊपर आफ़तें बुलानेसे बच जाती. वह न होना था, न हुआ, न सही.

जवानो ! कोई चापलूसीमें फंसे, पर तुम न फंसो. तुममें सौ बार गिर-उठकर चल पड़नेकी हिम्मत और ताकत मौजूद है. तुम क़ाबलियतको हासिल करो, योग्यताको वरो, उंगली पकड़कर चलना छोड़ो. पैरोंकी लड़खड़ाहट ख़याली है. असलमें है ही नहीं. सहारा छोड़ा और गई.

सहारा हटा, विश्वास उपजा और बल बढ़ा. बल बढ़ा, समझ आई, और धोखा दूर हुआ. धोखा दूर हुआ और आत्म-शक्तिका पता चला और फिर विचार-स्वाधीनता, बोलनेकी आज़ादी, मुल्की आज़ादी, रूहानी आजादी सब तुम्हारी हैं.

क़ाबलियतकी तलाशमें निकलो, योग्यताको अपनाओ, जानकारी बढ़ाओ, जंगलमें भटको, बरफ़ीली घाटियोंपर चढ़ो, समुद्रमें गोता लगाओ, क़ाबलियत लेकर आओ और फिर देखो—कौन है, जो तुम्हें नहीं पूछता ? कौन है, जो तुम्हारे पास दौड़ा नहीं आता ? कौन है, जो तुम्हारी आज़ादीमें रोड़ा अटकाता है ?

नौ

दिल शीशा है, इसे निराशाकी ठेस लगी और फूटा. दिल फूल है, इसे नाउम्मेदीकी हवा लगी और मुरझाया. हिम्मत हीरे जितनी सख़्त है, सही, पर निराशाकी चोट खाकर चूर-चूर हो जाती है. निराशा असलमें पूरे बंधे आदमीको बखेर देती है. निराशाकी चोट हिम्मतके हीरे पर भूकम्पकी तरह एकदम अचानक पड़ती है. चोट खानेवाला धक-से रह जाता है, कलेजा कांपने लगता है, आंखोंके आगे अन्धेरा छा जाता है, पाव लड़खड़ाने लगते हैं, दम निकलने-सा लगता है, ऐसी चोट क्या भुलाई जा सकती है ? उसका तो घण्टा, मिनट, सैकिण्डतक मनपर अंकित हो जाता है. यही नाउम्मेदी धीरे-धीरे आदमीके दिलको घुलाती रहती है. महाभारतमें शल्यने कर्णमें निराशा ही तो पैदाकी थी, और आख़िर वही उसको खा गई. निराशा बड़ी जल्दी चिन्तामें बदल जाती है और चिन्ता-चिनगारीसे कौन वाकिफ़ नहीं है ?

चिन्ता हम करते इसलिए हैं कि निराशाको जी-तोड़ कोशिशके ज़रिए निकाल बाहर करें. पर लोगोंको यह पता नहीं कि चिन्ता निराशाकी

बेटी है, वह मांको क्या मार भगाएगी ? नतीजा यह होता है कि निराशा पागलपनमें बदल जाती है, और आदमी समझ बैठता है कि वह सब कुछ पा गया ! सभी पागल अपनेको राजा या ईश्वर समझते हैं और अपनी स्वप्नोंकी दुनियामें मस्त रहते हैं. उनके लिए ठीकरे हीरे बन जाते हैं, चीथड़े रेशमी कपड़े और खण्डहर महल ! निराशा मेहनतसे संभलेगी. यह बीमारी है. बीमारीमें कसरत मना होती है, पर आराम करना ज़रूरी होता है. निराशामें शान्तिकी ज़रूरत होती है, चैनसे बैठनेकी ज़रूरत होती है. निराशा मनकी बीमारी है. मनके पांवके नीचेसे ज़मीन खिसक जानेका नाम ही निराशा है. निराशामें मन बे-सहारे रह जाता है. अब उसे आराम करनेकी बात भी शायद ही भावे. पहले चारपाई बताओ, पीछे आरामकी बात कहो. मनकी चारपाई है धर्म. ना-उम्मेदीका वह सहारा है. चारपाई कितनी ही टूटी क्यों न हो, आखिर सहारा होती है.

भंगके नशेकी तरह निराशाओंमें तरंगें उठती हैं. बहुत ऊंची तरंगमें अपना कुछ पता नहीं रहता. मामूली तरंगमें निराश होनेका ज्ञान तो रहता है, पर आदमी कर कुछ नहीं सकता. हलकी तरंगमें निराशाका ज्ञान रहता है, साथमें थोड़ी-सी हिम्मत भी उसको दूर करनेकी रहती है. यही अवसर है, जब निराशको यह मान लेना चाहिए कि वह निराशाके नशेमें है. जिन्दगीमें कभी ऊंची लहरपर और कभी नीचीपर होना जरूरी है. इसी तरह आशाके साथ रहकर निराशाके साथ रहना भी ज़रूरी है. निराश होना बुरा नहीं, निराश बने रहना बुरा है. गिर गए, तो गिरे-पड़े न रहो. उठो, ज़ोर लगाओ, उठ सकोगे. कुछ गिरते हैं, उठते हैं, गिरते हैं, फिर उठते हैं. कुछ गिरते हैं, पड़ रहते हैं, फिर उठते हैं; कुछ गिरते हैं तो गिर ही पड़ते हैं. यह बहुत बुरे. यह ठीक है, गरमी और जाड़ेमें कभी-कभी बादल होते हैं, और बरसातमें हफ़्तों छाये रहते हैं, पर यह तो ठीक नहीं कि धूप ही न निकले. कफ-प्रकृतिवाले गिरते हैं, गिरकर उठते हैं, देरसे उठते सही; हां, बात-प्रकृति

वालों जैसी तेज़ी-तर्रारी उनमें नहीं है, न सही. पित्त-प्रकृति वालोंका हंसमुख चेहरा, फुर्तीला बदन, आशा-भरा मन देखकर क्या उदास-प्रकृति के लोग उदासी छोड़नेका सबक न लेंगे ? हमारी पैदायशी खासियतें ना-उम्मेदीमें दूसरोंकी अड़चन क्यो बनें ?

यहां यह याद रहे कि सुस्त आदमी चुस्तोंके साथ रहकर कभी-कभी और भी सुस्त बन जाते हैं, और वह ही अपनेसे ज्यादा सुस्तोंमें रह-कर चुस्त बन जाते हैं. पैदायशी खासियतें बदली नहीं जा सकती—न सही. उनसे फायदा तो उठाया जा सकता है. "जो है, सो सही" की आदत बहुत बुरी. यह आदत आदमीके पैर पकड़कर बैठ जाती है, आगे बढ़ने ही नहीं देती. बढ़ना जरूरी है. राम, युधिष्ठिरको छोड़िए, उनका इतिहास अंग्रेजोंको ठीक-ठीक न मिला, न सही; चन्द्र-गुप्त, अशोक, हर्षवर्धन, अकबर, शाहजहांका गरम* हिन्दुस्तान जब ठंडे बरतानियोंसे कई गुना चढ़ा-बढ़ा था, तो आज तुम्हारा हिन्दुस्तान दुनिया मे वही स्थान क्यों नहीं पा सकता ? मैं यह कह रहा हूं कि पैदायशी खासियतें कुछ भी रहा करें, हमें तरक्की करनेका मौका है और नाउम्मेद होनेकी जरूरत नहीं.

जो कुछ तुम हो, उसकी शिकायत क्यों करते हो ? तुम्हारे वैसे पैदा होनेमें कुछ मतलब है. अगर तुम सुस्त पैदा हुए हो, तो क्या ? कवि और दार्शनिक तो बन सकते हो. इन दोनोकी देशको कम जरूरत नहीं रहती. वह सुस्त रहकर भी औरों को चुस्त बना देते हैं. वह निर्बल होकर भी निर्बलोंमें बल फूंक देते हैं. वह सोते रहकर भी रो-रोकर और बराबर शोर मचाकर औरोंको जगाते रहते हैं. वह असलमें सुस्त नहीं हैं, सुस्त बदनमें चुस्त आत्मा हैं. द्रोपदी लड़ी नहीं, पर उसकी एक आह, उसका एक आंसू, पांचों पाण्डवोंके द्वारा, दुनिया तहस-नहस कर

---

* नोट—अंगरेज़ोंका कहना है कि हिन्दुस्तान गरम मुल्क है,यहांके रहनेवाले सुस्त होते हैं. ज्यादा तरक्की नहीं कर सकते; बरतानिया ठंडा मुल्क है वहांके रहने वाले मेहनती होते हैं और तरक्की कर सकते हैं.

डालनेके लिए काफी था. अपने बालोंकी लटें दिखाकर श्रीकृष्णसे क्या उसने कौरवोंका मटियामेट नहीं करा दिया ?

हाथ-पांवकी तरह हमारा स्वभाव भी हमारे साथ है और साथ ही चलेगा. उसका रोना भी क्यों रोना ? उसको हटानेकी कोशिश बेशक होगी. उससे काम लेनेमें नफ़ा है, उसके दास बननेमें नहीं. हठ उसकी न रहेगी, हमारी रहेगी. उसे हम अपने पूरेपनको बखेरने न देंगे, बंधेपन को खोलने न देंगे. हमारा कमज़ोर बदन नाउम्मेदी लाए और लाए, हमारी ज़बानपर नाउम्मेदी न आने पाए. आशा न रही, तो निराशा भी न रहेगी; भले दिन न रहे तो बुरे,दिन भी न रहेंगे; तन्दुरुस्ती न रही, तो बीमारी भी न रहेगी; हंसी न रही, तो रोना भी न रहेगा.

गिरते क्यों हैं ? इसका जवाब सीधा और साफ है. जानते तुम हो, फिर पूछते क्यों हो ? लो, सुनो—जमीन ऊबड़-खाबड है, मन चंचल है, ध्यान बंटता है, देहका संतुलन बिगड़ता है, जमीनमें खींचनेकी ताकत है—गिर जाते हैं. पर गिरते तुम कभी-कभी हो, दिनमें एकाध बार, सारे दिन तो ठीक चलते रहते हो. फिर तुम सारे दिनकी बात सोचकर एकाध बारकी बात ही क्यों याद रखते हो. गिरनेवाले तुम तो हो नही, तुम तो चलनेवाले हो. पचास-सौ बरसमें कभी एकबार मौत आती है, फिर उस कम्बख्तको रोज़ क्यों सोचते हो ? ज़िन्दगीकी सोचो, जो दिन-रात तुम्हारे साथ रहती है. तुम मौत नहीं हो, ज़िन्दगी हो. नाउम्मेदी आई है, मेहमान है, कुछ देर रहकर चल देगी. आशा तुम्हारी सगी-सहोदरी है. वह न गई है और न जाएगी. तुम मेहमानसे बातोंमे इतने मस्त हो गए हो कि अपनोंकी सुध ही भूल बैठे हो ! मेहमानको कुछ देर इस तरह अपनाना ही चाहिए. मेहमानके तुम मेज़बान हो, वह नहीं. मेहमान तुम नहीं, मेजबानीका रिश्ता थोड़ी देरका ! फूसकी आगकी गरमी, साधूकी मुहब्बत, मुलम्मेकी चमक, बादलकी तस्वीरें, स्प्रिटका रंग—जैसे आए-गए होते हैं, वैसे ही नाउम्मेदी आई-गई समझो. समझो क्या, आई-गई हैं ही. तुम्हारा 'मैं' जब भूलसे ना-

उम्मेदीको अपना बैठता है, तभी तुम, तुम न रहकर नाउम्मेदी बन जाते हो. तुम नाउम्मेदी नहीं. चोर चोरीका काम तो दस-पांच मिनट, घण्टे-दो-घण्टे करता है, बाईस-तेईस घण्टे तो वह चोरी नहीं करता; पर रिश्ता जोड़ बैठता है उस घण्टे-दो-घण्टेसे! फिर वह साहू कैसे बने? तुम रहते हो खुश दिन भर, उदास कभी-कभी; दोस्त सौके, दुश्मन किसी-किसीके; निडर सौ दिन, डरते हो कभी-कभी; पर हाल तुम्हारा यह है कि तुम अपनेको उदास, दुश्मन और डरपोक समझते हो. छोड़ो यह ग़लतख़याली, तोड़ो यह मिथ्या विचार-धारा. तुम वह हो, जो तुम ज़्यादा देर रहते हो. उबलते पानीने किसीको जलाकर अपनेको आग नहीं कहा, और आगने सीता और खुदाबक्स* को न जलाकर अपनेको पानी कहना नहीं शुरु कर दिया. फिर तुम भी उलटी चाल क्यों चलते हो ? निराशाका इलाज तुम्हारे अन्दर ही मौजूद है. गिरते-गिरते संभलनेकी क़ाबलियत तुममें है. मानो तो, तुम तुम हो, तुम्हारे सब गुणों पर तुम्हारा अधिकार है. तुम्हारी देह तुम्हारी है, तुम हुक्म दो तो, वह सब तुम्हारा कहना मानेंगे. आदमी सृष्टिका सबसे बड़ा चमत्कृत प्राणी है. यह दिमागकी साफ़ स्लेट लेकर जन्मता है और जो चाहे उसपर लिख सकता है. कबूतरके दिमागकी स्लेटपर तिनकोंके घोंसलेकी तस्वीर बनी है. वह वैसा घोंसला बनाता है और बनाता रहेगा. पर आदमी तो अपनी स्लेटपर गढ़ी, बंगला, महल, मन्दिर, मस्जिद, पुल, सुरंग जो चाहे बना ले. तुम आदमी हो—जो चाहो अपनी कोशिशसे बन सकते हो और जो चाहो बना सकते हो. फिर निराशाको अपना क्यों समझे हुए हो ? उससे तुम्हारा कोई रिस्ता नहीं, यह तुम क्यों भूल जाते हो?

हिन्दुस्तानमें पैदा होनेके नाते तुम हिन्दुस्तानी और हिन्दुस्तानके मालिक. गलत या सही, यहां अंग्रेजोंका राज होनेके नाते, तुम अंग्रेजी राजकी प्रजा. अब बताओ तुम दोनोमेंसे क्या हो ? प्रजा तुम थे नहीं

*खुदाबख्श एक आदमी है जो आगपर चल लेता है.

श्रौर रहोगे भी नहीं. मालिक तुम थे ही, श्रौर रहोगे. अब तुम अपनी स्लेटपर अंग्रेजी राजकी प्रजा ही लिख लो, तो कोई क्या करे ! निराशा ऐसा ही राज है जो तुम्हारे दिलपर आ जमा है. निराशाका राज रहेगा भी नहीं. तुम उस राजसे इतने जकड़ गए हो कि हाथ-पांव नहीं हिला सकते---न सही, उसे अपना राज तो न कहो. निराशा को अपनी मानकर उसे गोदमें बिठा, आशाके बैठनेके लिए तुम जगह भी न छोड़ो---फिर भला वह क्यों आने लगी.

निराशा अगर बीमारी है और तुम उसके बीमार हो, तो क्या हाथ-पांव चलाना छोड़ दोगे ? बीमारीमें बीमार उठते-बैठते हैं, बातें करते हैं, और जल्दी-जल्दी न सही, धीरे-धीरे चलते हैं; तन्दुरुस्तीकी चाह बनाए रखते हैं और उस हालतमें काम भी करते हैं. निराशा अगर अंधेरा है, तो चलना नहीं छोड़ा जा सकता ? अन्धा होकर भी आदमी चलता रहता है. अंधेरी रातमें, अंधेरेमें हम सब भी टटोल-टटोलकर और अन्दाजेसे चलते हैं. रोशनीकी चाह और आदतें कायम रखते हैं. अपने आपको उजालेके जानवर ही मानते हैं. कभी अंधेरेके जानवर, उल्लू, चमगादड़ नहीं समझते. निराशा अगर नदीकी बाढ़ है, तो याद रखो कि तुम्हारी देह भी छोटी-सी ही सही, पर मजबूत खूब है. बाढ़में पानी कितना भी बढ़े, वह न डूबेगी.

अगर तुम बाढ़में फंस गए हो तो निराशाको अपनाकर अपने अन्दर दाखिल न करो, बाढ़ तुम्हारा कुछ न बिगाड़ सकेगी. नाव बहावके पानीसे नहीं डूबा करती, वह तो अन्दरके पानीसे ही डूबती है. पनडुब्बी बनकर, जान-बूझकर निराशाका पानी भरकर अगर गोता लगाना चाहो तो हर्ज नहीं. वह तो उलटा आनन्द है, ऐबोंसे छिपकर ऐबोंपर वार करना है.

निराशासे बचता कोई नहीं है. महापुरुषोंसे तो उसकी आए दिन टक्कर होती रहती है, पर वह इसे समझते हैं खेलकी चीज. कोहरेकी तरह यह उनको घेर लेती है, पर रोक नहीं सकती. कोहरेमें कुछ दूर-

का दिखाई देता ही है, बहुत दूरका न सही, कुछ कदम चलनेपर उतनी दूरका दिखाई देता ही रहता है, जितना कोहरा होते वह दिखाई देता था. कोहरेकी तरह निराशाकी पोल खुल जाती है और उनकी चालमें कोई फ़र्क नहीं आने पाता. सौ दोस्तोंसे घिरे रहनेपर एक दुश्मनकी थोथी बकवास जैसे ध्यान देने योग्य नहीं होती, वैसे ही सौ आशाओंसे घिरे रहनेपर एक तरहकी निराशाकी परवाह न कर, खुश रहो और उससे अपना सम्बन्ध न जोड़ो !

नाउम्मेदीके वक्त दूसरोंको दोष लगानेसे काम न चलेगा. परिस्थितियोंको कोसनेसे भी कुछ हाथ न आएगा. हाथ आएगा अपनी ठीक-ठीक संभाल रखनेसे. नाउम्मेदीका असली कारण तो तुममें है, औरोंमें नहीं. आफ़तोंके घटाटोपमें भले-भले घबरा उठते हैं. चोट लगनेपर ख़ून न निकले, यह हो ही नहीं सकता; पर ख़ून देखकर जीनेकी उम्मेद छोड़ बैठना, या उस ख़ून निकलनेको कुछ न समझना, अपने बसकी बात है. जब यह कहनेमें नफ़ा है कि ख़ून निकलनेसे क्या होता है, अभी बन्द हो जाएगा—तब यही क्यों न कहा जाए ? किसीके मर जाने या एकाएक गुम हो जानेपर दुःख होता ही है. राम भी सीताके न मिलनेपर विकल हो उठे थे. कार्य न बननेपर दिल टूटता ही है. दशरथ कैकेयीको समझानेमें असफल होकर दिल तोड़ ही बैठे थे. संसारके लालच और क्रूरतामें फंसकर मन भर ही आता है. गर्भवती सीता जंगलमें अकेली होनेपर रो उठी थीं. अपने ही जब विश्वास-घात कर बैठें, तो बड़े-से-बड़े दिलसे आह निकल जाती है. मीर जाफ़रके क्लाइवसे मिल जानेपर शुजाउद्दौला के कलेजेसे आह निकल ही गई थी. बेजा बेइज्जती होनेपर दिल ऐंठ ही जाता है. औरंगज़ेबके दरबारमें नीची जगह पानेपर शिवाजीका दिल ऐंठ ही तो गया था. ये सब बातें स्वाभाविक हैं. पर याद रहे कि यह सब बाते निराशाका नाटक न खेल सकेंगी, धक्का खाकर गिरना भर ठीक है, पड़े रहना ठीक नहीं. उठानेके लिए दूसरोंका मुंह ताकना भी ठीक नहीं. हर ज़रा-सी देरमें कुछ-का-कुछ हो सकता है. तकलीफ़ें

तुमपर अपना रंग चढ़ाने आएंगी, पर तुम उनको अपने रंगमें रंगकर ही नफ़ेमें रह सकोगे.

लक्ष्मणको शक्ति लगी, रामका नक़ली दिल दहला. विभीषणने रामका असली दिल जगाया. असली राम जगा. हनुमानको संजीवनी लाने भेजा और राम युद्धमें लग गया. यही तुमको करना होगा. घटना और मनोभावके जजोंकी बेंच तुम्हारे लिए उस दम फैसला देने नहीं बैठती. उस समय फैसला करता है बस आत्मा, जो अनुभवका रस चखे होता है. अब ना-उम्मेदीको कहां जगह है ? निराशा नहीं है, तो हर दुर्घटना तुम्हारे लिए ऊपर चढ़नेका एक ज़ीना है. मीठा दूधतक कड़ुवी तूम्बीमें कड़ुवा हो जाता है. कड़ुवे दूधका तो कहना ही क्या ! दुखी हृदयको प्यार भी भार-सा जंचता है, भारका तो कहना ही क्या. गन्नेका जीवन जीओ. कड़ुवी खादको मिठासमें बदल दो. नीमका जीवन जीकर दुनियाको दोष न दो. यह ठीक है कि जिसका कोई मर जाए, उसे दरो-दीवार रोते दिखाई देते हैं,पर यह और भी ज़्यादा सच है कि वह रोकर दरो-दीवारको रुला देता है. इस ज़्यादा सचको उसे समझना चाहिए. यह उसके कामकी बात है

मान लो, रेलसे तुम जा रहे हो. उस रेलकी दूसरी रेलसे टक्कर हो जाती है. तुम और तुम्हारे बीस और साथी मुसाफिर टूट-फूटमें दब जाते हैं. सब पड़े-पड़े कराह रहे हैं, रो रहे हैं. उनसे कुछ करते नहीं बनता. तुम दब गए, यह तो घटनाका धर्म है. औरोंकी तरह तुमको भी निभाना ही होगा. पर आगे आत्म-धर्म शुरू होता है, और वह है ज़ोर लगाकर निकलना. निकलना और औरोंको तसल्ली देना, यह कह-कर कि "आता हूं, अभी आता हूं." यह धर्म भी निभाओगे या नहीं ? यदि हां, तो तुमने उस दुर्घटनासे कुछ पाया ही, खोया नहीं. यदि नहीं, तो कराहा करो और चिल्लाया करो.

याद रक्खो हिम्मतकी हद नहीं होती. जितनी चाही जाती है,

उतनी आ मौजूद होती है. ज़्यादा मुश्किलके मौक़ोंपर ज़्यादा हिम्मत आ ही जाती है—पर बांटमें उन्हीके आती है जो हिम्मतके काम करते रहे है, जिन्हें उसका स्वाद लग गया है. आफ़तके समय दो तरहके आदमी आप पैदा हो जाते है—एक ज्ञाता और दृष्टा, दूसरा साहसी और कर्मयोगी. ज्ञाता-दृष्टा मीलके पत्थरकी तरह यह बता देंगे कि गांव किधर और कितनी दूर है. साहसी और कर्मयोगी अपने साथ तुमको ले चलेंगे और गांव पहुंचा देंगे. ज्ञाता-दृष्टाओके पाले पड़े लोग अक्सर दुनियाका, समयका, साथियोंका, रोना रोया करते है. अपने अन्दर कभी नहीं झांकते. साहसियोंके पाले पड़े लोग गिरते-पड़ते बढ़े चले जाते हैं. तकलीफ़ोंको हंसते-हंसते पारकर जाते हैं.

निराशा आदमीका अजब हाल कर देती है. वह उन तकलीफ़ोंके आगे ही घुटने नहीं टेकता जिनसे वह बिलकुल अपरिचित है और जो उसके ऊपर अचानक आ धमकती है. वह तो जाने-पूछे, रोज़के आज़माए बुढ़ापे-के सामने भी कायर बनकर नाक रगड़ने लगता है. बुढ़ापा और उदा-सीनता एक-माने लफ्ज़ वन गए है. आइए, बुढ़ापेका बक्स खोलकर देखे :

१—ज़िन्दगीके इंजनकी भाप निकल गई है. वह कामकी पटरीसे गिर पड़ा है.

२—वह औज़ार जो काम करता था, अब मोथरा हो गया है. बेकार होनेसे हिम्मतके बैटेके बिना पड़ा-पड़ा जंग खा रहा है.

३—साहसका बैल, बन्धु-बांधवोंकी मौतकी गठरियोसे दबा पड़ा दम तोड़ रहा है.

४—बीमारी देवीकी औलाद इतनी बढ़ गई है कि चारपाई नहीं छोड़ने देती.

५—अनुभवकी दूरबीनने दूर-दूरकी खाइयां पास ला रख दी हैं. छोटे-छोटे कांटोंको भालोंमें बदल दिया है. मामूली चोटियोंको हिमा-लयसे ऊंचा कर दिया है !

६—कुछ अनगढ़ पत्थरके टुकड़े हैं, जो अपने आप उछल-उछलकर

पांवसे टकराते हैं. जैसे बेटेका कहना न मानना, बहूकी बेपरवाही, पोते-पोतियोंका ठट्ठा इत्यादि.

यह सारी चीजे बूढेने बुढ़ापेके बक्समे आप भरी हैं. तुम किसी उम्रके क्यों न हो, भरकर देख लो, बूढ़े हो जाओगे.

जो बूढ़ा जवानीके खोए जानेकी बात न ज़बानपर लाता है और न वैसी बात करना चाहता है, वह बूढ़ा ही नहीं हो पाता, जवान ही बना रहता है. कौन ऐसा बेवक़ूफ़ हो सकता है जो वक़्त (Time) में जगह (Space) की तरह पीछे जाना चाहे और इस शर्तपर कि उसके उस वक़्तके सब अनुभव छीन लिए जाएंगे, यानी यह कि वह सोलह बरसका बना दिया जायगा, पर सोलह बरस जैसा बेवक़ूफ़ भी बना दिया जाएगा ! उम्र बढ़ी है तो उसके साथ अनुभव भी बढ़े हैं. अनुभवको बुढ़ापा नहीं सताता, वह गुण हैं. गुण हमेशा जवान रहते हैं. बूढ़ेकी निगाहमें जवानी एक ज़हर है, उतावलापन है, सो इलाजकी हाजत रखती है और इलाज सिवाय दुःख-भरे बरसोंके और क्या हो सकता है ? यों, बहक और उतावलेपनकी बीमारीसे भरी-हुई जवानी बुढ़ापा कहलाने लगती है. बुढ़ापा, यानी पूरी तन्दुरुस्त जवानी. अनुभव-शून्य बूढ़ा तो अनगढ़ जवान को भी बच्चा जंचेगा. तुम यह ही क्यों सोचते हो कि तुम्हारे हाथ-पांव दरख्तके पत्ते-डालियोंकी तरह पीले पड़ते जा रहे हैं, और यह कि उनको जल्दी ही चिता-ईधन बनना है और खत्म हो जाना है ! यों क्यों नहीं सोचते कि बुढ़ापा एक चमकता हुआ हीरा है, जिससे अनुभवकी किरणें निकलकर जवानोकी आंखोंमें चकाचोंध डाल रही हैं ? तुम दुनियाकी जानकारीके भण्डार हो. तुम विज्ञानके खज़ाने हो. तुम साहित्यकी बारीकियोंके मन्दिर हो. तुम कलाकी नस-नसके वाक़िफ़कार हो और सबसे बढ़कर हो यह कि तुमने अपनेको, अपनी आत्माको, और यों परमात्माको पहचान लिया है. अनुभवी विश्वासवाला बुढ़ापा शान है. शान जवान रहती है.

अब बताओ, बुढ़ापा कहां, कब औरे कैसे उदासीका कारण हो सकता

है ? बुढ़ापेमें ना-उम्मेदीको कहां जगह ? जिस्मसे अपनेको क्यों नापते हो ? लंगड़ा तैमूर जब दुनियाको हिला सकता है, एक आंख, एक टांग और डेढ़ हाथवाला राणा सांगा जब लड़ाई कर सकता है और एक आंख-वाला रणजीत सिपाहीसे राजा बन सकता है, तो तुम अपनी सूखी देह-की ओर क्यों निगाह डालते हो ? पचपन बरसमें सरकारी नौकरी, यानी हुकुमतकी बग्घीके घोड़े, बेकार हो जाया करते हैं, पर देशभक्त (वतन-परस्त) पचपनमें उम्र शुरू करते हैं. मशीनके पुर्जे बेकार हो जाते हैं, वृक्षकी डालियां नहीं. वे डालियां गुद्दोंमें तबदील होकर डालियां निका-लती हैं और जवानीको क़ायम रखती हैं. बुढ़ापेको पतझड़का मौसम मत कहो, वह दिलकी एक हालतका दूसरा नाम है. मौसमपर तुमको इख़्तियार नहीं, दिलकी हालतपर तुमको इख़्तियार मिला है. वह अब भी गा सकता है.

कुछ न सही, औरोंको देखकर ही सबक लो. अगर यह भी न कर सको, तो औरोंकी ख़ातिर ही उदास बनना छोड़ो. मनोभाव छूतकी बीमारीकी तरह औरोंको लगते हैं. तुम्हारी उदासी घरभरको उदास कर देगी. तुम अपना दिल तोड़कर न जाने कितनोंका दिल तोड़ बैठोगे. तुमको क्या पता कि जिनका दिल तुम अनजाने अपनी उदासीसे तोड़ रहे हो, वे कितने उत्साहके साथ दुनियाकी कठिन लड़ाईको लड़ रहे थे और कामयाबीके कितने पास पहुंच चुके थे. तुम लाखों रुपए देकर लोगोंका इतना भला नहीं कर सकते, जितना खुश रहकर, ताली बजा लोगोंकी हिम्मत बढ़ाकर कर सकते हो. कम-से-कम मुर्दनी चेहरा बनाए-बनाए तो न फिरो. उदासी आनेपर एकान्त कमरेमें जाओ और शीशेमें अपना चेहरा देखो. तुम्हारा चेहरा तुम्हें रुलाता मालूम होगा. अब नकली हंसी हंसो, वह हंसी भी किसी दर्जेतक तुम्हारे दिलको बदलनेमें मदद करेगी. 'खुशी' खुशी पैदा करती है और 'उदासी' उदासी.

क्या तुम अक्सर नहीं देखते कि जिस दिन तुम घरमें सुस्त दाखिल

होते हो, उस दिन बच्चे तुमसे दूरसे दूर रहनेमें ही अपना भला समझते हैं, और तुम्हारी धर्मपत्नी चुप रहना ही अपना कर्तव्य समझती है. असल में वे तुम्हारी उदासीमें तुमसे दूर ही रहना चाहते हैं. होता यह है कि तुम्हारा मन 'मैं' की कोठरीमें घुस बैठता है और इसीलिए तुम्हारी देह भी किसी कोठरीमें घुस बैठना चाहती है, और यों, तुम सबसे ऊंचे बने फिरते हो. 'इसका इलाज किया जा रहा है' यह सुननेसे काम न चलेगा. मनकी सुस्ती देहतक लानेसे और फिर कुटुम्बतक फैलानेसे बढ़ती ही है, घटती नहीं. वह तो घटती है देहके साफ़ इन्कार कर देनेसे, यानि उसको बाहर न आने देनेसे. मुट्ठी भींचकर और दांत किटकिटाकर गुस्सा जताया जाता है; वही पानी पीकर, हंसकर, गाकर, बदन ढीला छोड़कर उड़ाया जाता है. उदासीका इलाज उसको न अपनाना है. कम-से-कम देहको उसके रंगमें रंगना तो हरगिज़ नहीं चाहिए.

उदासी एक बीमारी है. स्वार्थ उसका परहेज है और परमार्थ उसकी दवा. खिला चेहरा इस बातको बताता है कि बीमारी चली गई.

'नहीं हो सकने' की विचारधाराका नाम ही उदासी है. 'क्यों नहीं हो सकेगा ? ज़रूर हो सकेगा' ऐसी विचारधारा उदासीको एक क्षणमें खत्मकर देगी. असलमें आफ़तोंमें से बहुत-सी ऐसी हुआ करती हैं, जो आती हैं और जल्दी चली जाती हैं. कुछ, कुछ देर करके जाती हैं. पर ऐसी तो लाखोंमें एक होती है जो आकर नहीं जाती. न हो सकने की विचारधारा सबको उस आख़िरी किस्मकी आदतमें बदल देती है. मामूली उलझनमें फंसकर हम हिम्मत तोड़ देते हैं और अपनी बुद्धि खो बैठते हैं.

'हो सकने' की विचारधारा आफ़तमें फंसनेपर भी क्या-क्या कर सकती है, यह जानना होगा. बच्चा-सक्काकी जीवन-कहानी पढ़ जाओ. वह काबुलके होटलमें पहचाना जानेपर खुद ही उठकर शोर मचाना शुरू कर देता है, 'बच्चा-सक्का आ गया !' 'बच्चा-सक्का आ गया !' और बड़ी शान्तिके साथ सारे बाजारमें शोर करता निकल जाता है.

जिसका असर यह होता है कि शाह अमानुल्ला अपनी मोटरमें बैठ काबुल-से भाग खड़ा होता है और बच्चा-सक्का काबुलका बादशाह बन जाता है. हायरे ! 'फंस गया, फंस गया, अब क्या हो सकेगा ?'—कहनेसे वह फंस ही गया होता और शायद फांसी चढ़ा दिया गया होता. पर हंसते रहनेसे वह आफ़तोंसे हीन ही बचा, बल्कि वह पा गया जिसका वह इच्छुक था.

उदासीकी रचनामें मनोभावोंका सबसे ज्यादा हाथ रहता है. इसी-लिए उसको क़ाबूमें लाना आसान नहीं. मन इच्छा-शक्तिसे भी जल्दी काबूमें नहीं आता. मनकी चंचलता जगत्प्रसिद्ध है, इसीलिए मनोभावों-का इलाज मनोभावों द्वारा ही किया जा सकता है. तुम किसी हालत-में उसमें कुलका, देशका, धर्मका, भाषाका अभिमान जगाकर आशा फूंक सकते हो, पर बुद्धिको अपील करके नहीं.

असलमें निराशासे इच्छा-शक्तिको कोई ठेस नहीं लगती, कभी-कभी तो वह और भी तीव्र हो उठती है. राह न मिलनेपर जानवरतकमें मुक़ाबिलेकी अपार शक्ति आ जाती है और वह जानपर खेल जाता है.

उदासीमें उत्साह कम पड़ जाता है. अकेली इच्छा-शक्तिसे अब क्या होना-जाना है. अब तो ज़रूरत पड़ती है अपनी जांचकी, बुरेको अच्छे-में बदल डालनेकी, दुःखको सुख बना देनेकी 'बिपत बराबर सुख नहीं. जो थोड़े दिन होए !' को टोटेका न्याय समझकर ही उत्साह पैदा होगा. सुख तो गद्दा बिछा पलंग है. उसपर नींद आएगी ही. दुःख खटमलों-वाली खाट है, वह भले ही पलभर चैन न लेने दे, पर अधमरा न बना-एगी; जीता-जागता रक्खेगी, कुछ सीख ही देगी. अकल चमक उठेगी, आदमियत जाग जाएगी, असलियतका पता चल जाएगा, अविद्याका पर्दा उठ जाएगा, घमंडका नशा उतर जाएगा, जीवनकी तराज़ूमें समतल आ जाएगा और असली कलाका विकास होकर आनन्द पास खिंच आएगा.

दुःखमें सुख देख पानेमें, टोटेमें लाभ निकाल लेनेमें ही जीवनकी जीत है. जरा-जरा-सी छेड़-छाड़में छोटे-मोटे काम छोड़ बैठें, मामूली सुविधा

न पानेमें घबरा उठें, इससे लाभ क्या ? इससे बचनेकी सोचना दुनियामें न रहकर स्वर्गमें रहनेकी सोचना है.

प्लेग ऐसी बीमारी है जिसका इलाज नहीं जैसा है, जिससे कोई-कोई ही बचता है. पर क्या उस बीमारीमें आस खो देनेसे कुछ नफ़ा होगा ? आठ दिनकी बजाए चार दिनमें ही चल बसोगे. वे भी तो आखिर आदमी हैं जो हंसते-हंसते फांसीपर चढ़ जाते हैं, खुश-खुश ज़हरका प्याला गट कर जाते हैं, उमंगके साथ आगमें कूद पड़ते हैं. वे मरकर अपना भला न करते मालूम हों, पर दुयनिाका भला तो कर ही जाते हैं.

गलेमें फांसीका फंदा डालकर बचनेकी आशा, निराशा सही, पर हंस-कर अमर होनेकी आशा तो पास खड़ी है. उसे क्यों नहीं अपनाते ? गुलाबका फूल पेड़से अलग होकर मिट्टीमें मिल सकता है और भट्टी-पर चढ़कर इत्र भी छोड़ जा सकता है. तुम मिट्टीमें क्यों मिलते हो, अपनी गन्ध तो छोड़ जाओ. पर यह उदास और निराश होनेसे न होगा, यह तो आशा भरे हृदयसे ही होगा और आशा तुम्हारे अन्दर मौजूद है. निराशा बुराई है. बुराई कोई अलग चीज़ नहीं होती. भलाई ही—ग़लत जगह, ग़लत समय, ग़लत पात्रके साथ, गलत तरीकेके इस्तेमालसे बुराईका नाम पाती है.

'हो सकती है और भलाई हो सकती है' यही वह आवाज़ है, वह ख़ासियत है, जो हममें है और जिसके नज़दीक होनेसेनि राशाकी बीमारी पास नहीं फटक सकती.

महापुरुष भी उदासी और निराशाके बीमार हुए बिना नहीं रहते. पर वे उसको भगानेकी कोशिश नहीं करते. उनके जीवनका एक उद्देश्य रहता है और निराशाकी ओरसे हटकर वे उसीमें जुट जाते हैं. उदासी को बसमें लानेकी यह रीति बड़ी सुन्दर और कामकी है, पर है यह उसीके लिए जिसने अपनी ज़िन्दगीका कोई मकसद तैयार कर रक्खा है, जिसे कोई काम पूरा कर जाना है, जिसे दुनियाको उसी हालतमें नहीं छोड़ जाना, जैसी उसको मिली है. खुलासा यह है कि कुछ काम

ऐसे हैं जिनको करना ही पड़ता है—चाहे हम उदास हों, बीमार हों आफ़तमें हों, तूफानमें फंसे हो या किसी हालतमें हों. मांको हर हालत में बच्चेको वक्तपर पैदा करना ही होता है. मुर्देको हर हालतमें उठाकर कब्रिस्तान या मरघटतक पहुंचाना ही होता है. ठीक इसी तरह जीवनकी हर लगनको हर हालतमें पूरा करना ही होता है. लगन होती ही इतनी जोरदार है कि वह लगनेवालेको उदासीके पाससे खींच लेती है और अपने पास बुला लेती है. उदासीका रोता चेहरा जब उसके मालिकके सामने नहीं रहता और न उसकी याद ही दिलके किसी कोनेमें रह जाती है, तब वह भी सुस्त क्यों रहने लगा ? महापुरुषोंकी विचारशैली अपनी अनोखी होती है, पर ऐसी नहीं होती, जिसकी तुम नकल न कर सको. तुम्हारे लिए वह इतनी ही आसान है, जितनी उनके लिए. वे सीधी-सादी भाषामें यहीं सोचते हैं, पर सोचते हैं अन्तरात्मासे, कि हम एक काम लेकर चले हैं. हमारे सुपुर्द एक कर्त्तव्य है, वह काम या कर्त्तव्य हमारा अंडा है. अगर सेआ नहीं जाएगा, तो सड़ जाएगा. वह तो सेनेसे ही बच्चा देगा. यही कारण है कि वह जीनेसे कभी नहीं थकते. तुमको जीना कभी-कभी दूभर हो जाता है, इसलिए नहीं कि तुमको समयने जर्जर कर दिया है, या यह कि वह तुमको अच्छे अवसर नहीं देता, बल्कि इसलिए कि तुमने अपनी जिंदगी का कोई मकसद ही तय नहीं किया.

आदमी-आदमीमें फ़र्क न करनेवाले और सबकी एक बराबर सेवा करनेवाले, आदमी कहलाते हैं. ऐसे बड़े आदमियोंकी जीवनियां हमको ऊपरकी सचाईका सबक दे सकती हैं. वे एक काम छांट लेते हैं और उसीके पीछे पड़ जाते हैं. मुसीबतमें पड़कर उदासीका स्वागत करनेवालोंका उदासी क्या बिगाड़ेगी? बुद्ध और महावीर धनके लिहाज़से राज छोड़कर, धनकी आशाको निराश कर चुके थे. फ़ौजोंका सहारा छोड़ जंगलमें बस, जीवनकी आशाको आठ आंसू रुला चुके थे. बदकिस्मतीकी दो धमकियां होती हैं—एक मार डालनेकी, दूसरी गरीब

कर देनेकी. बुद्ध और महावीर न मरनेसे डरते थे और न ग़रीब होनेसे; फिर किस्मत उनका क्या बिगाड़ती और क्या करती उदासी ? जीवनका ऐसा मेल बिठा लेना कि जिन्दगी हंसी-खुशी कट जाए, मुश्किल है, और यों सराहनीय है, पर है जरूरी. जीवनका असली आनन्द तो उन अनुभवोंमें है, जो मन-मस्तकको आनन्द देते हुए, सीधा आत्मापर अपना असर छोड़ जाते हैं. 'मेरा सब धन लुट जाए, पर मैं यह न करूंगा. मेरी जान चली जाए, पर यह न करूंगा' यह कहकर तो मामूलीसे-मामूली आदमी बता देता है कि आत्माका आनन्द तो धन और जीवनका दाम लगाकर भी खरीदा जाना चाहिए. सूलीपर चढ़ जानेवाले ईसाको और ज़हरका प्याल पी जानेवाले सुकरातको कोई पागल नहीं कहता. न मालूम सिक्खोंको तलवार, एक नाचीज़ लोहेका टुकड़ा, इतना क्यों भाया है कि सीस-बहादुर गुरुको भी तेग़-बहादुरके नामसे पुकारते हैं !

गुरुद्वारेका नाम सीसगंज रखकर बेशक उन्होंने अक्लमन्दीका काम किया है. सिर कटाना पड़े या न पड़े, सिर कटानेकी तैयारी तो अपने लक्ष्यतक पहुंचनेके लिए होनी ही चाहिए. ऐसे लक्ष्यकी ओर बढनेके लिए ही तुम उदासीकी गठरी उतारकर फेंक सकोगे.

गुरु गोविन्दसिंहसे उनके बच्चे छिन गए और हमेशाके लिए छिन गए. इससे क्या उनके काममें कोई ढिलाई आई? बिलकुल नहीं. बहादुर शाहके सामने जब उसके बेटेका सिर थालमें लाया गया, तो क्या उसको कोई घबराहट हुई ? -- कोई नहीं. बहादुरशाहने मांडलेमें रहकर भी हिन्दुस्तानियोंको कुछ दिया और खुद भी कुछ पाया. उसके सामने जीवनका एक लक्ष्य था. उसने घबराहटको पास नही फटकने दिया. पर मीरजाफ़र ? उसने पाकर भी सब कुछ खोया, उसका लक्ष्य था उसकी खुशी, न कि अन्दरूनी अनुभव. उदासी, निराशा उसे आमरण घेरे रहीं. गुरू गोविन्दसिंह और बहादुरशाह वे लोग थे जो कहा करते थे कि कुछ भी हो, जो करना है, वह तो करना ही है.

दार्शनिकोंका कहना है कि आदमी पहले बहुत हठी, जंगली और कामी था. ये बातें आज भी उसमें हैं, पर दबी हुई हैं. आजके समाजके रिवाज़ उसके इन ऐबोंको रोके हुए हैं और यों वह दुखी है. यह बात किसी हदतक सही मानी जा सकती है, पर यह और भी कहीं ज़्यादा सच है कि आजके भले, समझदार, शिक्षित और सामाजिक प्राणीके निरन्तर चले आनेवाले ऐब, आजके समाजके रिवाज़ोंसे इतने नहीं रोके जाते, जितने उसके नैतिक गुण, उसकी अन्तर-दृष्टि, उसकी अहिंसा-प्रियता, उसकी सचाईकी टेकसे यह गुण रोके और दबाए जाते हैं. भले आदमी आजकी दुनियासे मेल ही नहीं बैठा पाते. युद्ध उनकी अन्तरात्मा कैसे ठीक मान ले ? समाजको बरबाद करनेवाली आर्थिक नीतिका वे कैसे साथ दें? काले-गोरेके भेदका वे कैसे समर्थन करें ? तानाशाही उनके गलेसे कैसे उतरे ? यह है आजकी दुनिया! कहो, कैसे मेल बैठे ? उपरी सुख उनको चाहिए, इसी सिद्धांतपर डटना छोड़ अन्दरका सुख भी क्यों खो बैठें? ऐसी हालतमें निराशा तो आएगी ही आएगी और हटकर देगी नहीं. तो क्या कुत्तेकी मौत मरें? नहीं, वे समझौता नहीं करेंगे. अन्दरका आनन्द नहीं खोएंगे. अन्तरात्माकी खातिर यह सहना ही चाहिए. अगर तुमने बेहयाईको तलाक दे दिया है तो तुम ऊपरी सुख, रंज-ख़ुशी की परवाह न कर सुकरातकी तरह ज़हरका प्याला ख़ुशी-ख़ुशी पीना ही पसन्द करोगे.

मामूली-से-मामूली आदमीके लिए भी उदासीका भगाना आसान होगा. शर्त केवल इतनी ही है कि उसके जीवनका कोई उद्देश्य हो. उद्देश्य आवश्यक और सदा रहनेवाली चीज़ है और उदासी कभी-कभी आनेवाली.

किसको नमक-तेल-लकड़ीकी दिक्कत रोज़-रोज़ नहीं हुआ करती ? कभी ऐसी दिक्कतमें फंस ही जाओगे. पर उसमें उदास होनेकी कहां जरूरत है? अगर पैसा भी पास नहीं है, तो भी घबरानेवाला पैसा पैदा नहीं कर सकता. तुम अपने उसी काममें क्यों नहीं लग जाते जिसको

तुमने अपने जीवनका लक्ष्य बना रक्खा है. लक्ष्यमें लगनेसे तुम्हारी उदासी फौरन भाग जाएगी. उदासी न रहनेसे तुम्हारी नौन, तेल लकड़ीकी कमी भी पूरी हो जाएगी.

मन-मस्तिष्क, दोनोंको स्वस्थ रखनेवाला होता है—जीवनका उद्देश्य. आफ़तों और उदासीकी ओर उसकी नज़र ही नहीं जाती. वह अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें इस बुरी तरह जुटता है कि आफ़त-मुसीबतकी ओरसे उसे बेपरवाह होना ही पड़ता है. अब रह गई मानसिक बीमारियां और मस्तिष्ककी गड़बड़ियां. ये भी दूर हो सकती हैं यदि आदमीको अपनी रुचिके अनुकूल काम छांटने और करनेको छोड़ दिया जाए. पागल कोई होता तभी है, जब उसको उसके मनके मुआफिक काम छांटने और करने नहीं दिया जाता. सब पागल एकसे नहीं होते और सब पागलोंमें अपनी कोई-न-कोई धुन रहती है. उस धुनको माता,पिता,राज या परिस्थितियां देहसे पूरी नहीं होने देतीं. न सही, वह उन्हें मनसे पूरी करना चाहता है और उदासीको पास नहीं फटकने देता. उदासीको उसने ज़रूर जीता और आनन्दको भी पाया, पर उस आनन्दमें समाज कोई भाग न बंटा सका !

मनमें उत्पन्न हुई उदासीपर काफ़ी लिखा जा चुका है. अब रह गई वह उदासी, जो देहकी किसी गड़बड़ीसे पैदा होती है. कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई ग्रन्थि अपना पूरा काम नहीं करती और उसकी वजहसे उदासी हमको आ घेरती है. इस तरहकी उदासी मनकी कोरी कोशिशसे कोई-कोई ही मिटा सकेगा. सब कोई वैसा करनेमें सफल नहीं हो सकते. उनको हकीमकी पनाह लेनेमें कोई झिझक नहीं होनी चाहिए. उसके बताए नुसख़े और परहेज़से फ़ायदा उठाना चाहिए. पागलकी तरह इस किस्मके बीमारको ऊपरकी पंक्तियां बिलकुल उपयोगी न पड़ेंगीं. पर अच्छे हो जानेपर वे उसके बड़े कामकी साबित होंगी. वे फिर उसको इस प्रकारकी बीमारीमें हरगिज न फंसने देंगी. ग्रंथियोंके बिगड़ जानेमें अस्सी फीसदी दैहिक कारण हों, पर बीस फ़ीसदी मानसिक कारण भी

रहा करते हैं. जिसमें यह ताक़द है कि वह उदासीको पचा सकता है, उसमें यह ताक़त मौजूद रहती ही है कि वह उसको पास न फटकने दे. ताकत तो सर्वतोमुखी होती है. बिजली एक ताक़त है, उससे क्या-क्या काम नहीं लिए जा सकते ? आत्मिक बल भी एक बल है, जिससे अनगिनती काम लिए जा सकते हैं. यह तो याद रखना ही चाहिए कि उदासी को उसके ठीक आक्रमणके बाद हटानेमें बड़ा ज़ोर लगाना पड़ेगा. काफ़ी ज़ोरसे वह ज़रूर हट जाएगी. उसको उस वक़्त न छेड़ना ही ठीक है. कुछ देरके बाद वह बहुत ही निर्बल हो जाती है और बड़ी सुगमतासे जीती और भगाई जा सकती है. यही वक़्त बुद्धिमानोने उसके भगानेका ठीक समझा है. उदासी पुरानी होनेपर अपनी जड़ जमा बैठती है. और सिर्फ ज़ोर लगानेसे ही नहीं जाती बल्कि देरतक ज़ोर लगाना पड़ता है. इतना ज़ोर लाएं कहांसे ? जिस ओर जितने ज़ोरकी उसको ज़रूरत है, वह तो उसमें है; पर यह कि वह उसमें है, इसका उसे पता नहीं होता. उसके लिए उसे एक गुरु या दोस्तकी ज़रूरत होती है, जो समयपर उसको उसकी ताक़तका ज्ञान कराता रहे. वह ताक़त क्या है, इसका ज़िक्र पहले हो चुका है. यहां उसको थोड़ेमें दोहराए देते हैं :

(१) कोरी हवाकी सांसपर जीना जीना नहीं है. महान् विश्वासों की सांसपर जीना जीना है.

(२) दाल-रोटीपर जीना जीना नहीं है. अपनी सूझसे अन्तर्गत चीज़ोंको दाल-रोटीमें तब्दीलकर उनपर जीना जीना है.

(३) खानेके लिए जीना, और जीनेके लिए जीना, जीना नहीं है. बड़े कामकर जानेके लिए जीना जीना है.

(४) जीओ पर प्रकृतिसे प्रेम करनेके लिए. प्राकृतिक सौंदर्य आंखोंमें न रमे, तो क्या जीना !

(५) जीओ, पर किताबोंको दोस्त बनाकर. बुजुर्गोंके तजुर्बे के बिना भी क्या जीना !

(६) जीओ, पर खिलाड़ीका जीवन जीओ. जीतकर जीतनेका और हारकर जितानेवालोंका आनन्द अनुभव करो.

(७) जीओ, जी चाहे जैसे जीओ, पर अन्तरात्माको शर्मिन्दा न होने दो.

(८) जीनेका मजा ही इस तरह जीनेमें है. फिर कहांकी उदासी और कैसा इलाज !

जवानो, अब ?

दस

दुनियादारोंका बड़ा हिस्सा इस चिन्तामें रहता है कि मरनेके बाद क्या होगा. सन्तोंमें केवल बुद्ध भगवान् ऐसे हुए, जिन्होंने यह सोचा कि 'अब क्या करना है ?' उन्होंने आगेकी चिन्तामें वक़्त नहीं खोया. आज की रोटियोंको कलके लिए केवल इसलिए उठा रखना कि खाना कहांसे आएगा, बड़ी मूर्खता है. मोक्ष यदि है तो उसीको मिलेगा जो आजकी सोचता है. जो बीत चुका है उसके हम बने हुए हैं. उसके बारेमें सोचना व्यर्थ है. 'भावी' हमारी भूतके अनुकूल होकर रहेगी. उसमें हम रद्दोबदल कर सकते हैं, मगर उसकी चिन्ता न कर उसमें बदलाव करनेके लिए हमें वर्तमानपर ही ध्यान देना होगा. वर्तमान और केवल वर्तमान ही हमारा है. उसीके जरिए हम अपने भविष्यको भूतसे, अगर चाहें तो न मिलने देंगे. और उसीके ज़रिए हम अपने भूत, भविष्यको मिलनेसे रोके हुए हैं. आसमान और ज़मीन नहीं, यही भूत और भविष्य हमारी उस चक्कीके पाट बने हुए हैं जो हमें पीस रही है. यह हमें वह नहीं करने देती जो हम चाहते हैं. हां, वर्तमानपर हमारा

पूरा अधिकार है. यह बात भूले और समयकी तेज नदीमें बहे. वर्तमान ही इस समयकी नदीमें वह टेक है, जो तुम्हें रोक रख सकती है. नदी तिनकोंके लिए बहे, भूत भविष्यपर निगाह रखनेवालोंके लिए बहे, तुम्हारे लिए तो वह स्थिर है—यदि तुम वर्तमानमें काम करनेवाले हो. वह तुमको मजबूर होकर उधर रास्ता देगी, जिधर तुम जाना चाहोगे.

आओ, अब उन तकलीफोंको दूर करनेकी सोचें जो आज, और अभी, हमको सता रही हैं.

वक़्तकी इस नदीमें फूल भी बहे जा रहे हैं और कांटे भी. चाहिए हमें यही कि हम फूलोंको पकड़ें और कांटोंसे दूर रहें. यह भले ही तारीफ़की बात हो कि हम कांटोंमें उलझकर घबराएं नहीं पर उनमें हम फंसना नहीं चाहते—यह भी सच है. फिर अगर फंस ही गए हैं तो निकलनेका जोर तो लगाएं और निकल आनेपर फिर उनकी ओर न जाकर फूलोंकी ओर ही दौड़ें और उन्हींको पकड़नेमें लगें.

शेर जैसे फाड़खाऊ जानवरसे हम बचना सीख गए. हाथी जैसे बड़े जानवरको हमने दबा लिया. जराफ़ जैसे लम्बे जानवरको ला बांधा. ह्वेल जैसे भारी-भरकमको समुद्रके किनारे ला पटका. जाड़े जैसी अनोखी बलाका इलाज सोच निकाला. गरमी जैसी जलनेवाली ऋतुको ठण्डाकर दिया. आंधी और वर्षा जैसी अचानक आ दबानेवाली आफ़तोंपर विजय पा ली. बिजली जैसी ज़बरदस्त दानवीसे चक्की पिसवा दी. फिर क्या हम वर्तमानके दुखोंको दूर नहीं कर सकते ? जरूर कर सकते हैं. बस, अब बहुत हो चुका, ज़्यादा सहनेकी बात छोड़ दो. इस माया ठगनीकी ठगाईमें अब हमको नहीं आना है. या तो ठगाई ही ख़त्म होगी या माया ही.

कोई है उपाय ? थके कमज़ोर कहेंगे, 'कोई नहीं.' दुःखवादी बिन बुलाए बोल उठेंगे, 'दुनिया दुःखकी खान है.' धर्मात्मा बतलाएंगे, 'पहले जन्मका फल है, भोगना ही पड़ेगा.' वेदान्ती समझाएंगे, 'यह सब मायाका भ्रम है—सपना है, सपना !'

इनमेंसे किसीकी न सुनो. जिस साढ़े तीन हाथके आदमीने पृथ्वी, आग, पानी, हवा, आकाश—सबपर अपना रौब जमा दिया है, वह जीवनको सुखी बनानेकी न सोच सके और सोचकर कुछ उपाय न निकाल सके—ऐसा हो ही नहीं सकता. तुम सफ़ीने न रखते हुए भी तैर सकते हो, पंखवाले न होकर भी उड़ सकते हो, हिरनों जैसी पतली टांगें न रखते हुए भी उनसे दौड़में बाजी ले जा सकते हो, शेर-हाथीसे कहीं कम ताकत रखकर भी उन्हें पछाड़ सकते हो और अपने ही जैसे भाइयों के साथ हम-प्याला और हम-निवाला नहीं हो सकते. मिल-बैठकर खा-पी नहीं सकते ? दो कुत्ते उस लाशके लिए लड़ मरते हैं जो बीसके लिए काफ़ी होती है. इसके खिलाफ़ दस आदमी पांच रोटी बांटकर खा लिया करते हैं, जो दोके लिए भी पूरी नहीं हुआ करती. तुम कुत्ते नहीं हो, तुम श्रेष्ठतम प्राणी कहलाते हो !

बैठोगे तो आजकी रेल और मोटरमें, उड़ोगे आजके हवाई जहाजोंमें, पहनोगे आजके फैशनके कोट-पतलून और नीति रहेगी तुम्हारी मनु, मूसा और ईसाके ज़मानेकी ! और फिर सोचोगे सुखी रहनेकी ! गर्मीकी ऋतुमें अपने मालिकके साथ अपनी सुसरालमें एक बार गए जुलाहेके दामाद की तरह, जाड़ोंमें छिड़काव करा, और बाहर सो, अकड़कर मर जानेके सिवा हाथ कुछ न आएगा ! शूद्रको वेद सुनते देख, कहीं उसके कानमें गरम सीसा डाल बैठे, तो केवल लाल फाटक ही न देखना पड़ेगा, गलेमें रस्सा डालकर झूलना भी पड़ेगा.

वेष-भूषा बदली, तो रिवाज़ भी बदल डालो. गुलामीसे डरकर नहीं, रिवाजोंके मालिक बनकर. किसीकी नकल न करना, अक्लसे काम लेना, पर उस बेचारीसे काम लेना ज़रूर.

यहीं नहीं, यानी हिन्दुस्तानमें ही नहीं, सारी दुनियाकी राजनीति बूढ़ी और जर्जर होकर दांत निपोर रही है. मनुष्य समाजकी आवश्यकताएं ? वे बनी बैठी हैं नवयौवनाएं. उन दोनोंका साथ कैसा ? बुढ़िया घरमें रहेगी, उसे मार डालनेकी ज़रूरत नहीं, पर उसकी ख़ातिर नई बहुएं

हावन दस्तेमें कुचल-कुचलकर पान नहीं खाएंगी. उनके दांत हैं, वे बुढ़ियाकी नक़ल करेंगी, तो समाजमें ठट्ठेका पात्र बनेंगी. राजशाही (इम्पीरियलिज़्म) बूढ़ी हो चुकी, नौकरशाहीके गाल पिचक गए, सामन्त-शाही दम तोड़ रही है. ये किताबी महलमें रहें, असली महलमें इनका क्या काम ! कहीं-कहीं तो ये मर चुकी हैं. जहां ये मर चुकी हैं. तो जिनकी ये बेटियां रही है वे भले ही मूढ़ बन्दरकी तरह उनके खल्लडों-को छातीसे चिपकाए रहें. तुम उनकी ओर आंख उठाकर न देखो, उनको काममें लानेकी तो बात ही क्या !

रेलमें बैठना छोड़ो, हवामें उड़ना छोड़ो, कोट-पतलून छोड़ो, चलो छकड़ा-गाड़ीमें, पहनो मिरजई और बांधो तहबंद. यह नहीं, तो बनो हिन्दुस्तानी और पहाड़पर चढ़कर पुकारो, 'पहले हिन्दुस्तानी,पीछे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, पारसी और आर्य-समाजी.'

तुम्हारे बाप-दादा जितने सुखी थे, कहो तुम उतने सुखी हो ? उन-के जमानेमें न रेलगाड़ी थी, न तार. हां, हवाई जहाज था, पर पुराणकी पोथियोंमें ! वे भूखों नहीं मरते थे. उनके समयमें दूधकी नदियां बहती थीं, घीके तालाब थे. आज भी उनकी बनाई हुई इमारतें देखने अम-रीका और इंगलिस्तानवाले हिन्दुस्तान आते हैं. उनके रिवाज उनके थे, उनके कपड़े, उनकी सवारियां उनकी थीं. वे सुखी थे, तुम नहीं हो.

क्या तुम्हारे बच्चे तुम्हारे क़ाबूमें हैं ? क्या वे इतने ही सीधे-सादे है, जितने तुम अपने बचपनमें थे ? जो तरह-तरहके टैक्स तुमपर लगे हुए हैं, क्या तुम उन्हें खुश-खुश देते हो ? क्या वे कर तुम्हारी समझमें तुमपर ठीक लगाए गए हैं ?

लोगोंका कहना है हम सभ्य बन गए हैं, हम पहलेसे ज़्यादा समझ-दार हो गए हैं. मेरा कहना है हम और बर्बर हो गए हैं और होते जाते हैं. लड़ना बर्बरता है. धर्मके लिए भी ? जी हां, धर्मके लिए भी. बुलबुल लड़ती है दानेके लिए, पेट भरना धर्म है फिर उसे बर्बर क्यों कहते हो ? कुत्ता लड़ता है, पेटके लिए, भूख मिटाना धर्म है फिर

पुलिसवाले कुत्ते कहे जानेपर क्यों चिढ़ते हैं ? लाल लड़ता है मुनियाकी खातिर, मादाके लिए लड़-मरना धर्म है फिर उसे मूर्ख पक्षी क्यों कहते हो ? सांप-बिच्छू लड़ते हैं जगहकी खातिर, जगहके लिए लड़ना धर्म है, फिर उनको नीच कीट कहकर क्यों पुकारते हो ? देखा, धर्मके लिए लड़ना भी बर्बरता है ! हमारे बड़े दफ्तर, बड़ी-बड़ी कचहरियां, बड़े-बड़े महल बर्बरताका ढिंढोरा पीटते रहेंगे, जबतक एक भी आदमी हमारे लाखों-करोड़ों भीलों, संथालों, जूलूओं, एस्कीमों, बुशमैनों, लाल अमरीकनों, हबशियोंको बर्बर कहनेवाला ज़िन्दा रहेगा.

हमारे मखमल और मलमलके कपड़े हमारी बर्बरता न छिपा सकेंगे. बर्बरता तो ईमानदारी, सचाई और प्रेमके साबुनसे ही धुल सकेगी.

आज अगर कोई किसी मतलबके लिए अपना सिर काटकर देवीके आगे चढ़ा दे, तो तुम उसे क्या कहोगे ? पागल न ? और अगर तुम अपना ज़रा-ज़रा मांस रोज़ काटकर चढ़ाने लगो, तो तुम क्या समझे जाओगे ? महापागल ! पर ऐसा तो तुम रोज़ कर रहे हो. कैसे ? तुम्हारी बेटीकी शादी थी, तुम्हारे पास नहीं थी एक फूटी कौड़ी. तुमने लिया हज़ार रुपये कर्ज़. किसको खुश करनेके लिए ? 'कोई क्या कहेगा' नामवाली देवीको खुश करनेके लिए. और अब ? सूद भी अदा नहीं हो रहा. तिल-तिल ख़ून कम होकर काया छीज रही है. यह मांस काट-काटकर चढ़ाना नहीं तो क्या है ? कुछ पता है, हिन्दुस्तानियोंकी औसत उम्र है तीस बरस ! 'कोई क्या कहेगा' की देवी हड़प कर गई नब्बे बरस ! नहीं तो थी एक सौ बीस !

अब -? अब अगर खुश रहना है तो दो सिद्धान्तोंको अपनाइए. उनको पूरा समझ लीजिए. फिर उन्हींकी सुनिए और किसीकी नहीं.

१—जीवनकी जान क्या ?

२—समाजमें रहनेका गुर क्या ?

जीवनकी जान है—अपनी अंतरात्माके विरुद्ध किसीकी न मानो. जो

ज़मीर कहे वही करो. समय न हो, ठहरे रहो. यही प्रमाण है कि तुम हो. अन्तरात्माके विरुद्ध किया कि दुखोंने तुम्हें घेरा. तुम अन्तरात्मा की पुकारके अनुसार कर, शायद एक-दोका और वह भी थोड़ी देरके लिए, दिल दुखाओगे, पर उसके विरुद्ध कर तो तुम अनेकोंका बरसोंतक दिल दुखाते रहोगे.

समाजमें रहनेका गुर है—अहंकारको कुचल डालो. स्वाभिमान मान न बन बैठे. विजय अन्तरात्माका कहना माननेमें है. आत्मा अनन्त शक्तिशाली है, मन नहीं. मनका कहना माने वह मानी, आत्मा का कहना माने वह आत्माभिमानी—यानी ज्ञानी.

जो मनका दास है वह मनुष्यका दास है, मनुष्योंका दास है. जो आत्मदास है, वह परमात्माका दास है, यानी आज़ाद है. आत्माका दास होना रूढ़ियोंका दास होना नहीं है. आत्माका दास होना अपनेको पाना है. यह विज्ञान है. सुखी होनेके लिए हमें यही जानना होगा कि हम क्या हैं ? अपनेमें कैसे रह सकते हैं ? आत्मातक पहुंचनेके लिए नग्न सत्य ही सहायक हो सकता है, रोज़मर्राका मोटा सत्य नहीं.

आइए, सिद्धान्तको छोड़कर व्यवहारमें प्रवेश करें. मान लो, तुम्हें विवाह करना है. पुराना तरीका यह है कि मां-बाप जो तुम्हारे गले बांध दें, उसे उम्रभर निभाओ. मान लो, तुम्हें रोज़गार करना है. उसका सीधा रास्ता यह है कि जो तुम्हारे बाप-दादा करते आए हैं, तुम भी वही करो. अगर ये तरीके तुम्हें पसन्द हैं तो तुम'लोग क्या कहेंगे' नाम-वाली देवीके दास हो, मनके दास हो. इस पसन्दमें तुम्हारी अन्तरात्मा कहां है ? तुम कहां हो ?

'जीवनकी जान' वाला सिद्धान्त खत्म. अब, आजीवन जीवनका भला कहां !

यदि जीवन है तो आत्मा है और मैं भी हूं. यह अहङ्कार नहीं है, सत्य है. यही जीवनकी जान है.

मैं हूं, मेरी जाति है, मेरा राष्ट्र है, मेरा मानव-समाज है. मैं हर हैसियतसे वही कहूंगा जो मेरा आत्मा कहता है.

कहिए, आप रूढ़ियोंके दास रहकर जीना चाहते हैं या आत्माभिमानी रहकर ?

उदासी को यों भगाओ

ग्यारह

देहकी तरह मन भी बीमार पड़ता है. देहकी बीमारियोंका असर देहपर साफ दिखाई देता है. मनकी बीमारीका असर भी देहपर ही पड़ता है. भूलसे हम मनकी बीमारीको बीमारी समझ बैठते हैं. दवा-दारू करने लगते हैं और मर्जको ठीक करनेकी जगह और बढ़ा लेते हैं. उदासी मनकी बीमारी है. वह दवाओंसे नहीं जाती. मनके डाक्टर मनको मनसे अच्छा करते हैं. वे सुझाव देते हैं. सुझाव मनकी अक्सीर दवा है. उदासी मनकी बीमारी तो है पर दमेकी तरह बीमारी मान ली गई है. दमा जैसे बीमारी नहीं, किसी बीमारीका चिन्ह है; उसी प्रकार उदासी बीमारी नहीं, किसी बीमारीकी निशानी है. जिस बीमारी का यह चिन्ह है, उसीकी दवा करनेसे उदासी भागेगी.

उदासी है बहुत बुरी चीज़. यह बनाऊ नहीं, ढाऊ है. उदास दिवालिया बन बैठता है. जीवनके कर्ज चुकानेसे इन्कार कर देता है. जो वह खाता है, उसका कुछ बदला ज़मीनको तो देता है और वह शायद मजबूरी देता है; पर और किसीको कुछ नहीं देता. न दे, न सही; पर

बुरी बात तो यह है कि वह अपनी बीमारी फैलाकर ढानेके काममें लग जाता है. इस ढानेके काममें नीति-शास्त्र उसका मददगार बन बैठता है. नीति-शास्त्र जबतक भावोंके ढानेको जायज बनाता रहेगा तबतक उदास उदासीको अपनाते रहेंगे और सोसाइटीके निजामके महलको ढाते रहेंगे. उसके व्यवस्थापक किलेके फाटकपर डटे रहेंगे और मौका पा खिड़कीकी राह घुस कुछ-न-कुछ गड़बड़ करते रहेंगे.

नीति-शास्त्रका जन्म हुआ था जंगली स्वच्छन्दताको सिखा-समझा कर शहरी स्वाधीनता बना देनेके लिए. पर वह लग गया शहरी स्वाधीनताके भी हाथ-पांव बांधने. स्वाधीनता इस बंधनको बर्दाश्त न कर सकी और उसने जन दी उदासीनता. उदासीनताका बाप बना पाप, गुनाह. पाप भूल या भूलें छिपानेका एक नाम है. बालक भूलें छिपाना नहीं जानता इसलिए उदास नहीं होता. यों उदासी मनकी बीमारी न होकर मनकी बीमारी भूल-दाब (यानी भूलों, गलतियोंको छिपाकर बैठ जाना) का चिन्ह है.

कुदरती क़ानूनोके ख़िलाफ़ कुछ करना गलती कहलाता है. गलती का दूसरा नाम है भूल. भूल छिपाना पाप है. रिवाजने मनको पाप से नफरत करना सिखा दिया है. मनका भूल करना विभाव है. यही बात यों भी कही जा सकती है कि मनका कुदरतके कानूनोंके अनुसार काम करना स्वभाव है और नीतिशास्त्र कुदरतके कानूनोंके खिलाफ़ रोक लगाता है. अब मन जो भी काम करता है वह या तो कुदरतके कानूनों के ख़िलाफ़ पड़ता है या नीति-शास्त्रके. इसलिए मन ढीट बनकर नीति-शास्त्रको ही ठुकरा देता है और कुदरतके कानूनोंपर चलने लगता है. समाजका बहुत बड़ा हिस्सा, देखनेमें, नीति-शास्त्रपर चलता मालूम होता है. इसलिए ग़लती करनेवालेको मनकी ग़लतियां छिपाकर उदास बनना पड़ता है.

आइए, इसे अच्छी तरह समझ लें. भूख लगनेपर उन चीज़ोंको खाना जो हमारे जिस्मकी बनावटके लिहाजसे ज़रूरी है, कुदरतका कानून

है. नीति-शास्त्र कहता है कि भूखे मर जाओ, चोरी न करो. बिना दी हुई चीज लेना चोरी करना है. अब एक आदमी भूखसे मर रहा है, मांगनेपर उसे कुछ मिलता नहीं. तब उसके पास एक ही उपाय है. नीति-शास्त्रको ठोकर मारे और कुदरतके कानूनको अपनाए. वैसा वह करता भी है, पर नीति-शास्त्रको ठुकराना समाज बर्दाश्त नहीं करता. इसलिए वह ठुकराता भी है और ठुकरानेको छिपाता भी है. नतीजा होता है—उदासी. उदासी पुत्री है उस स्वाधीनताकी जिसने तंग आकर पापके साथ शादी कर ली थी. इस उदासीको अपनाकर उदास पक्का विनाशक बन जाता है.

उदासी उदासको दुखी, भारी और हठी बना देती है. उदास समाज के कामका नहीं रह जाता. साथ मिलकर काम करना उसको बुरा लगता है. अब यह पाप नहीं तो और क्या है? खुदी उससे दूर नहीं हुई. अहंकार ज्यों-का-त्यों बना हुआ है. तसल्ली उसकी वह कर नहीं पाता. तसल्ली-के सारे रास्ते उसने बन्द कर लिए हैं. तब या तो वह अपघात करे या बेहया बनकर पापकी जिन्दगी बिताए. दोनो ही काम सोसाइटीकी नजरमें ऊंचे नहीं, नीचे हैं. सोसाइटीके जहाजकी पेंदीमें सूराख करने वाले हैं.

जवानो! उदासीकी जड़ तुमने जान ली. उसको काट फेंकना बड़ा काम नहीं है. मामूली हिम्मतसे वह काम हो सकता है. अपनी भूलोंको खुले दिलसे स्वीकार कर लेनेसे उदासीकी जड़ कट सकती है. एक बार हिम्मत करो तो सभी बदल जाएगा. चमत्कार हो जाएगा.

भूलोंमें दबे-दबे अनाजकी तरह किल्ले फूट निकलते हैं. यानी भूलों-को छिपानेसे खूब भूलें होती हैं. मनकी कुढ़न बढती जाती है, जिन्दगी आफ़त हो जाती है. मरते तो सब हैं, पर उदास कुत्तेकी मौत मरता है.

सफलतामें विश्वास न रह जानेका नाम है—उदासी. उदासको असफलताका हमेशा डर बना रहता है. नाकामयाबीका डर नाकामयाबी को बुलाता है. उदास उदासीको मानता दुःख ही है. दुःखको दुःख मानने

में तुम इतने टोटेमें न रहोगे, जितने यह माननेमें कि दुःख तुमको पाप या भूलकी सजाकी शक्लमें मिला है. ऐसा माननेसे तुम हिम्मतसे हाथ धो बैठोगे. ताकत तुमको जवाब दे जाएगी.

मनुष्य भूलोंका पुतला है. कहते हैं, देवता भूल नहीं करते. फरिस्तों से गलतियां नहीं होतीं. नहीं होती होंगीं. हमने फ़रिस्ते और देवता नहीं देखे. तुम अपनेको अगर आदमी मानते हो तो तुमसे भूले होंगी. भूलोंके जब हम बने हुए ही हैं, तब भूल करनेमें शरमाएंगे क्यों? यह याद रखो कि अगर तुमने भूलको शर्मका काम समझा तो तुम भूल-सुधारके काममें कभी कामयाब न होगे. हां, जो अपनेको देवता मान बैठे हैं, वे भूल करनेको शर्मका काम समझें तो समझते रहें.

जवानो! तुम अपने आपको देवता मान बैठनेकी भूल न करना. तुमने अपनेको देवता माना और भूले होना बन्द हुई. भूलोंके तो तुम बने ही हो, वे तो बन्द होंगी नहीं. होगा यह कि या तो तुम खुद ही अपनी भूलोंको ठीक समझने लगोगे, या तुम्हारे साथी तुम्हारी भूलोंको ईश्वरकी सचाईका नाम दे डालेंगे. तुम्हारी भूलसे चबाई कंकरीका नतीजा यह होगा कि तुम्हारे साथी ईट चबाने लगेंगे और अगर उन्हें किसी तरह यह जचने ही लगा कि ईट नुकसान करती है तो तुम्हारे जन्मके दिन तो खाए बिना फिर भी न मानेंगे!

हम भूल करनेवालोंके हाथ पड़ गए हैं. भूलसे बिलकुल खाली भगवान् और खुदाके वेद और क़ुरान. भगवान् और खुदा ये देकर कहां चले गए? पता नहीं; पर ज़िम्मेदारी पड़ी हम भूलोंसे भरे आदमियोंके सिर कि हम यह साबित करें कि उनमें कोई भूल नहीं है. हम भूलें करनेमें भूलें करते हैं और सिर फोड़ते हैं!

जवानो! अपने आपको देवता न मान, आदमी मान, भूलें कर, भूलोंको स्वीकार कर, हलके बने आगे बढ़ते चलो. भूल न करनेका काम खुदा के मुंहचढ़ोंके लिए छोड़ दो, देवताओंके लिए छोड़ दो. बड़प्पन भूलें न करनेमें नहीं है, भूलें कर उन्हें स्वीकार करनेमें है, उनपर अधिकार

करनेमें है. भूलें पड़ी-पड़ी नरक तैयार कर लेती हैं. नरकमें तेलके खौलते कढ़ाहमें आदमियोंको जलानेकी बात कल्पनाकी गढ़ी हो सकती है, पर उदासीके गर्म कढ़ाहमें तो तुम रोज तले जाते हो. उदासीसे बचने का जब सहज उपाय तुम्हारे सामने रख दिया गया तब तुम अपने आपको तले जानेकी तकलीफसे बचा सकते हो. भूलें मनको चूभती रहती हैं, कांटेकी तरह चुभती रहती हैं. कांटा निकल जानेपर, चुभनकी पीड़ा जाती रहती है. ठीक इसी तरह भूलोंको कह डालनेपर वे चुभना बन्द कर देती हैं. वे वहां रह ही नहीं जातीं. कह डालनेपर भूलें भूलें नहीं रहतीं. वे मनसे हट जाती हैं और चुभन नहीं रह जाती. इतना ही नहीं वे अपनी जगह एक मीठा अनुभव छोड़ जाती हैं जो हमेशा याद आता है. भूलोंको भूल मानना तरक्कीका जीना चढ़ना है. उदासीसे ऊंचे उठते जाना है, दूर होते जाना है.

लोग तुम्हारी भूलें तुमसे सुनकर तुम्हारी इज्जत करने लगेंगे. भूलें हमेशा छिपी तो रहेंगी नहीं. एक-न-एक दिन किसी-न-किसी तरह वे औरों तक पहुंचेंगी ही. तुम्हारी भूलें लोग और किसी तरह जानकर तुम को नीच समझने लगेंगे और यों तुम्हारी उदासी तुमको और भी कुतरने लगेगी. उदासी मिटाने और रूंगेमें इज्जत पानेका मौका हाथसे क्यों खोते हो ?

भूलें तुमपर अपना वार करेंगी, तुमको दुखी बनाएंगी. तुम ही पहल क्यों नहीं करते ? कामके वक्त बात करनेकी चूक करना नादानी है. दुनि-याका भेद काम है. मन्त्रोंका मन्त्र काम है. भाग्यके उठाए उठना भी कोई उठना है ? किस्मतके झुकाए झुक जाना भी कोई आदमियत है ? दुनियाकी मुठभेड़की रस्सीपर समतोल रखकर ही चल सकोगे.

भूलोंके बीजके लिए सबसे उपजाऊ धरती है त्यागकी. तुम अपनेको त्यागी बनाकर जब सेवा शुरु करते हो तब तुमसे तुम्हारे देवता न होने के कारण भूलें होती हैं और तुम अपनी इस कमीसे शर्मके मारे जमीनमें गड़ जाते हो. नतीजा होता है कि बिस्तरपर लेटे नहीं कि चिन्ताओं

के चक्रने तुम्हें घेरा. तुम उस चक्रमें ऐसे फंसते हो कि किसी एक बात को भी ठीक-ठीक नहीं समझ पाते. भूले तुम्हें सबक दे सकती हैं, पर लेनेके लिए तुम्हारे पास वक्त ही नहीं रह जाता. तुम अपनेको नीच और तुच्छ समझने लगते हो. यह तुच्छताकी जूं तुमको काटकर अपना जैसा बना लेती है. तुम भी फिर जूं बनकर रूढ़िकी गुदड़ीमें सुरसुरा-सुरसुराकर, समाजके जिस्ममें काटकर खुजली उठाते रहते हो. यह तुच्छता तुम औरोंमें भी फैलाना शुरु कर देते हो. अगर यह तुच्छता कोशिश कर दूर न की जाए तो मरनेतक साथ देती है. अपने किसी कामसे या बातसे किसीके दिलमें यह ख्याल बिठा देना कि वह अपनेको पापी और गुनहगार समझने लगे, सबसे बड़ा पाप है. इस बातका ध्यान रखना और ऐसी भूल न कर बैठना. अगर हो भी जाए तो फौरन दूर करनेकी कोशिश करना और उसको ठीक किए बिना चैन न लेना. यह भूल, भूलोंमें सबसे बड़ी भूल है. नशा करना इतना बुरा नहीं जितना नशेबाज़ तैयार करनेका काम शुरुकर देना. भूल करना बुरा है, पर करनेवाले तैयार करनेका कारखाना खोलदेना तो और भी बुरा है.

भूलें रोज होती हैं. कुछ भूलें इतनी मामूली बन गई हैं कि उनके बारेमें भूल होनेका ज्ञान भी हममेंसे बहुतोंको नहीं रह गया. भूलें हैं भी बहुत किस्मोंकीं. फिर भी बारह क़िस्मोंमें वे बांटी जा सकती हैं. सुभीतेके लिए हम वैसा किए देते हैं :

१. गुस्सेकी, २. घमण्डकी, ३. लालचकी, ४. फ़रेबकी, ५. हंसीकी ६. रुचिकी, ७. अरुचिकी, ८. रंजकी, ९. डरकी, १०. घृणाकी, ११. मर्दानी और जनानी.

जोर-जोरसे इसलिए बोलना कि लोग आपकी बातको ठीक मानले; अपनी कहे जाना, औरोंकी न सुनना ; सस्ती चीजें खरीदना और पछताना ; बात करते-करते रुक जाना ; आदत हो जानेसे बे-जगह हंस-बैठना; अपनी पसन्दपर ज़ोर दे बैठना; अपनी ना-पसन्दको बहुत खींचना; शोकमें कोई प्रतिज्ञाकर बैठना; डरसे बीमार पड़ जाना; नफरतसे

बेताब हो बैठना; औरतोंसे घृणा; मर्दोंको चिढ़ाना इत्यादि.

जरा ध्यान देनेपर हर आदमी एक लम्बी-चौड़ी फेहरिस्त अपने लिए तैयार कर सकता है. पर फेहरिस्त बननेसे काम न होगा. काम तो उन पर विचार करनेसे और फिर उनका सुधार करनेसे होगा. यों ही उदासी की बीमारी दूर होगी. सुधार करनेकी राहमें एक पहाड़ आएगा. उसे लांघ जानेपर आपका रास्ता साफ और सीधा हो जाएगा. वह पहाड़ है हमारी यह आदत कि हम भूलकर, अहंकारवश अपने किएपर डट जाते हैं और कह बैठते है कि हमने जो किया, ठीक किया. अहंकारका सबसे पहला काम होता ही यह है कि वह अपनी भूल दूसरोंके सिर थोपे. आम-तौरसे अहंकार उसके जगाए ही जागता है. ठसकको ठेस लगी और वह जागा. इस चुटीले साँपको जरा दबाइए और फिर देखिए कि सारा सीन बदल जाता है. दुश्मन दोस्त बन जाते हैं. जो आपसे बचकर भागते थे वे खिचकर पास आ जाते हैं. जो बदनाम करते थे, वे गुणगान करने लग जाते हैं.

मानका भूत उतरा और भूलकी वजह समझमें आई. वजह समझमें आई और ठीक क्या था, इसका भेद खुला. ठीक मनको घटनाएं ठीक-ठीक ही बताती हैं. गुस्सेकी ग़ैरहाजिरीमें डरको डरा-धमकाकर मनसे निकाल बाहर कीजिए और फिर देखिए, भूलें भूलकर भी वहां कदम नहीं रखेंगीं. उदासी उदास होकर ऊब उठेगी और उठकर चल देगी.

उदासीको मत कोसो. उससे मत खीजो. कोसना, खीजना उसके दाना-पानी हैं. चोट खाया हुआ अभिमान उसका पलंग है. उसे खींच लो. वह चल देगी.

उपयोगी काहिली

बारह

जैनोंके एक फिरकेके लोग अपने भगवान्की मूर्ति मन्दिरमें नंगी रखते हैं, पर वह भी इतनी नंगी नहीं होती जितने सनातनी नागे साधू. मूर्ति नग्न तो है ही, पर हाथ-पर-हाथ धरे हुए भी है. हाथ-पर-हाथ धरकर बैठना एक मुहावरा है. उसका मतलब होता है निठल्ला बैठना, काहिल-वजूद बनना. बुद्ध भगवान्की भी कुछ मूर्तियां हाथ-पर-हाथ धरे मिलती हैं. पर महावीर और बुद्ध जैसी, अपने जीते जी, भारतकी काया पलट करनेवाली हस्तियां इतिहासमें कम ही मिलती हैं. इसलिए इनकी काहिली यों ही उड़ा देनेवाली चीज नहीं हो सकती. इसका मुताला करना होगा. समझना होगा.

महावीर और बुद्ध भरी जवानीमें सेवाके मैदानमें कुदे थे. इस नाते भी जवानोंको उनकी एक-एक बात अच्छी तरह समझलेनी चाहिए. ये दोनों राजकुमार थे. काहिलीकी कुर्सी, राज-गद्दी, इनको काट खानेको दौड़ती मालूम होती थी. ये उसे छोड़कर भागे और खूब भागे. काहिल कहीं भागने जैसा भी काम किया करता है ? आलसियों-की कहानियां किसने नहीं पढ़ी-सुनी ? वे अपने जलते कपड़ोंको बुझाने-

के लिए भी दूसरोंको पुकारा करते हैं. यह बात अलकारमें नहीं, हिसाबकी बोलीमें कही जा रही है. आलसी सचमुच ऐसे ही होते हैं. यह राजकुमार भागे ज़रूर, पर पीठ दिखाकर नहीं, छाती खोलकर रूढ़ि दुश्मनकी ओर, उससे लोहा लेनेके लिए; गरमियोंमें शिमला-शैलकी ओर नहीं, अफ़रीकाके सहाराकी तरफ; जाड़ोंमें भूमध्य रेखाकी ओर नहीं, ध्रुवदेशकी तरफ; मूसलाधारमें महलकी तरफ नहीं, खुले जंगल और मैदानकी तरफ. वे एअरकण्डीशण्ड (ठण्डी) गाड़ीसे भागकर टांगोंकी सवारीको ही ठीक समझते थे. उनकी दो टांगें उनको हर जगह ले जा सकती थीं, इसीलिए उनको वे पसन्द थीं. वे हाथ-पर-हाथ धर सकते हैं पर आलसी या काहिल-वजूद नहीं बन सकते. उनकी गोदीमें उनका दायां और बांया हाथ न मिलता था किन्तु बिजलीका गरम तार नरम तारसे मिलता था और ज्ञानकी चिनगारी पैदाकर अज्ञान के अंधेरेको खा जाता था. अलंकारकी बोली हो ली. आइए, अब मतलबकी बात करें.

आजका युग मशीन-युग है. मशीनकी जान है पहिया. अगर बिजली युग है तो उसका भी बाप पहिया ही है. पहियेने कब जन्म लिया, किसी को पता नहीं. यों मशीन-युग बहुत पुराना है. हनुमानजीने समुद्र तैरकर पार किया था, पर आज तो काशीकी गंगा मोटर बोटसे पार की जाती है ! नहीं-नहीं, नागपुरके शुक्रवारी तालाबमें भी मोटर बोट रहती है ! मतलब यह कि हम हाथसे काम नहीं लेते, औज़ारोंसे काम लेते हैं. साइकिलसे तेज़ चल सकते हैं, उतने पैरसे नहीं. रेल, तार, हवाई जहाज़ बनानेवालोंकी कहानियां या जिन्दगियां उतने ही शौकसे पढ़ी-सुनी जाती हैं, जितनी राम, लक्ष्मण या भीम और अर्जुनकी कथाएं. रेलके इंजनको सोच निकालनेवाला लड़का अक्सर अपनी मांसे फटकार खाया करता था. उसकी मां कहा करती थी, "क्या हाथ-पर-हाथ धरे बैठा है ? पकती हांडी देख रहा है, कुछ करता क्यों नहीं ?" यह सूनकर वह चौंक पड़ा करता था और उसका काम रुक जाता था. वह सुस्त नहीं तो बेकार ज़रूर हो जाता था. हम आजकल हाथको आराम देनेके लिए हाथके

औज़ार बनानेकी नहीं सोचते. कभी सोचते रहे हों, यह दूसरी बात है. आजकल तो हम औज़ार इसलिए गढ़ते हैं कि उसी हाथसे ज़्यादा काम कर सकें! नए-नए औज़ार सोच निकालना मुश्किल काम है, इसलिए तारीफके काबिल है. दिमागके लिए औजार सोच निकालना कहीं ज़्यादा मुश्किल काम है और कितना तारीफ़का काम है, उसका अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता. दिमागी औजार तैयार करनेवाले मूसा, ईसा, मुहम्मद कार्लमार्क्स, नित्शे वगैरह हुए. हिन्दुस्तान तो इस तरहके औज़ार निकालनेवालोंका केन्द्र ही रहा है. महावीर, बुद्ध, शंकर, राममोहन राय, दयानन्द, ये सब बैठे-बैठे दिमागी औजार ही गढ़ा करते थे. दिमागी औजार गढ़नेवाला देखनेमें काहिल-सा जंचता है, पर वैसी काहिली तो क़िस्मत से ही किसीको नसीब होती है. हां, वह सीखी जा सकती है और हर जवानको सीखनी चाहिए.

बेशक, यह जरा साफ-साफ समझना होगा कि दिमागी औजार क्या है? कैसे गढ़े जाते हैं? और उन्हें कौन गढ़ सकता है ?

दिमाग़ी मशीनका नाम है—संगठन, तनजीम (Organization) इसके पुर्ज़े हैं वे लोग, जिनके सिर कुछ जिम्मेदारियां हैं.

इन औज़ारों या पुरजोंके गढ़नेमें खुदगरजी छोड़नी पड़ती है, साथियों का एतबार करना पड़ता है और अपना एतबार जमाना होता है. हुकूमत भी की जाती है, पर हकूमतका घमण्ड सरसे निकालकर. आलिमों, ज्ञानियोंकी पहचान सीखनी होती है, उनको सिर आंखोंपर बिठाना होता है. उल्लूपर सवार रहनेवाली लक्ष्मीको काबूमें रखना होता है. याद रहे, सिंहवाहिनी शक्तिको उलूकवाहिनीका पहरा देनेमें खास मजा आता है, इसलिए उसको तो इस काममें जुटाए ही रखना होगा, नहीं तो वह ऊधम मचाकर तुम्हें चैन नहीं लेने देगी.

इन औजारोंको गढ़ वही सकता है जो कामकी काहिलीका माहिर है. निकम्मी-काहिली बुद्धिकी तलवारको जंग लगाती है और कामकी काहिली उसपर शान चढ़ाती है. कामकी काहिलीसे हमारा मतलब है

अपने साथियों या मातहतोंके काममें कम-से-कम दखल देना. कोई नई मशीन पुरानी मशीनकी जगह तभी लेती है जब वह कम-से-कम आदमी का दखल चाहे, ज्यादा-से-ज्यादा काम करे, अच्छा काम करे और आसानीसे काबूमें आ सके. कम-से-कम दखल देनेसे हमारा मतलब यही है कि जहां जहां हमको बोलना पड़ता था वहां वह मशीन बोलने लगे. महावीर यह चाहते थे कि अपने शागिर्दोंके चाल-चलनकी निगरानी उन्हें न करनी पड़े और वह इस इल्लतसे बच जाएं. साथ-ही वह यह भी चाहते थे कि उन का चाल-चलन उनकी निगरानीके बिना भी खूब अच्छा रहे. इसके लिए उन्होंने सोच निकाला यह तरीका कि हरेक आत्मा अपनी मेहनतसे पर-मात्मा हो सकता है और वह मेहनत है चाल-चलनको ठीक रखना. जेल-खानेमें जेलरको चैनके कुछ सांस लेनेके लिए गढ़े गए कैदी, पहरेदार और वार्डर. स्कूलमें मास्टरको सुखसे एक गिलास पानी पीनेको वक्त मिल जाए उसके लिए बनाए गए मानीटर. यह सब दिमागी औजार हैं और उपयोगी काहिलीकी उपज हैं.

जीवनकी गुत्थियोंको सुलझानेकी खूबी ही इस बातमें है कि तुम एक के स्वार्थका सबके साथ ठीक-ठीक मेल बिठा दो. आदमी जमातका एक हिस्सा है, सही, पर उससे बड़ा होना चाहता है. हिस्सा कुलसे बड़ होने की सोचे, यह अनोखी सिफत इस राजनैतिक दुपाएमें ही पाई जाती है. इस गुणका ख्याल रहते हुए ही तुमको चलना होगा. दो काहिलियोंको टकरानेसे बचना होगा. जीवनकी दुरुखीपर फ़तह पानी होगी.

हमारी हर कोशिशकी मंशा यही होती है कि कोई आसान तरीका काम करनेका मिल जाए ! कीचड़में पड़े पत्थरको उठानेमें भीमसेनकी कमरमें भी झटका आ सकता है, पर उसीको क्रेनकी मददसे पतला-दुबला आदमी बिना दिक्कत उठा लेता है. प्रकृतिपर विजय तुम मन्त्रों और यन्त्रोंसे ही पाते रहे हो. बाहरकी दुनियामें उससे फायदा उठाना रोजमर्राका काम बन गया है. पर जैसे ही अन्दरूनी उलझनें सामने आ जाती हैं या चिन्ताएं आ घेरती हैं, तुम उससे काम लेना भूल

जाते हो. तुम तदबीरें सोचना छोड़ बैठते हो. इतना ही नहीं, शोर मचाने लगते हो कि फिकरोंको दूर करनेका कोई इलाज नहीं. लोग कहते ही रहे, हवाई सवारी नहीं बन सकती और बन गई. इसलिए हम माननेको तैयार नहीं हैं कि मन और मस्तककी तकलीफोंके दूर करनेका कोई उपाय ही नहीं है.

भीख मांगनेसे भीख मिल जाती है, भूख भी मिट जाती है. उधार मिल जानेसे फौरनकी तकलीफ दूर हो जाती है. पर भीख और उधारी हमारे पैसा कमानेकी काबलियतको हमेशाके लिए मटियामेट कर देती है. भीख और उधारके गलीज पानीसे पैसा कमानेकी मशीनको क्यों जंग लगवा रहे हो ? दुविधाका रोड़ा हटाकर उस मशीनको चलता क्यों नहीं कर देते? भीख, उधार, इनाम, वजीफे तुम्हारी जानोंको शिकंजेमें कस रहे हैं. यह तुममें दम रहने ही नही देते. बात बातमें तुमको समझौता करना पडता है. ईसाई स्कूलमें तुमको अपने मनके खिलाफ ईसाके गीत गाने पड़ते हैं; आर्यसमाज स्कूलमें ओ३म्का बिल्ला लगाना पड़ता है; जैन स्कूलमें 'जय जिनदेवा' का शोर मचाना पड़ता है और इस्लामी स्कूलमें बिस्मिल्ला ही से बिस्मिल्ला करनी पड़ती है. तुम बिना समझौते ईसाके गीत गाओ, ओ३म्का बिल्ला लगाओ, 'जय जिनदेवा' गाओ, 'लाइलाहिल्लिल्लाह' पुकारो, तुम्हरे दिल बढ़ेंगे, तुममें दम आएगा. सन् '२१ में इन्हीं नारोंसे हिन्दुस्तान जाग उठा था.

वह जवान जो खाने, पीने, पहनने ही नही, उठने-बैठने तकके लिए दूसरों की ओर ताकता है; वह युवती जिसने स्वाधीनताको अपना दुश्मन समझ रखा है; जब अपनी जिन्दगीको अपने हाथमें लेंगे तो वे बहुत जल्द देखेंगे कि उनकी अक्लें काम कर रही हैं और वे दुनियामें अपनी जगह बना रहे हैं. हमारी जिन्दगीका यह भी एक काम है और जरूरी काम है कि अपने रास्तेमें आई हुई रुकावटोंको हटाते चलें. हम बदलें तो, दुनिया बदल जाएगी. किस्मत हमको नहीं बनाती, हम किस्मतको बनाते हैं. आज़ादीके दामों मोल ली वर्दी जब कुछकी निगाहमें तुमको उठा देती है

और झूठी-सच्ची तड़क-भड़क भी पैदाकर देती है तब आजादीसे पहनी वर्दी क्या न कर दिखाएगी! तुम्हें अपने अन्दरकी ताकतके खजानेका पता चल जाएगा और कामकी काहिलीकी देवी हाथ-बांधे तुम्हारे सामने खड़ी रहा करेगी.

कर्मयोगका मतलब काममें लग जाना भर नहीं है बल्कि काम करनेका कमाल हासिल करना है. काममें कमालका मतलब ही यही है कि कामके काहिलके हाजिर रहनेसे ही काम चल पड़े और ठीक-ठीक होने लगे. कृष्ण ऐसे ही काहिल थे. कामकी काहिलीके वे माहिर थे. व्यासजीने जबर्दस्ती उनसे एक बार सुदर्शन उटवा दिया, पर हज़रत मुहम्मदने कभी अपनी कमानपर तीर चढ़ाकर न दिया! नैपोलियनकी हाजिरीके करिश्मे किसने अंग्रेजी किताबोंमें नहीं पढ़े ? ऐसी शखसियतें आफ़तोंमें पड़कर क्या करती हैं, यही बातें है जो जान लेना ज़रूरी है :

* आफ़त आई और इनका चित्त काहिल बना. सब तरफ़से हटकर उसीके हलमें लगा.

* खूब काम करनेके बाद यानी थककर चूर होनेके बाद, तन-मन-दोनोंको काहिल बना दिया, यानी ढीला छोड़ दिया.

* छोटी-से-छोटी असुविधाका फ़ौरन इलाज कर डाला.

* बोझसे दबकर हंसते-हंसते कंधा बदल लेना, यानी कामके बोझसे बिना घबराए और चिड़चिड़ाए आसान तरीका निकाल लेना.

* आफ़त क्यों आई, कैसे आई, कहांसे आई, यह न सोचकर उसके दूर करनेमें लग जाना.

* मौतके फंदेमे फंस जानेपर भी सच्चे खिलाड़ीकी तरह जोर लगाते रहना और बच निकलनेकी उम्मीद बनाए रखना.

* आफ़त सिरपर आते ही अपनेमें डर पैदा करना और उस डरसे आफ़तसे बच निकलनेका उपाय सोचनेका काम लेना.

* अपने साथियोंके साथ ऐसा सम्बन्ध स्थापित करना कि वे हरवक्त तुम्हारे फ़ायदेकी ही सोचें और कोई नुकसान न होने दें या कम-

से-कम नुकसान करें.

* अपने लिए और बिल्कुल अपने लिए कुछ-न-कुछ वक्त जरूर निकाल लेना.

* अन्यायको कुचलते रहना, नहीं तो वह तुम्हें कुचलेगा.

* आफतोंका स्वागत करना, क्योंकि वे तुम्हें :

(अ) जगाती है,

(ब) सबक देती हैं,

(स) अक़्लसे काम लेना सिखाती है,

(द) जीवनकी गुत्थियां सुलझानेमें सहायक होती हैं.

* तुम्हारा सुख तुम्हारी चित्तकी एकाग्रतापर निर्भर है और यह कि वह कहां लगता है ? कितनी शान्तिके साथ लगता है ? कितनी दृढ़ताके साथ लगता है और कितनी होशियारीके साथ?

कामकी काहिली चित्तसे खूब काम लेनेको कहते हैं, पर वह काम होगा वह जो हम लें. अपने ऊपर फ़तह हासिल करनेका यही एक तरीक़ा है. अपनेपर फ़तह पाना औरोंपर फ़तह पानेकी कुञ्जी है. औरों पर फ़तह हासिल करनेकी सोचना गधेके सींग खोजना जैसा है. औरोंको जीतनेकी सोचो ही नहीं. तुमने अपनेको जीता और सब तुम्हारे भक्त बने. जिसका दिल क़ाबूमें है उसके लोग मुरीद बनना चाहते ही हैं, वह मुरीद बनाता नहीं. कामकी काहिली यह देन तुमको देगी.

आफ़तों से भिड़न्त

तेरह

विजय बाहर नहीं है. वह तुम्हारे अन्दर है. उस विजयके हाथके तुम बस हथियार भर बन जाओ. वह आफ़तोंसे भिड़ लेगी. उसकी सुनो और लड़ने कूद पड़ो.

अक्ल तुमको मिली है और इसलिए कि उससे काम लो. उसका काम यही है कि तुम अन्तरात्माकी सुनो. पुरानी यादोंके लबादेको उतार कर फेंक दो. आजकी लड़ाई आजके हथियारोंसे लड़ो. आजके हथियार भी आज गढ़ो. आजके सुने, देखे, सूंघे, चाखे और छुएसे फ़ायदा उठाओ. आजके तजुरबेको भी आजके हथियारोंकी गढ़नमें मिलाओ. जिससे तुम्हारे हथियार आजके न रहकर अबके बन जाएं.

ऊपरकी सलाह मानकर तुमको पछताना न पड़ेगा और यों न कहना पड़ेगा कि ऐसा कर लेते तो हम यह कर डालते. पछतानेके लिए कुछ छोड़ो ही नहीं.

हथियारोंको कहीं टैंक-बम न समझ बैठना. लड़ाईने तुम्हारे कान ही नहीं, मन भी गन्दा कर रखा है. ऐसा समझ बैठना बड़ी बात नहीं.

लड़ाई इन हथियारोंसे नहीं जीती जाती. नहीं तो अबतक सारी दुनिया पर हिलटरका राज्य होता, या लॉयड जार्ज सारी दुनियाको सन् '१८ में ही अंग्रेजोंको सौंप देते. रामचन्द्रके वीरोंने लंका नहीं जीती थी. लंका जीती थी रामचन्द्रकी उस दिलकी सफ़ाईने, जिससे उन्होंने विभीषणको गले लगाया था. आफ़तकी राक्षसी सेना तीरों, तोपोंसे न जीती जाएगी. उसके लिए जरूरत होगी उसके राजा अहंकारको कुचलने की, जो तुम्हारी हृदय-कुटीमें घुसकर विजय सीताको भगा ले जानेकी सोच रहा है.

जिनका मन साफ है, उनसे प्रकृति बातें करती है. व्याकरण-शास्त्री के लिए दाल धुलना दाल धुलना है. पर वही दाल धुलना मनके साफ़ बुद्धके लिए क्या था,पता है ? उसके लिए दाल नहीं धुल रही थी, विजय देवी अपने गन्दे वस्त्र उतारकर अपना नंगा यौवन दिखा रहीं थीं. तभी तो यशोधरा जैसी राज-सुन्दरी और राहुल जैसे गुलाबके फूलको छोड़ वे उससे नाता जोड़ने चल दिए. इन एम०ए०, बी०ए०, शास्त्री, उपाध्याय आलम-फ़ाज़लोंके दिल गन्दे हैं, मुंदे हुए हैं. जभी तो देख लो, 'भले सेठ का आजकल, पंखा बी० ए० पास' इनका व्यवहार तभी तो अव्याव-हारिक होता है. ये वेदके नहीं (यानी ज्ञानके नहीं) वेदमें लिखे शब्दोंके अर्थ कर सकते हैं. प्रकृतिकी बोलीका एक अक्षर भी इन्हें नहीं आता.

नसीहतकी, सलाहकी किसको जरूरत नहीं है ? और नसीहत कहां नहीं है ? वह सब जगह है. ये भलेमानस अहंकारका परदा हटाएं तो. मोहके जेलख़ानेमें मनकी दीवारें तोड़ डालो, मायाका फाटक उखाड़ फेंको, लोभकी हथकड़ियां चूर-चूर कर दो और गुस्सेको ख़त्म कर दो. देखो अभी प्रकृति तुम्हारे सामने सारा भेद खोलकर रख देगी. विज्ञानके झमेलेमें न पड़ना. उसने सिवाय हमारे मान, माया, लोभ और गुस्सेको स्थूल रूप देनेके कुछ भी नहीं किया. इसकी जड़में यही थे. पैदा भी यही होने थे. जैसे आजकलके संगठनकी जड़में नफ़रत है और ये वहीं फल लाएगी जो उसमें है. न विज्ञान बुरा, संगठन. और कुकैन ही क्या बुरी, जहर ही क्या बुरा ? कुकैन चीर-फाड़में बड़े कामकी, जहर बीमारी

का इलाज. पर व्यभिचारी कुकैन खाते हैं व्यभिचारके लिए और मानी क्रोधी ज़हर खाते हैं अपघातके लिए. अन्तरात्माकी सुनना सीखो. विज्ञान तुम्हारी मदद करेगा. मनके गुलामोंको विज्ञान खा जाएगा. इसे जवानो, याद रखना. हम विज्ञान जानते हैं, हम भौतिक विज्ञानके पण्डित हैं, हम रसायन-शास्त्रके ज्ञाता हैं, हम अर्थ-शास्त्री हैं, हम सिद्धांत-शास्त्री हैं. आप कुछ नहीं जानते, अगर आदमियोंकी तरह रहना नहीं जानते.

हमें किसी चीज़की जरूरत नहीं है. ज़रूरत है खुदीसे नाता तोड़-कर खुदासे नाता जोड़नेकी. जवानो, खुदी और खुदा डरावनी चीजें नहीं खुदासे नाता जोडनेका मतलब है सचाईको मानना. हम चीज़ोंको जानते, हैं, सचाईको नहीं. जो यह जानता है कि चांद है, सूरज है, वह बेवकूफ, मूर्ख और जाहिल. जो यह जानता है वे हैं और इसलिए हैं, वे समझदार, ज्ञानी, पंडित और आलिम. बन्दूक है और कैसे चलती है यह सिपाही जानता है और वह जाहिल है. बन्दूक कब और किसपर चलाई जाती है, जो यह जानता है वह जनरल है, इसमें कुछ समझदार है. बन्दूक चलानेका कब वक़्त आता है, कहां वक़्त आता है, जो यह जानता है वह वज़ीर है. वह जनरलसे कहीं ज़्यादा समझदार है. बन्दूक आदमियोंपर चलानेकी चीज़ नहीं, सिर्फ डरानेकी चीज़ है, जो यह जानता है वह पुरोहित है, पण्डित है, विद्वान् है. इन सबकी ज्ञानियोंमें गिनती की जाती है. बन्दूक तोड़ फेंकनेकी चीज है. खुदा मुझमें है और सबमें है, जो ऐसा मानता, जानता और व्यवहार करता है, वह महात्मा है, साफ़ मन है. वह परमात्माके निकट है. उसकी सुनो. आफ़तें भाग जाएंगी.

'जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ'—सचाईको खोजो, वह मिलेगी. एक औरत मर गई. यह जानना सचाई जानना नहीं है. वह जहर खाकर मर गई. यह जान लेना सचाईतक पहुंचना नहीं है. किसने ज़हर लाकर दिया, क्यों दिया, यह भी सचाई नहीं है. सचाई है यह जानना कि जहर खानेपर किन बातोंने उसे मजबूर किया ? क्यों वह

उन बातोंसे मजबूर हुई ? क्या किया जाए कि औरतें यों मजबूर न हुआ करें, इत्यादि. दुनिया जीती रही है, जी रही है, जीती रहेगी. जीवनका सिलसिला यों ही चलता रहेगा. फिर भी गुजरा कल वापिस नहीं आएगा. आज, आज ही रहेगा. जितने काम हो रहे हैं, सबके पीछे कोई मतलब रहता है. उस मतलबको जानना ही काम है. मतलब अहंकार है तो छोड़ना सफलता है. मतलब निर्विकार है, साफ है, भला है तो अपनाना, अनुकरण करना, नकल करना सफलता है.

'कोई न हो तो पगड़ीसे सलाह ले लो'— यह बड़ोंकी नसीहत है. ठीक है. सोचकर काम करना ही चाहिए. सोचना बुद्धिका काम है. बुद्धि कामको सरल और सीधा बना सकती है, वह काम करा नहीं सकती. काममें लगाती और कराती है लगन. दिलमें लगे बिना काम होगा ही नहीं. होगा तो ढीला होगा और अपना न होकर किसी और का होगा. बुद्धि लगनके बिना मरा हुआ सुन्दर सुडौल घोड़ा है. सिद्धान्त, वेद, गीता, कुरान, बाइबिल, त्रिपिटक यादकर कभी किसीने कुछ नहीं किया. रत्तीभर लगनसे, इन सबमें क्या है, यह यों ही समझमें आ जाता है. महापुरुषोंके अनुभव किताबोंमें हैं; पर सबके-सब नहीं हैं. सबके-सब तो हवामें हैं, वायु-मण्डलमें हैं. लगन तुम्हारे मनको रेडियोमें बदलेगी और हवामें से तुम इन भावोंको पकड़ लोगे. हां, एकचित्तताकी खूंटी तो मरोड़नी ही पड़ेगी. तुम्हें अनेकों अनुभव ऐसे हाथ आएंगे जो किसी किताबमे नहीं मिलेंगे. ईट, पत्थर, घास-पात और कागजवाली छोटी-किताबोंसे अनुभव आ भी कैसे सकते हैं. और जो कुछ आ भी गया है, वह किताबोंमें ठीक ही छपा होगा इसका भी क्या ठिकाना ! जभी तो सभी सन्त इन किताबोंके खिलाफ आवाज़ उठाते हैं. जो सन्त हैं और ऐसी आवाज नहीं उठाते वे या तो सन्त ही नहीं हैं या वायु-मण्डलमें से उनके पल्ले ही कुछ नहीं पड़ा. जबतक नई चीज पल्ले न पड़े, लगन नहीं लगती और लगन-इंजिनके बिना कामकी गाड़ी नहीं खिचती.

लगनके बिना जीतेजी मुर्दे बना रहना है. बुद्धिमान बनकर इसके बिना मारे-मारे फिरोगे. तुमसे और काम ले सकेंगे, तुम औरोंसे काम न ले सकोगे. लगन पैदा करो, छोटी-बड़ी कैसी भी. दिल हिलाओ, देह हिलेगी. पासवाले भी हिल जाएंगे. लगन जोरकी होगी तो दुनिया हिल उठेगी.

लगन कैसे लगे ? तुम आफ़तोंमें घिरकर किसपर खीज उठते हो ? कौन बात तुम्हारी आत्मामें खुजली पैदाकर देती है ? क्या सुनकर तुम भिन्ना उठते हो ? बस, उसी खीजको मिटानेमें, उसी खुजलीको दूर करनेमें, उसी तिलमिलाहटको मिटानेमें लग जाओ. जबतक न मिटा लो, दम न लो, शान्ति न लो. शान्ति निट्ठलेपनका नाम नहीं है. शान्ति मनकी एक हालतका नाम है. वह हालत मनको लगनके पक जानेपर नसीब होती है. पण्डितोंने पक्की लगनका नाम रखा है 'अवगाढ़ सम्यक्त्व'. लगन जब बालक होती है तो खूब तोड़-मरोड़ करती है, खूब शोर-गुल करती है, खूब लड़ती-झगड़ती है. पर ऐसी लगनवाली आत्मा भी खुश रहती है. लगन जब बड़ी उम्रकी हो जाती है तब इतनी शांत दीख पड़ती है, जैसे वह मर गई हो. जोरसे घूमनेवाला लट्टू शान्त, स्थिर-सा दीख पड़ता है, पर वास्तवमें वह बहुत काम कर रहा होता है. सर्जनके काममें भारी-से-भारी आत्माओं के पास समय कहां, रुचि कहां, ध्यान कहां ? अब उनकी जीभ नहीं चलती, सारी देह ही जीभ बन गई है. और वह चल ही रही है. मान, माया, लोभ और गुस्सा जो तुम्हें नचाते थे, अब तुम्हारे इशारे पर नाचते हैं. तब ढाते थे, अब बनाते हैं.

सुख-दुःखकी तरह वीरता और कायरता भी तुम्हारे ही अन्दर हैं. भोली-भाली डरपोक गाय, बच्चेकी खातिर शेरको सींग जमा देती है. यह क्यों ? वीरता उसमें थी. बछड़ेके प्रेमने उसमें लगन पैदाकी और उसने उसका उपयोग कर लिया. तुम्हें यह सुनकर अचरज मालूम होगा कि कायरता वीरताका दूसरा नाम है. सुस्त वीरता, काहिल बहादुरी, कायरता कहलाती है. अचरज न करो. नौकर दरोगा और बरखास्त दरोगा

एक ही होते हैं. पर दोनोंमे फ़र्क़ कितना है ? बरख़ास्त जनरलको एक मामूली सिपाही ठोक सकता है और वही सिपाही जो कल उसके सामने जाते भय खाता था ! कायरता गुस्सेकी ठोकर खाकर सुस्ती फेंक वीरता बन जाती है. लगनवाले आदमी औरोंपर गुस्सा न कर अपनी कायरता पर गुस्सा उतारा करते हैं और यों उसे मैदानमें ला खड़ा कर देते हैं. गुरु गोविन्दसिंह यह मानते थे. तभी तो कह गए—'चिड़ियोंको बाज़ बनाऊं तो गोविन्दसिंह कहलाऊं."

गड़े लट्टू और घूमते लट्टूको कौन नहीं पहचान लेता ? सवाल निकालनेमें मस्त और पीनकमे डूबे हुएमे कौन फ़र्क नही कर सकता ? लकड़ीके बलपर नाचनेवाला बन्दर और अपनी मर्ज़ीसे किलोल करते बन्दरको कौन नहीं पहचानता ? फिर काममें लगाए गए और लगेके समझनेमें क्या मुश्किल होगी ? जो लगाए जाते है, वे गाढ़कर खड़े किए लट्टू हैं. वे मुर्दा हैं. उनकी नक़ल न करना. सच्ची, न झूठी. झूठी नक़ल है जैसा और करें वैसा करना, यानी लंगौटी बांधकर गांधी बनना! सच्ची नक़ल है—उन जैसा उत्साही, जोशीला, निडर और लगनवाला बनना. यानी सचाईपर डटकर गांधी बनना. गड़े लट्टुओंमें न उत्साह होता है, न काम ! नकल किसकी की जाए ? आगमें फसे कीड़ेको निकाल-नेवाले चिमटेकी नकल नहीं की जाती और न उससे कोई सबक सीखा जा सकता है. नकल की जाती है आगमें फ़ंसे कीड़ेको हाथ डालकर निकालनेवाले आदमीकी और वह भी उसके उत्साहकी, कामकी नहीं. कहीं हम इस तलाशमें थोड़े ही बैठे रहेंगे कि कब कीड़ा आगमे गिरे और हम निकाले !

कोई बाप अपना नाम जपनेवाले बेटेसे खुश नही हो सकता. राम, अगर कोई सच्चे मानीमे राम है, तो रामनाम जपनेवालोंको माफ नहीं करेगा और अगर वह माफ कर भी दे तो कोई पानीदार आदमी उस माफीको पाकर खुश नहीं होगा. चोरीसे एक कच्चा आम तोड़नेवाले साधूने राम जपकर प्रायश्चित्त नहीं किया था. उसने राजाके दरबार-

में पहुंचकर अपना हाथ कटवाया था. वह था भी पानीदार, बीसवीं सदी का बेहया धर्मात्मा नही था. हाथ-पर-हाथ रख बैठकर तुम सिर्फ काहिलों को धोखा दे सकते हो, समझदारोंको नहीं. पर तुम ऐसा करनेकी सोचो भी तो क्यों ? लगनवालेके सोच, समझ और काम, एक लाख छियास हजार मील फी सैकिडकी चालसे चलते हैं. वह सुस्तीसे काम नहीं किया करता.

अगर सचमुच कोई उलझन समझनेमें ही नहीं आ रही और सोचना ही है तो उठाओ कुल्हाड़ी और लगो लकड़ी चीरने. और देखो तुम्हारी बुद्धि चुटकियोंमें उसे कैसे सुलझा देती है. जितनी ज़्यादा उलझी गुत्थी हो उतने ही जोरके काममें लगो. बैठो नहीं, बुडबुड़ाओ नहीं, सोचमें न पड़ो, औरोंसे न अड़ो, न हलके लिए लड़ो. बैठे हो तो खड़े हो जाओ, खड़े हो तो हाथ हिलाओ, घरमें ही तो आंगनमें आओ, आंगनमें हो तो बगीचेमें जाओ. खुरपा उठाओ और घास निलाओ. वहीं जवाब मिलेगा. दुनिया क्या है ? इस सवालका जवाब गुरू नानकने भूलियां साफ करते-करते दिया था. कबीर साहिब कपडा बुनते-बुनते क्या कुछ नहीं सोचते थे ? उस जुलाहेने बीसवीं सदीके प्रसिद्ध जवान कवि रवीन्द्र को मोह लिया. काम करते सोचना कामका होता है. बेकाम सोचना बेकार जाता है. जाता है तो जाओ, दुःख तो इस बातका है कि वह तुम्हें बेकार कर देगा.

ऊपरकी पंक्तियोंमें बार-बार काम करनेपर जोर दिया गया है. उस की वजह है. आजकलके जवान काम करते शर्माते हैं. काम न करना हिन्दुस्तानकी मिट्टीमें नहीं है. यूरोपकी मिट्टीमें भी नहीं. कहींकी मिट्टीमें नहीं है. काम न करनेकी थोड़ी-बहुत बीमारियां सब जगह हैं. पर यहां इस बीमारीने पचास-साठ वर्षमें ही जोर पकड़ा है. यह बीमारी स्कूलकी ऊंची क्लासोंसे शुरू होती है और कालिजकी ऊंची क्लासोंमें जाकर लाइलाज हो जाती है. स्कूल और कालिज मानो इसके अड्डे हैं. मतलब यह कि वह बेहद बढ़ती जा रही है. इसलिए इसपर ज्यादा

जोर दिया गया है. पर याद रहे हमने जहां भी काममें लगनेपर जोर दिया है वहां हमारा मतलब सिर्फ चिन्ताओंको लतियानेका रहा है. काम मे जानवरोंकी तरह लगना काम नहीं कहलाता. मजदूर काममे लग-कर भी काम नहीं कर पाता. सिपाही लड़ाई जीतकर भी नहीं जीतता. लड़ाई खत्म होनेके बाद वह डाके और चोरीसे ही पेट भर सकता है. अगर उसके मालिक दया करके उसे नहीं निकालते तो वह ठाली रहकर तबेलेके घोड़ोंकी तरह तबेलेकी दीवारें तोड़ सकता है. उसने काम किया भी कब ? उससे काम लिया गया. जबरदस्ती भरतीका कानून यह साफ बताता है कि पेट भरे लड़ना नहीं चाहते. भूखे ही लड़ते हैं. वे दुश्मनसे नहीं लड़ते, पापी पेटसे लड़ते हैं. दो लड़नेवाले मुल्कोंमे जीत उसकी होती है जिसके पास जीसे आजादीके लिए लड़नेवालोंकी तादात ज़्यादा हुआ करती है, यानी सचमुच काम करनेवालों की. कामका नाम उसी कामको दिया जाता है जो काम करनेवालोंमें अपनी प्रतिक्रिया, कोई गहरा निशान, दिलपर छोड़ जाए, यानी जीवनमे किसी गुत्थीका हल सुलझा जाए. काम एक सबक और भी देता है. वह यह कि वह उस समयकी हालतपर असर डालता है. कबीरका काम बुनना नहीं था. कबीरका काम था ईश्वरको ढूंढ़ना, सोते हुओंको जगाना, हिन्दु-मुसल-मानोको आदमी बनाना, भूले-भटकोंको राह बताना. राजाओं और अमीरोंको उच्छृंखल न होने देना. बुनना कबीरको रोटियां देता था. वह रोटिया देता था, पेटुओंकी नजरोंमें. मेरी नजरमे वह आज़ादी देता था, मस्ती देता था, ईश्वरका और उसकी सृष्टिका भेद बताता था. उसकी गाढ़ विद्यापीठ थी. उसके सामने फ़ैला काम वेदका पन्ना था. देखो, 'झीनी झीनी झीनी बीनी चदरिया' मे इंगला, पिंगला, सुषुम्ना वगैरः हठयोग और 'ज्यों-की-त्यों धर दीनी चदरिया' मे उपनिषद मौजूद है. गांधीका चर्खा कातना काम था. अली-बन्धुओंमें मुहम्मदअलीको मैने चर्खा कातते देखा था. घण्टे भरमे दस गज़ सूत भी नहीं निकलता था, पर वह काम था. वह काम उनको रोटी नहीं देता था. शायद एक आध

टुकड़ा ले जाता था. पर था वह काम. उस कामसे वे जगे और औरों को जगाया.

खुलासा यह कि कामकी मशीन न बनना. मन मस्तक दोनों लगा कर हिम्मत और विश्वासके साथ लगोगे तो तुम्हारी गिनती हिम्मतवालों में होगी और बुझे मनसे लगोगे तो गुलामोंमें, कायरोंमें गिने जाओगे. हिम्मतके साथ और मनके लगनेसे तुमको मनपर काबू करना आ जाएगा. और बुझे मनसे लगकर तुम मनके काबूमें हो जाओगे. यह जानकर तुम्हें अचरज होगा कि मनको पूरी तरह काममें लगानेके बाद मन तुमको जगतकी बड़ी-बड़ी गुत्थियां खोलकर बता देगा और कुछ ही दिनोंमें तुम्हारी गिनती विचारकोंमें होने लगेगी, दार्शनिकोंमें होने लगेगी. दर्शन-शास्त्री तुमको निठल्ले मिल सकते हैं, पर दर्शनकार निठल्ले नहीं थे. वे तो घूमते लट्टूकी तरह काममें लगे रहते थे. कुछ पैदा करनेवाला काम ही, काम कहलाता है. कोरा काम काम नहीं. कोरा काम तो उस भाप की तरह बेकार जाता है, जिसको कभी-कभी रेलका ड्राइवर ज्यादा होने से निकाल दिया करता है.

आफतोंसे भिड़नेमें इस तरहका काम बड़े काम आएगा. आफतों-में बहुत-सी आफतें नासमझीकी हुआ करती हैं. जब काममें लगकर मन, जगतके जंजालोंको सुलझाकर तुम्हारे सामने रख देगा तब आफ़तों से जो भिड़न्त होगी उसमें तुम्हारा पल्ला भारी रहेगा.

आफ़तोंसे भिड़कर हमारी हार क्यों हुआ करती है ? अगर उन बातोंको हम जान लें तो उनसे भिड़नेमें हमें और भी आसानी होगी. वे हैं :

(१) यह मान बैठना कि बिना पैसे कुछ हो ही नहीं सकता.
(२) हम तो मामूली आदमी हैं. हमारी कौन सुनेगा ?
(३) विरोधका सामना हमसे न हो सकेगा.
(४) दुनिया न बदली, न बदलेगी.
(५) नए पुरानेकी टक्कर.

द्वितीय खण्ड

विश्वास

विश्वास

एक

'रघुकुल रीति सदा चल आई, प्राण जाहि पर वचन न जाई.' तुलसीकृत रामायणकी यह आधी चौपाई है. दांडी मार्चमें इकतारेपर जब यह गाई जाती थी तो लाखोके दिल हिला देती थी, सैकड़ोंकी नसोंमें खून दौड़ने लगता था और वे हथेलीपर सर रखकर देशकी आजादीके मैदानमें कूदनेको तैयार हो जाते थे. वास्तवमें वचन देकर निभाना ही चाहिए. पर हर कोई नहीं निभा सकता. हां, हर कोई वचन दे सकता है. वचन देकर निभाना बहादुरोंका काम है. पर वचन निभानेसे बढ़-कर एक और बहादुरी है. और वह है अपनेको वचन देकर निभाना. बहादुर भी वचन देते है और कायर भी; पर बहादुरोंके वचन उस ज्ञान-वज्रके टुकड़े होते है जो बहादुरको अपनी शक्तिकी जानकारीसे होता है, यों वे अटूट होते हैं. कायरके वचन अज्ञान कपूरके टूक होते है, जो आपत्तिकी हवा पाकर उड़ जाते हैं. अपनेको वचन देना यानी अपने में बंध जाना, अपनी आत्मा और उसकी बेहद ताकतको मान लेना और उसकी ताकतपर भरोसा हो जाना.

यही अपनेको वचन देना, विश्वास, श्रद्धा, प्रतीति, दर्शन, अकीदा और धर्म नामोंसे पुकारा जाता है. जो अपने प्रति सच्चा है उसके बलका ठिकाना नहीं. लगन कहते हैं, सब ओर से हटकर मनका एक ओर लग जाना. ऐसी लगन बिना विश्वासके नहीं होती. फिर वह विश्वास किसी किस्मका क्यों न हो. विश्वासकी किस्में हो सकती हैं, पर सब किस्मोंकी जड़में आत्मबलका विश्वास रहता ही है. विश्वास-का अर्थ है अपनेको वचन देना, यानी अपनेको अपने सुपुर्दकर देना या अपनेको पहचान लेना. अंग्रेजीमें इसे 'सैल्फकन्ट्रोल' कह सकते हैं. कोई लगनवाला आदमी मन टटोलकर इस सचाईको जान सकता है. लगनवाला आदमी साफ-साफ देख सकता है कि किस प्रकार उसकी तमाम ज्ञानेन्द्रियां सिमटकर उसी के चारों ओर जमा हो गई हैं, जिसका उसको विश्वास हो गया है.

रावण और रामका डीलडौलमें कोई मुकाबला ही न था. रावण रामको बगलमें दबाकर भाग जा सकता था; पर रामसे मारा गया—क्यों ? रावण दशमुख था. राम थे एकमुखी. दशमुखका अर्थ ही यही है कि उसका मन दसियों ओर चलता था. वह भला एक ही ओर मन रखनेवाले रामका कैसे मुकाबलाकर सकता था. लड़ाइयां देहसे नहीं जीती जातीं, लगनसे जीती जाती हैं. रामको सिर्फ सीता लेनी थी, न लंका चाहिए थी, न साकेतका राज. रावणको चाहिए थी सीता, लंकाका राज, दक्षिणी हिन्दुस्तानपर क़ब्जा और न जाने क्या-क्या ! उसे हारना ही था, उसे किसी एकका विश्वास जो न था ! रामका एकमें विश्वास विभीषणको जंच गया. लंका धूलमें मिलकर भी बच गई.

सूरजमें बड़ी आग है, पर जलता नहीं उससे एक तिनका भी. आतशी शीशा हाथमें लेकर उसी आगसे आदमी कपड़ा जलाकर गांव जला डाल सकता है. हम-तुममें साड़े तीन हाथके होते हुए भी बड़ी ताकत है. हम भी सूरजकी तरह किरणों बखेर रहे हैं. विश्वासके

आतशी शीशेसे उनको इकट्ठी कर सकते हैं और चमत्कार दिखा सकते हैं. विश्वास व्यक्तिमें भी हो सकता है, काममें भी, विचारमे भी, संभावनामे भी; पर होना चाहिए वह किसी कामका, जिसकी खातिर जान लड़ाई जा सके. बिखरी हुई ताकतोंके धागोंको मिलाकर एक नोक निकालनेका विश्वास ही एक मन्त्र है. सृजनकी सुईकी नोकमें वही धागा पिरो सकता है और आजादीकी चादरमें आई खोंपको वहीं सीं सकता है.

चारों ओर हाथ मारनेवालोंके हाथ कुछ नहीं आता. अकबर राज की बागडोर हाथमें रख दीन-इलाहीको नहीं चला सका. राज न छोड़ना ही दीन-इलाहीमें विश्वास न होनेका सबूत है. महावीर, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, विश्वासी थे, आत्म-विश्वासी थे, आत्मबल विश्वासी थे, चमत्कार दिखला गए. असल बात यह है कि कोई कितना ही ईमानदार और समझदार क्यों न हो, अपनेमें जब चाहे विश्वास पैदा नहीं कर सकता. अब सवाल पैदा होता है कि यह विश्वास आता कहां से है ? आता भी कहींसे नहीं है, यह भी ठीक है. तब क्या बात है, बात यह है कि मैं बाजारमें खड़ा हूं, हलवाईकी दुकान पास है. रुपयेसे खाना मिल सकता है, यह भी मैं जानता हूं. मेरी जेबमें रुपया भी है. पर ज़ेबमें रुपया होनेकी बात मुझे मालूम नहीं. मैं भूखा खड़ा-खड़ा ललचाई आंखोसे दुकानकी ओर देख रहा हूं. पांव उस ओर जानेको उठते ही नहीं. मेरा सारा बल बेकार. मन तरह-तरहकी तदबीरें सोच रहा है. अचानक ज़ेबमें हाथ जाता है, रुपयेका ज्ञान होता है, मन एकाग्र होता है, बल आता है, दुकानकी ओर चल देता हूं. यूं विश्वास आता नहीं है, जागता है. यानी विश्वास हममें ही है, प्रेमकी तरह यह भी हमको जन्मसे ही मिला है.

प्रेमका मिथ्या व्यवहार काम नाम पाता है, इसी प्रकार विश्वास का मिथ्या व्यवहार अन्धश्रद्धाके नामसे पुकारा जाता है. विश्वासके बिना हम एक क्षण भी नहीं रहते, पर वह सब अन्धविश्वास ही होता

है. सती होनेके नाते सीता आगमें नहीं जलीं थीं, इस विश्वासपर कई सच्ची औरतें जान दे चुकी हैं. कटे सिरको देवी फिर जोड़ देती है, इस विश्वासपर दसियोंने अपना सिर काट डाला है. सच्चोंको ईश्वर तैरा देता है, इस विश्वासपर अनेकों सच्चे डूबकर मर चुके हैं. यह सब विश्वास हैं—अंधविश्वास. फलित ज्योतिषका विश्वास, छींकका विश्वास, शकुनोंका विश्वास; और न मालूम क्या-क्या. आजकल विश्वास बाजारू चीज बनी हुई है. महावीर, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, यह विश्वास नहीं कर सकते कि आजकलके आदमी इतने विश्वासी हो गए हैं. मतलब यह कि आज विश्वास इतना बढ़ा हुआ है कि उसे कम करनेसे ही हम आत्मविश्वासतक पहुंच सकते हैं. पूजा-नमाज, मंदिर-मस्जिद, चोटी-दाढ़ी, छूत-अछूत, मोमिन-काफिर, आर्य-म्लेच्छ इत्यादि अति विश्वासकी ही उपज है. आदमी क्या करे, विश्वास उसमें ऐसे ही है जैसे उसके हाथ-पांव. हाथसे वह जहर खा सकता है, पांवसे वह आगमे कूद सकता है, विश्वाससे वह सर कटा सकता है और काट सकता है. उसमे विश्वास है, इसलिए राजामें विश्वास करना ही होगा, पार्टी में भी, साधूमें भी, स्वर्गमे भी, नरकमे भी और ईश्वरमे तो वह विश्वास लेकर ही पैदा हुआ है.

बाजारोंमे आवाज सुनाई देती है, अंजीलपर विश्वास लाओ, कुरान पर विश्वास लाओ, वेदपर और न मालूम किस-किसपर. पर विश्वास लावें कहांसे ? हमारे पास पहलेसे ही है. जो है बहुत कामोंमें फंसा है, उसे फुरसत कहां ! विश्वास हममे है, लानेकी जरूरत नहीं है. जरूरत है उससे ठीक काम लेनेकी. विश्वासी सब हैं, अविश्वासी कोई नहीं, पागल भी नहीं. सब धर्म एक है, ऐसा विश्वास करनेवाला अपने पैदायशी धर्म हिन्दू, जैन, बौद्ध, पारसी,ईसाई, इस्लामको छोड़ सकता है, विश्वास को नहीं. धर्म और विश्वास एक मानेवाले शब्द हैं. यों धर्म भी नहीं छोड़ा जा सकता. 'ईश्वर है' इसपर विश्वास नहीं करते, मत करो. 'ईश्वर नहीं है' इसपर विश्वास करो, विश्वाससे बचकर कहां जाओगे.

विश्वास आत्माका गुण है और इसलिए है कि वह अपने (आत्माके) होनेकी जानकारी करा दे. इसका दुरुपयोग जीवनकी धज्जियां उड़ा देगा, आदमीसे आदमीको लड़ा देगा, मनुष्यको पशु बना देगा, सुखको भगा देगा, शांतिको पास न आने देगा; और इसका सदुपयोग एककी सब पर, सबकी एकपर और सबकी सबपर विजय लाभ कराएगा. इस दुनियाको रहनेकी जगह बनाएगा, स्वर्ग और मोक्ष यहीं ला धरेगा.

विश्वास और अंध-विश्वास

दो

बिजलीकी तरह विश्वास भी गरम और ठण्डा दो तरहका होता है. यहां हमारा मतलब गरम विश्वाससे ही है, यानी सच्चे विश्वाससे.

विश्वास ज्ञानको काममे लगा देता है. ज्ञानकी तसल्ली जाननेमें नहीं है, करनेमें है. आत्मा ज्ञानी है, वही देह-रथका सारथी है. सारथी रथपर रथ चलानेके लिए ही सवार होता है, सवार होनेके लिए सवार नहीं होता. रथपर सवार होकर रथ न चलाना अपनी हंसी उड़वाना है. विश्वासके बिना ज्ञानी-आत्मा देहसे उचित काम न लेकर हंसीका निशाना बनता है.

जिनका विश्वास ठंडा पड़ गया है उनके नाम हैं—अविश्वासी, मिथ्याभिमानी, कुविश्वासी इत्यादि. ये अविश्वासी कई प्रकारके हो सकते हैं.

१—**मरेमन** : ऐसे लोगोंमें बाहरी कोई कमी नहीं पाई जाती. मोटे ताजे, खाते-पीते, भले-चंगे, बड़े दयालु, और बड़े ईमानदार; पर करेंगे कुछ नहीं. जोखमसे कोसों दूर भागेंगे. जीवनका कोई उद्देश्य नहीं बनाएंगे.

आराम-पसन्द होंगे और बेपरवाहीकी जिन्दगी बिताएंगे. आत्मा तो इनमें अन्दर रहती ही है, पर उसकी तमाम ताकतें सोई पड़ी रहती हैं. इनसे जबतक कुछ आशा ही नहीं की जा सकती, जबतक इनमे विश्वास न जागे और लगन न लगे.

कोई हिन्दू अगर इस्लाममें बताए सातवें आसमान बैठे एक ईश्वरका विश्वासकर मुसलमान हो जाए तो मुझे खुशी होगी. क्योंकि यह विश्वास उसमें जान फूंक देगा, ज्ञानको काममें लगा देगा. कोई एक अदृश्य ताकत है जो हम सबसे काम ले रही है. यह सच्चा विश्वास है, गरम विश्वास है और ऐसा विश्वासवाला कुछ कर गुजरेगा. ठीक इसी प्रकार कोई मनमरा मुसलमान हिन्दू-धर्ममे बताए ईश्वरके सब जगह मौजूद होनेमें यकीन ले आए तो हर सच्चे मुसलमानको खुशी होगी. क्योंकि वह मुसलमान खुदाका जानदार बन्दा बन जाएगा. अकीदेवालेका नाम ही मोमिन और मुसलमान है विश्वास लाए बिना 'मरे-मनमें' जान न पड़ेगी, फिर चाहे वह विश्वास व्यक्तिमे हो, सिद्धांत में हो, धर्ममे हो, या किसी काममें हो.

'धर्म बदलना' जैसा बोल, रिवाजमे आ गया है, पर है बिलकुल गलत मुहावरा. 'धर्म लाना' समझमें आता है. बुराई छोड़ो, नेकीपर धर्म लाओ जो हिन्दू नहीं है उसे मुसलमान हो ही जाना चाहिए. जो मुसलमान नहीं उसे हिन्दू बनना ही ठीक है. हिन्दू और मुसलमान दोनोंके अर्थ धर्मात्मा है. 'मै हलवाई' कहनेवाले को हलवा बनाना आना ही चाहिए, नहीं तो वह हलवाई ही नही. मैं जैन, मै सिक्ख, में पारसी, मै मुसलमान, मैं हिन्दू कहनेवाले धर्मात्मा होने ही चाहिएं, नहीं तो वे वे नहीं. धर्मात्माका अर्थ है विश्वासी, अक्लमन्द. विश्वासी निकम्मा नहीं मिलेगा, वह तो पैदा होनेसे मरनेतक दुनियाको कुछ ऊंचा ही कर जाएगा.

'मरे-मनको' विश्वास लाना ही पड़ेगा, नहीं तो उसकी ज़िन्दगी कौड़ी कामकी न होगी. बे-लगन आदमी धर्मात्मा नहीं होता. आदमी

ही नहीं होता. विश्वास ज्ञानका दुश्मन, जो यह कहे वह विश्वासी नहीं. ज्ञान-सागरमे उठनेवाली तरंगोंका नाम ही विश्वास है. विश्वास ज्ञान है और ज्ञान विश्वास. सागर तरंगोंके बस चुप नहीं रह सकता, ज्ञानी विश्वासके बस निठल्ला नही बैठ सकता. वह संसारको कुछ-न-कुछ कामकी चीज देता ही रहेगा. तरंगे हलकी हो सकती हैं, सो सकती हैं, पर सागरसे अलग नहीं हो सकतीं. यही हाल विश्वासका है. वह है सबमे, पर जागा हुआ है कममे. मरे-मनमे उसे जगाना ही होगा. 'मरे-मनमें' ज्ञान तो जीते-मन जितना ही होता है. वह बिजलीकी तरह चमकदार, अनमोल रतनोंको दिखा भी देता है पर उन रत्नोंको विश्वासके बिना उठाकर कौन लाए और फिर अपनाए कैसे जाएं ? मछली तैरती है, मैं तैर सकता हूं, इस विश्वासने तैरना सिखा दिया. पक्षी उड़ता है, मैं उड़ सकता हूं. इस विश्वासने हवाई जहाज बना दिया. बनाया ज्ञानने यह सही, पर वह तो हमेशा है, पहले क्यों नहीं बना ? विश्वास न था. पर वह तो सदासे है. उड़नेमें कब था ? ईश्वरमें था, उसके चमत्कारोंमें था. आत्मा और ज्ञानकी ताकतोंमें कब था ? संस्कृत शब्दोंमे मुझे 'विज्ञान' शब्द ही पसन्द आया है; क्योंकि यह विश्वास और ज्ञानसे मिलकर बना है ? विज्ञान बिना विश्वास टस-से-मस नहीं हो सकता. धर्म भी बिना विश्वासके न आत्माको पा सकता है और न परमात्माको. विश्वाससे नक्शे बनते और ज्ञानसे मकान खड़े होते हैं. विश्वास कहता है—'हो सकता है.' ज्ञान करनेमे लग जाता है और कर डालता है. ज्ञान जागता और उठता, काममें लगा ही रहता है. पर जगाता-उठाता और लगाता विश्वास है. मरे-मनको उसकी सबसे ज्यादा जरूरत है.

सिद्धांतोंमें बना, ग्रंथोंमें पाया, बाप-दादोंसे हाथ लगा, जोशमे जागा विश्वास खासतौरसे ज्ञानका दुश्मन होता है और वह कुविश्वास या अंध-विश्वास नाम पाता है. वह ज्ञान सागरमें लहरें उठानेकी बजाए उन्हें दबाता है. परन्तु मनमें स्व-भाव रूपसे जागा विश्वास ज्ञानमें लहरें

उठाता ही उठाता है. वह सदा सच्चा विश्वास होता है. ऐसा विश्वास परीक्षा-प्रधान होनेके नाते बड़े-बड़े काम कर जाता है. परीक्षा प्रधानी का चित्त बड़ी जल्दी एकाग्र होता है. मरे-मनको वही जगा सकता है, सिद्धांत-ग्रंथ नहीं. यहां यह समझ लेना चाहिए कि विनाशके लिए, मार काटके लिए, व्यभिचारके लिए, ज्ञानको जगानेमें भी विश्वासकी जरूरत होती है, पर उस विश्वासको कुविश्वास नाम दिया जाता है—क्यों? क्योंकि हमारे जीवनका भाग रचनात्मक और अहिंसात्मक कामोंपर निर्भर है. कुविश्वास सुविश्वासका एक भाग है, सही, पर ऐसा ही भाग है जैसे टट्टी हमारे खाए हुए भोजनका बदबूदार और निकम्मा हिस्सा है. उससे काम ले लेना बुद्धिमानी है, पर उसके बनानेके कारखाने खोलना अबुद्धिमानी ही नहीं, मूर्खता है और पाप है.

विश्वासपर कुछ कहना मुश्किल और नाजुक भले ही हो, पर असंभव नहीं. प्रेमपर कहना ही कौन आसान है? और आत्मापर? यह तो और भी कठिन. पर कहा तो इनपर भी गया है. बुद्धमें दाल धुलनेसे विश्वास जाग गया; दमयन्तीकी प्रेमकी आंखें नलका जिक्र सुननेसे खुल गईं; लैला काली होते भी मजनूकी आंखोंमें बस गई. पर क्या कोई दाल धो किसीमें विश्वास जगा सकता है और क्या कोई किसीका नल और किसीकी लैला ढूंढ ला सकता है. मरे-मनको विश्वासकी बात भर कही जा सकती है, विश्वास जगाएगा वह आप ही.

विश्वास जगाए वग़ैर तुम बेकार हो. उसे जगाओगे भी तुम अपने आप. तुम अपनेको और तुम्हारे मित्र तुमको भले ही भोंदू समझते रहें, पर यह हम बताए देते है कि तुम्हारे भोंदूपनमें तुम्हारे ज्ञानकी कमी कारण नहीं है, यह तो तुममें बहुत है. पर कारण है विश्वास और तुम्हारे विश्वासका सोया पड़ा रहना. नानकको उसके माता-पिता, भाई-बन्धु, नाते-रिश्तेवाले पागल समझते रहे. पर उसमें विश्वास जाग गया था और आज गुरुओंमें शानके साथ बैठा है. ज्ञान चमकाओ और ख़ूब चमकाओ, पर वह चमकेगा विश्वासके लेश-मात्र से. उसीको ढूंढो, उसीके

पीछे पड़ो. मरे-मनमें जान पड़ेगी.

२—**डरेमन :** ऐसे लोग अपनी आत्म-शक्तियोंको संगठित नहीं कर सकते. डरसे वे तमाम बिखर जाती हैं. हर काममें उन्हें शक होने लगता है. उदासीके वे शिकार हो जाते हैं. 'यह भी ठीक नहीं, वह भी ठीक नहीं' की आदत पड़ जाती है. यदि वे कुछ करते हैं तो औरोंके जोर देनेपर, उनका मन उस कामके करनेमें ज्यों-का-त्यों शंकित बना रहता है. उनके इस रोगकी यदि कोई दवा है तो विश्वास. यह दवा इनपर जादूका असर रखती है. इनमें क्रान्ति पैदाकर देती है. 'डरेमन' सदा चिन्तामें डूबे रहते हैं. अपनेपर उन्हें जरा भी भरोसा नहीं रह जाता. अपनेको वे बहुत छोटा समझने लगते हैं. विचारोंके लिहाजसे वे कुएंके मेंढक बन जाते हैं. ताक़तवर होते हुए भी अपनेको कमजोर मानते हैं. किसीका ऐतवार करते डर लगने लगता है. बेपरवाही बेहद बढ़ जाती है. हरेक काममें ऐब देखनेकी आदत पड़ जाती है. खादे-पीते, उठते-बैठते सशंक बने रहते हैं. इसका नतीजा यह होता है कि इनका अपनी जिन्दगीपर अधिकार नहीं रह जाता. इनकी जीवन-नैया बेपतवारकी होकर जिधर चाहे बह जाती है. इनमें अगर दम आ सकता है तो केवल यह मानकर कि हम किसी कामके लिए पैदा हुए हैं. जो और कर सकते हैं उसको हम भी कर डालेंगे. जो कुछ हमारे पास है, उससे बहुत कुछ हो सकता है. हमारी जिन्दगी बड़े कामकी है. इसीका नाम सच्चा विश्वास है. यही इनमें दम डालेगा

मनमें अनेक भाव उठते हैं और असंख्य विचार. वे एक विश्वास यानी सच्चे विश्वासको छोड़कर सब-के-सब निराशाकी कीचडमें ढकेलनेवाले होते हैं. याद रहे तुच्छताका वहम आत्माको कमजोर करता है और उच्चताके वहमसे भी आत्मबल बढ़ता नहीं, घटता ही है. 'मैं सब कुछ हूं' के पास न बैठना, उसकी सोहबती तुमको उतना ही नुक़सान पहुंचाऐगी, जितना 'मैं कुछ नहीं' की. विश्वाससे ही तुम अपनी जिन्दगीपर धावा बोल सकते हो और उसी हथियारको देखकर जिन्दगी तुम्हारे

सामने आत्म-समर्पण कर सकती है.

निराशाकी कीचड़में तुम फंसे किसी भी तरह क्यों न हो, पर निकलनेका एक ही उपाय है—विश्वास. अगर तुममें नेकीकी जरा भी कोर बाकी है, अगर तुममें आवाज निकालनेका तनिक भी दम है तो तुम विश्वासको अपना ही लोगे. इसको अपनाए बिना चारा ही क्या है.

३ – **थकेमन :** एक धर्मके विश्वासीमें हर क़िस्मकी ताकत जागी हुई होती है. बरदाश्त बेहद होती है, हिम्मतका वह पुतला होता है. आदतोंकी बेलको जड़से उखाड़ फेंकनेकी ओर उसकी निगाह रहती है. वैसा कर डालनेकी उसमें योग्यता भी होती है. थकेमनमें यह सब ताकतें थककर बैठ गई होती हैं. देहकी थकान दूर होती है खुराक और आराम से. मनकी थकान दूर होती है विश्वाससे. थकेमन किसी भी धर्मपर ईमान ले आए तो तर जायगा. धर्मके विश्वासमें एक ऐब भी रहता है, वह बुराईकी ओरभी झुक सकता है. जैसे मूर्ति-पूजा, नरमेध-यज्ञ और धर्म-युद्धकी ओर झुक सकता है. यहां धर्म-युद्धसे मतलब है अन्य धर्मियोंसे लड़ना. अन्य धर्मियोंसे अन्य धर्मीके नाते लड़ना बुराई है. धार्मिक विश्वासकी जड़में कट्टरता रहती है. इसलिए कट्टरताका अन्त करना उसका धर्म बन जाता है और सैकड़ों झूठे रिवाज उसका कर्त्तव्य बन जाते हैं. असलमें धार्मिक विश्वासको अपनाकर यानी जन्मसे पाकर आदमी बुद्धिसे काम लेना छोड़ देता है. नीतिको एक ओर रख देता है और केवल विश्वासके बलपर अपनी ताकतोंसे काम लेना शुरू कर देता है. विश्वास कैसा भी क्यों न हो, ताकतोंको जगाता और काममें लगाता है. ताकतें ढा भी सकती हैं और बना भी सकती हैं. अन्ध-विश्वासी ढानेमें भी लगाए जा सकते हैं और बनानेमें भी. पर सच्चे विश्वासी सदा बनानेमें ही लगते हैं, ढाते वे भी हैं, पर उसे बुरा नहीं कहा जा सकता क्योंकि वे बनानेके लिए ही ढाते हैं. दर्जीके कपड़े फाड़ने और बजाजके कपड़े फाड़नेको एक नाम नहीं दिया जा सकता. जानना तो सिर्फ इतना ही है कि सच्चा विश्वास हमेशा ताकतोंको ठीक काममें

लगानेके लिए आजाद छोड़ देता है. थकी ताकतोंमें दम आ जाता है और विश्वासके रहते वह कभी नहीं थकतीं.

भीतरकी ताकतोंकी थकान है क्या चीज ? ताकतें थकती थकाती नहीं. यह तो आलंकारिक भाषा है. असलमें ज्ञानमें घमण्ड जागनेका नाम ही है निकम्मापन. ज्ञान घमण्डी हुआ और उसने परीक्षण करने छोड़े. मनको नपुंसक कहा जाता है. वह सोचता ही सोचता है, करता नहीं. घमण्डी ज्ञान नपुंसक हो जाता है. वह जानेगा ही जानेगा, करेगा नहीं. ज्ञानमें घमण्ड जागता क्यों है ? ज्ञान किसीसे कम नहीं रहना चाहता. विश्वासको अपनाकर उसका नम्बर दूसरा हो जाता है. विश्वास का दर्जा सब धर्मोंसे ऊंचा माना है. ज्ञानको विश्वासकी यह उच्चता नहीं सुहाती. इसलिए वह अपना नुकसान कर लेता है और जिन्दगीको मिट्टी बना देता है. सारे अदमियोंका यही हाल है. विश्वास करनेके लिए अपनेसे बड़ी चीज चाहिए. वह उन्हें मिलती नहीं. नहीं मिलती तो गढ़ते हैं. यों तरह-तरहके देवता खड़े हो जाते हैं. एकको तो वे फायदा पहुंचा जाते हैं, पर आगेके समाजको वे फिर गढ़ेमें पटक देते हैं. हां, तो अब यह पता चल गया कि विश्वास पैदा करनेके लिए सिर्फ यह सवाल हल करना है कि हम किससे दूसरे नम्बरपर खड़ें हों? जैनो और कुछ इने-गिनेको छोड़कर ईश्वर खुदासे दूसरे नम्बरपर खड़े होनेमें कोई अपनी शानमें बट्टा लगता नहीं मानता. पर उस ईश्वरमें बिना समझे विश्वास लानेसे काम न चलेगा. तुम्हारी ताकतें तो सच्चे-पक्के विश्वास से ही अपनी थकान उतारेंगीं. वह विश्वास वही होगा, जिसको तुमने अपने आप अपनाया है, जिसको तुम्हारे मनने सिर झुकाया है और जिसको तुम्हारे ज्ञानने गुरु माना है; फिर वह सातवें आसमानवाला हो, पत्थरका हो, हाड़-मांसका हो, ख्याली हो, या जो भी हो.

थकती देह नहीं, थकता है मन. हम तांगेमें एक घण्टेमें थक जाते हैं, रेलमें बीस-पच्चीस घण्टेमें थकते हैं, जहाजमें हफ्ते दो हफ्ते लग जाते हैं. हमारा मन कहता है कि हमको तपेदिक हो गया है. हम डाक्टर

के पास जाते हैं. वह कहता है कि दिक नहीं है, हम अच्छे हो जाते हैं. थके मनको विश्वासका डाक्टर ही अच्छा करेगा. जो यह कहता है— मैं नहीं पढ़ सकता, माताकी भी यही राय है, भाई-बन्धु भी ऐसा ही मानते हैं, उस्ताद भी हार चुके हैं; उसको विश्वासका अध्यापक ही पढ़ा सकेगा. और कोई नहीं.

हे थकेमनो! तुमको जिन्दगी मिली है. ताकतका भरा बक्स मिला है. उसमें वहमका ताला न लगाओ और अगर लगा ही बैठे हो तो विश्वास की कुंजीसे खोल लो. सारी ताकतें निकल पड़ेंगी और जिस कामके लिए तुम्हारा जन्म हुआ है, वह काम भी हो जाएगा.

४—**ढकेमन :** कुछ ऐसे भी हैं, जिनका मन निराशाओंसे इतना ढक गया है कि उनको मनके होनेमें भी सन्देह होने लगता है. न अब कोई उनका दोस्त है और न रिश्तेदार. प्यार, मुहब्बत, मित्रता, उनके लिए कितनी ही जरूरी क्यों न हो, उनमें दम नहीं डाल सकती, मनका पर्दा वे हटा नहीं सकतीं. हमारे घरोंकी शान सिर्फ प्रेम, प्यारसे बनी हुई है, ऐसा समझना भूल है. प्रेमको भी आधार चाहिए. निराधार प्रेम घर की शानको कायम नहीं रख सकता. क्यों कभी घरकी एक बुढ़ियाके मर जानेपर घरका हाल बेहाल हो जाता है ? क्यों सबका प्रेम बैरका रूप ले बैठता है ? बात साफ है. जिसको सबपर विश्वास था, वह चल बसी. उसी विश्वासके आधारपर तो प्रेम नए-नए नाच दिखाया करता था. सहारा निकलनेसे वह धर्मसे गिर गया और खुश रखनेवाला नाच खत्म हो गया. आपसी मेल-मिलापकी जड़ है ही विश्वास. सेवा-भक्ति तो विश्वासकी दासियां हैं. प्यार-मुहब्बत उसीके नचाए नाचते हैं. यह सब विश्वासकी ही लीला है.

उदासीके किलेको तोड़नेमें आमतौरसे प्रेमका हाथ पाया जाता है, पर बात वैसी है नहीं. स्फूर्तिके प्रकाशमें भी उसका कोई भाग नहीं होता, पर माना जाता है. सफलताकी जड़में सदा रहनेवाला विश्वास ही है, जो रोमांच, गठ-बन्धन, गृहस्थ-जीवन और दोस्तीको सफल बनाता है.

कोई प्रेमी अपनी प्रेमिकाको प्यारकर आनन्द नहीं पा सकता, अगर उसको उसपर विश्वास न हो. परमेश्वर प्रेमकी नाव जो भवसागरसे लोगोंको पार उतार देती है, विश्वास धातुसे बनी हुई है. उस सागरमें उस धातुके सिवाय कोई चीज तरती ही नहीं. बाल्मीकिके राम जब सीताका प्रेमालिंगन करते थे तब दो देह नहीं मिलती थीं, दो आत्माएं भेंट करती थीं और रामपर उस समय एक रौब छा जाता था, जो उस प्रेमको धर्ममें बदल देता था. रामके मनने कभी एक क्षणके लिए भी सीतापर अविश्वास नहीं किया. सीता-रामके प्रेमकी घटनाओंको तराजू में तोलना, उन दोनोंके साथ अन्याय करना है. सीताको सीताकी रायमें रामपर रामसे हजार गुना विश्वास था. रामको रामकी रायमें सीता पर सीतासे हजार गुना विश्वास था. अपने-अपने विश्वासकी कोई सीमा ही नहीं, वह नापा-तोला नहीं जा सकता.

जिस पर मैं विश्वास करता हूं वह मेरा पूरक होता है. उसके बिना मैं अधूरा. मैं समाजपर अधूरा विश्वासकर 'मैं' नहीं रह जाता. 'हम' बन जाता हूं. हिन्दुस्तानी भले ही अकेले घूमता हो, पर एक रूसी, एक अंग्रेज, और अमेरिकावासी सदा अपने साथ सारे रूस, बरतानिया और अमेरिकाको लेकर घूमता है. वह समाज-विश्वासके बलपर 'मैं' नहीं 'हम' बन गया है. गुरु गोविन्दसिंहका एक शिष्य यूं ही तो सवा लाखकी ताकत रखता माना जाता था.

विश्वासके बिना आदमी अकेला पड़ जाता है. अकेलेमें स्वार्थ फूलने फलने लगता है. स्वार्थीको छिपकर खाने-पीने और रहने-सहनेमें ही सुख मिलने लगता है. सुख सामाजिक गुण है, यह अकेला रहकर अपने को, भोगनेवालेको, काटने लगता है. यूं स्वार्थीका सुख, दुःख बन जाता है. अलग-अलग रहकर उसकी दुनिया ही अलग हो जाती है. उसकी दुनिया सिकुड़ने लगती है. दुनियाके सिकुड़नेसे उसका मन, आत्मा भी सिकुड़ जाते हैं. उनके मनका परदा यूं काला और और भी काला होता जाता है. 'रामके विश्वासीके मनमें राम आ विराजता है' संतोंकी यह

कहावत ठीक ही है. रामको छोड़ो, तुम किसी जीवित आदमीपर विश्वास करके देखो. उसका बल तुममें आजाएगा,तुम अपनेको कहीं बलवान जंचने लगोगे. अंधविश्वासी पुलिसका सिपाही जब अपनेमें सौकी ताकत अनुभव करने लगता है और सौकी भीड़में घुस जाता है, तब सच्चा विश्वासी क्यों न सौकी ताकत अनुभव करने लगेगा और क्यों न हजार की भीड़में बेधड़क घुस सकेगा ? विश्वासके इस चमत्कारको मान लेने में दिक्कत कहां है ?

मनको ढक, प्रेमके भूखों, प्रेमका टूक मांगते रहो, मिलना नहीं. तुमको न कोई प्यार करेगा और न कोई दोस्त बनाएगा. विश्वासको जगाओ, उसे कहीं तो जमाओ, और फिर देखो कितने प्यार करनेवाले मिलते हैं. दुनिया है और रहेगी, क्योंकि उसमें विश्वास करनेवाले ह. राम भी रहेगा. दुखी न होओ, अलग-अलग न रहो. निकम्मे न बनो. विश्वासी बनकर सुखी बनो, समाजमें चमको और अपनी ताकतका चमत्कार दिखाओ. विश्वासके सिवा तुम्हारे ढके मनको कोई उघाड़कर न उभार सकेगा.

५—घबराए मन : यह करूं या वह ? दुविधा ! इसका इलाज ? सच्चा विश्वास. तुम्हारा मन हिल रहा है. उसे चाहिए टेक—सहारा. उसका सहारा मत लेना, जिसपर तुम्हें विश्वास न हो. विश्वास खरे सोनेकी तरह आगमें डाला जा सकता है, पर चमक नहीं खो सकता. विश्वासके बलपर सहारा किसीका भी लो, धोखा न होगा.

इस मत-पन्थकी दुनियामे विश्वासकी छीछालेदरसे घबराओ नहीं. इस कीचड़ उगो, उठो और कमलकी तरह खिलो. गन्ध फैलाओ, लोगों को लुभाओ. विश्वासके बलपर यह सब कुछ हो सकेगा. मत-पन्थ छोटी चीज है, धर्म नहीं. सचाई और भलाईकी प्यासको धर्म कहते हैं. उनके प्यासेको धर्मात्मा. महावीर, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद इनका धर्म था, और वह एक था. वे सचाई और भलाईके प्यासे थे. उन्हें अपनी प्यास बुझानेमें विश्वास था और वह बुझी भी. शुरूमें उनके मन भी तुम्हारी

तरह घबराए हुए थे और बे-सहारा थर-थर कांपते थे, पर विश्वासने उनका संतुलनकर दिया और उनको दृढ़ बना दिया.

विश्वासका काम है मनका संतुलन. मन-संतुलनकी यह अकेली दवा है. विश्वास डिगा और मनमें कंपकंपी पैदा हुई. हिलते मन का नाम ही नास्तिक है. हिलता मन और घबराया मन एक बात. घबराहट नरक नहीं तो और क्या है ? ऐसा नास्तिक नरकमें पड़ता है. इस नरकसे निकलना, यानी मनकी घबराहट दूर करना कोरी बुद्धिका काम नहीं. उसकी मददके लिए चाहिए विश्वास. वह पास नहीं तो बुद्धि घबराहट घटानेकी जगह बढ़ाएगी ही.

असलमें घबराहट है क्या ? यही कि सच सच है या झूठ सच ? झूठ फल-फूल रहा है, यों सच लगता है. सब भले यह कहते हैं कि सच फल-फूल रहा है, इससे सच सच है. अब किसको अपनाया जाए ? कोई माने या न माने, जब सबका विश्वास हो रहा है तब दुनिया भी आगे बढ़ रही है. संत कोई ऐसा काम नहीं कर सकते थे, जो दुनियाको बढ़नेसे रोके. उनके कामसे दुनिया आगे बढ़ी, रुकी नहीं और पीछे भी नहीं हटी. उन्होंने सचाई और भलाईको अपनाया. अब यह साफ है कि सचाई और भलाई ही आगे बढ़ानेवाली चीजें हैं. हमें उन्हींपर विश्वासकर दुविधा मिटानी चाहिए और घबराहट दूर करनी चाहिए.

सच्चा विश्वास

तीन

दुनियामें रोगोंका इलाज झाड़-फूंक बहुत पहलेसे है. दवाएं तो बादमें आईं. दवाएं ज्ञानकी उपज मानी जाती हैं और झाड़-फूंक की बुनियाद अज्ञान है, ऐसी लोगोंकी मान्यता है. झाड-फूंक आज भी है और खूब है, पर उसका नाम लोगोंने मेस्मरेजम रख छोड़ा है. मेस-मरके नामपर पड़ा नाम वैज्ञानिक दुनियामें कद्रकी नजरसे देखा जाता है. कहनेका मतलब यह है कि आज भी रोगोंका इलाज बिना दवा-दारूके सिर्फ मनके जरिए विश्वास पैदाकर किया जा रहा है और बहुत अंशोमें सफल भी हो रहा है. झाड़-फूक आज भले ही अनपढ़ लोगोंके हाथमें हो, पर उसके जन्मदाता ऋषि-मुनि थे और वह कितने ज्ञानी-विज्ञानी थे यह वेद, उपनिषद, तत्त्वार्थ सूत्र, अंजाल, कुरान बता रहे हैं. इन बड़ी किताबोंके लिखनेवाले खुद बड़े विश्वासी थे और लोग उनपर पूरा-पूरा विश्वास करते थे. न बीमारोंको दवाकी जरूरत थी और न डाक्टर दवा रखते थे. विश्वासके आधारपर हट्टी-कट्टी देह लिए वे जंगलमें शहरकी तरह रहते थे और शहरोंमें जंगलका आनन्द

हासिल कर लेते थे.

सच्चे विश्वासके जो चमत्कार अबतक बताए गए हैं उनको देखते हुए यह माननेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि हमको देहके स्वास्थ्यसे कहीं ज्यादा मनके स्वास्थ्यकी ओर ध्यान देनेकी जरूरत है. स्वस्थ मनमें ही सच्चा विश्वास जागता और फलता-फूलता है. जो निराश मनको आशाका आश्वासन दे, जो कुछ नही हो सकते उसको सब कुछ हो सकनेमें बदल दे, जो सोई ताकतको जगाकर काममें लगा दे, जो दम घुटते मनके नाक-मुंह खोल दे, जो ढिलमिल यकीनके-यकीनको सीधा खड़ाकर मुस्तैद बना दे और जो मरे मनमें फिरसे जान-फूंक दे, वह विश्वास क्या जिस्मको बीमार रहने दे सकता है ? क्या तुमने इम्तहानका नतीजा सुनकर लोगोंके बुखार उतरते नही सुने देखे ? क्या तुमने दिक़के मरीजोंके गले फेफड़े सच्चे हकीमके एक फ़िकरे 'तुम्हें कोई मर्ज नहीं है' सुनकर अच्छे होते नहीं सुने देखे ? क्या अंधी माओंको अपने वर्षोसे खोए बेटेको फिर पाकर अपनी आखोंमें फिरसे रोशनी पाते नही सुना देखा ? अगर 'हां' तो फिर विश्वासपर शक करनेकी कहां जगह है.

दवाएं जिन्दा रहें, विश्वास उन्हें रोकता नहीं और न उनकी मौत की माला जपता है. वह ऐसे विचारोंसे परे है. पर दवाएं पैदा होते ही हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गई हैं और बेमतलब उसकी दुश्मन बन बैठी हैं. इससे विश्वासका कुछ न बिगड़कर उनका ही नुकसान हुआ है. अगर वे मिलकर काम करतीं तो आज कहीं-की-कहीं पहुंच गई होतीं. दवाएं विश्वासका मूल्य जानती हैं और खूब जानती हैं, पर डाह उस जानकारीको बाहर नहीं आने देता. दवाएं यह नहीं जानती कि उनकी पहुंच देहसे आगे नहीं है और आदमी केवल देहका बना हुआ नहीं है. इलाजके लिहाजसे उसे केवल मनका बना हुआ तो कह भी सकते है, क्यों कि स्वस्थ मन, फोड़े-फुन्सी और खुजली चोटतकको ठीक कर लेता है; पर सिर्फ देहका बना हुआ नहीं कह सकते. मनकी पहुंच सब जगह

है. इससे दवाओंको इन्कार नहीं होना चाहिए. दवाएं विश्वासका नाटक खेलनेके लिए अमीर बीमारके सामने सोने-चांदीके ज़ेवर और जवाहरातके गहने पहनकर आतीं हैं, पर नकल नकल ही है. दवाए असलको नहीं पहुंच सकतीं. नाटक न खेलकर उससे सहयोगकी भीख मांगती, तो उन्हें मिल भी जाती और वे भिखारी बनकर भी राजासे कहीं अधिक आदर पातीं और मनुष्य समाजका, जिसके लिए उन्होंने अवतार लिया था, कहीं अधिक भला कर जातीं.

बड़े-बड़े दवापति अब विश्वासका लोहा मान गए हैं और खुले कहने लगे हैं कि सौमें से पचास असाध्य मरीजोंका मर्ज और सौमें से पिछत्तर रोगसे उठे कमजोरोंकी कमजोरी देहमें न रहकर मनमें रहती है. उनके इलाज दवासे न होकर, विश्वासकी मददसे होने चाहिएं. होडका युग गया, सहयोगका युग है. दवाओं, यदि तुम अपना भला चाहती हो तो मिलकर कार्य करो. अगर तुम हो तो विश्वासके बिना बेजान हो, यदि तुम सागर हो तो उसके बिना बेलहरोंकी हो, यदि तुम मकान हो तो उसके बिना बेदीवारकी हो. तुम जड़ हो क्या इसीलिए जड़ी कहाती हो. जड़का युग हो चुका. अब जड़-चेतनके सहयोगका युग है.

समझदार बीमार कभी खुद भी तय नहीं कर पाता कि बीमारीकी जड़ है कहां? मनमें या देहमें. कभी वह मनको और कभी तनको दोषी मानता है. तबियत उचाट है, मन अशान्त है, भजन-पूजनमें जी नहीं लगता. शायद मन खराब होगा. पर यह हालत तो गर्दनकी गलेकी गांठ (Thyroid gland) खराब होनेसे भी हो सकती है. कुछ समझदार बीमार अपनी देहकी बीमारीको मनके माथे थोपते हैं. मन खराब हो जानेसे भी देह अस्वस्थ हो जाती है. डाक्टरोंने बड़ी जांचके बाद यह साबित कर दिया है कि पेटका फोड़ा सौमें से नब्बे बीमारोंके पेटमें न होकर मनमें शुरू होता है. गहरी चिन्ता आमतौरसे उसका सबब होती है.

कुछ आदमी ऐसे मिलेंगे जिनको गन्दी चीज देखकर उछाल आ

जाता है. उछाल पहले मनको आया, पीछे पेटको. मन थक जानेपर ताजा देह भी थकान मानने लगती है. बहुत खुशीमें और बहुत रंजमें भूख कम हो जाती है. आए दिनकी डाक्टरोंकी खोज यह बताती है कि बीमारियां सबकी सब न भी हों, पर ज़्यादा तो ऐसी होती हैं कि जिनमें देहका कोई कसूर नहीं होता.

एक अंग्रेज लेखकने तो आजकलके विशेषज्ञोंका खूब मजाक उडाया है और वह बिल्कुल ठीक कहता मालूम होता है. भला यह भी कोई बात है कि नाकके डाक्टर, कानके डाक्टर, दांतके डाक्टर, आंखके डाक्टर और फिर आएंगे अंगूठेके डाक्टर, बीचकी उंगलीके डाक्टर, कटी उंगलीके डाक्टर, और एक-एक थैली (Cell) के डाक्टर! यहां देह और मनके एक साथ इलाजकी बात सोची जा रही है, वे देहके भी टुकड़े कर डाल रहे हैं ! दवाएं उतरीं थीं मैदानमें यह दावा लेकर कि बीमारके रोगको अच्छाकर हम समूचे आदमीको अच्छा बना देंगी, पर अब तो वे एक अंग को अच्छाकर बीमारी दूसरी ओर डाल देती हैं. कुनेन बुख़ार खोकर बेहाल बनाएगी, अफ़ीमका इनजेक्शन दर्द मिटाकर सारी देहको कमजोर करेगा. दवाएं एक और नया नाटक खेल रही हैं. वे होम्योपैथीका जामा पहनकर डरके बुख़ारको, चोटके बुख़ारको और गुस्सेके बुख़ारको भी मानने लगी हैं. अब वे बुखारका इलाज न कर, डर, चोट और गुस्सेका इलाज करती हैं ! दवाएं हैं, अधूरा है इनका विश्वास. जो सौ वर्ष जीना चाहे, जो सौ वर्षतक अपने रूप-रंग सही हालतमें रखना चाहे, वह अपने मनको इतना मजबूत बनाए कि मालिक बन बैठे डरका, फिक्रका, रंजका, गुस्सेका, शर्मका, क़ुसूरका, घमण्डका और सबसे ज़्यादा कामका.

जीवन-राज्यका अधिपति कोई हो, प्रधान मन्त्री विश्वासको बनाए बिना यह राज्य ठीक नहीं चलता. डाक्टर मन्त्रीकी सलाहके बिना राज्य के कामोंमें सीधा दख़ल न दे. अब जब यह मान लिया गया है कि तपे-दिकके कीड़े सभीमें मौजूद हैं और यह कि वे अकेले ही दिक़की बीमारी

पैदा नहीं करते, बल्कि मानसिक व्यथाएं इनमें एक जरूरी कारण हुआ करती हैं. तब विश्वास और दवाके मिलकर काम करनेमें क्या दिक्कत हो सकती है और दवाओंको क्यों इन्कार हो सकता है ? निमोनिया और दमेके बारेमें भी मनका बहुत हाथ माना जाने लगा है. मतलब यह कि अब विश्वासको ऊंचा स्थान दिए बिना जीवन-राज्यका इन्त-जाम ठीक न हो सकेगा.

विश्वास, बेशक सच्चा विश्वास देहको स्वस्थ रखनेके लिए जरूरी है और बिल्कुल काफी है.

अंध विश्वास

चार

विश्वास बहुत बड़ी चीज है. इसकी पहुंच बहुत दूरतक है. आज-कलके छः बड़े-बड़े धर्म और अनेकों छोटे-छोटे धर्म विश्वासके पेटमें समा सकते हैं. धर्म और विश्वास हैं तो एक चीज, पर आजकल धर्मका जो मतलब लिया जाता है उससे यही कहना पड़ता है कि हरेक धर्म एक विशेष विश्वास है और यह विशेष विश्वासवाला घर्म पैदा होते ही हम सबके साथ लग लेता है. औरोंकी नजरोंमें हम उसी विशेष विश्वासके विश्वासी माने जाते हैं ; पर वैसा होता नहीं है. हमारा पैदायशी विश्वास कुछ, और हमारा कमाया हुआ विश्वास कुछ और ही होता है. नतीजा यह कि हम अपने कामोंसे उनके विश्वासके विश्वासी नहीं जंचते, जिसको हम लोगोंके सामने अपना होनेका दावा करनेके अभ्यस्त हो गए हैं. अपनेको हिन्दू, जैन, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान, सिख कह बैठना इतनी मामूली बात हो गई है जैसे कोई भी गीदड़ जैसा डरपोक अपना नाम होनेकी वजहसे अपनेको बहादुर सिंह बता बैठता है. नामकी तरहसे आजका धर्म भी कुछ अर्थ नहीं रखता. कोई अपनेको मुसलमान कहकर

यह हरगिज़ नहीं कहता कि वह सबको,खु दाके बन्दे होनेके नाते, भाई समझता है और यह कि वह बड़ा अमन-पसन्द है. जैन कहकर कोई यह नहीं कहना चाहता कि उसने अपने मनको जीत लिया है और ईसाई कहकर तो शायद यही कहना चाहता है कि उसने प्रेमको कुचल डाला है और वह ईसाइयों तकको तलवारके घाट उतार सकता है! फिर औरोंकी तो बात ही क्या.

विशेष विश्वास यानी धर्म बपौतीमें तो मिलता ही है, दोस्तोंसे उधार भी मांगा जा सकता है. सबसे आसान तरीका यह है कि आप कह भर दीजिए कि हम अमुक धर्मके विश्वासी हैं कि आप उस धर्मके हो गए. इस तरह पाए हुए विश्वास दुनियादारीमें बड़े कामके साबित होते हैं. पर कभी-कभी तो वे निरा बोझा बन बैठते हैं और इतना भारी कि जिसके नीचे दब मरनेका डर रहता है. हो सकता है कि किसीको किस्मतसे अच्छे रिश्तेदार मिल जाएं और उसकी जिन्दगी कुछ सुखी हो जाए. पर धर्म तो आजकल सदा ही ऐसा मिलता है जो उसकी जानको कष्टमें डाल देता है, क्योंकि वे जिन्दगीके माने ही अजीब लगाता है. अच्छेसे अच्छा, ऊंचेसे ऊंचा धर्म भी हमारी जिन्दगीको निकम्मा और दुखी बना सकता है, क्योंकि हम जानदारोंपर धर्मोंका, लोगोंका और विचारोंका असर पड़ता है और हम कुछ-के-कुछ हो जाते हैं. पर धर्म तो बेजान किताबोंमें अछूता ही रह जाता है और जो जितना ज्यादा अछूता है उतना ही वह अपनेको बड़ा और जोरदार मानता है.

सब धर्म कई-कई बच्चोंवाले अंडे हैं और ऐसे अंडे जो फूटना नहीं चाहते. अंडोंके अन्दर रहनेवाला बच्चा बिना अंडा फोड़े न बाहर आ सकता है, न खुली हवा खा सकता है और न बड़ा होकर औरोंकी तरह अपना जीवन कामका बना सकता है. अंडा सिर्फ इसलिए होता है कि वह तोतेको तोता और मैनाको मैना बनने दे. उसके बाद उसे टूटना ही चाहिए; क्योंकि तोता और मैनाका असली धर्म उसके अन्दर रहता है, जो उसे आगे चलकर राम-राम कहना या आदमीकी तरह बोलना

सिखाता है. एक धर्ममें पैदा हुए सब आदमी एक काम नहीं करते यानी एक धर्मका पालन नहीं करते; क्योंकि उनका एक विश्वास नहीं होता. एक विश्वास होना व्यक्तित्वकी सुन्दरताको ही खो देना है. यह तो हरेक को अलग-अलग ही तय करना होगा कि वह कहां, क्यों, किसलिए पैदा हुआ है. हम एक आदमीके साथ दस वर्ष रहकर बिना बदले नहीं रह पाते, फिर जिन्दगीके साथ सौ वर्ष रहकर कैसे नहीं बदलेंगे ? हमारी जिन्दगी तो उस दुनियासे घिरी हुई नही है, जिस दुनियासे हमारे उन बुजुर्गोकी घिरी थी, जिनकी किताबोंके आधारपर हमें किसी विशेष धर्म-वाला होनेका मौका मिला है. हम चाहें या न चाहें हम बदल रहे हैं. बदलना हमारी खासियत है. जीवनके बारेमें यही और एक यही विश्वास अटल और अमर है कि हम बदल रहे हैं. हमारा मन और हमारी चारों ओरकी दुनियाकी सारी चीजें बदल रही हैं. शब्दोंके अर्थ बदलते रहते हैं. फिर शब्दोंसे बनी धर्म पुस्तकें न बदलें तो उन्हें कोई खोल-कर भी न पढ़े. शादी हो जानेपर बहन पत्नी बन जाती है और वधू बन जानेपर वही पत्नी मां बन जाती है. धर्म-ग्रन्थ भी खूब बदलते हैं.

बदलना और बदले जाना दो अलग राग हैं. एक आजाद, दूसरा गुलाम. बदलनेकी गति बदले जानेसे कहीं तेज होती है. विश्वाससे बदले जानेपर बदलाव पर अधिकार हो जाता है.

विश्वाससे विश्वासतक पहुंचा जाता है. वहां पहुंचते ही अन्ध-विश्वास हिल जाते हैं. हालत कुछ-की-कुछ हो जाती है. जिनको हम सच्चे विश्वास माने बैठे थे वे थोथे जंचने लगते हैं. यह अवसर खोना नहीं चाहिए. बारबार ऐसे अवसर नहीं आया करते. कर्मयोगका अव-सर आदमीको सच्चा आदमी बनानेको मिलता है और कभी-कभी ही मिलता है.

हर साल लाखों इस दुनियासे कूच करते हैं. वे दुनियाको और उसमें रहनेवालोंको छोड़ जाते हैं. क्या तुम भी इसी तरह कूच करना चाहते हो ? विश्वासके बिना तो यही होता है. विश्वास असलमें अन्ध

विश्वासके भोलेपनको समझ लेता है. अन्ध-विश्वास अपने भोलेपनके सच्चेपनसे उन बातोंको सिद्ध करनेकी तदबीर सोचा करता है जो उसके मनपर बचपनमें जम गई है या जमा दी गई है. इस बातकी सचाईकी जांच अपने मनको टटोलनेसे तो हो ही सकती है. पर किसी दर्शनके साथ-साथ उस दर्शनके कर्ताकी जिन्दगी पढ़नेसे भी हो सकती है. दर्शन-कारकी जीवनी ही न मिले तब मजबूरी. यों न दर्शन बढ़ रहा है, न दर्शनकार बढ़ रहे हैं. वह केवल मोटा होता जा रहा है और यों बेकार. विश्वास सिद्धान्तकी चीज नहीं, वह हमारे रोजके कामोंसे जुड़ा हुआ है. हमारे मनोभावोंके बाद किए कामोंमें उसकी जड़ है और वह सदा हमारे मनोभावोंपर अपना प्रभाव डालता रहता है.

दर्शन, बुद्धिकी देन-सा जंचता है. असलमे हमारा मन अन्दर किस तरह काम करता है, वह उसकी कहानी है. बौद्ध या जैन-दर्शन, बुद्धि-मानोने लिखे हैं; बुद्ध और महावीरने नहीं. वे दोनों तो उन दर्शनोंमें जी रहे थे, वे स्वयं दर्शन थे. उन्हें देखकर वे दर्शन जितनी जल्दी और जितने जल्द समझमें आते थे, वे आज उतनी ही देरमें और कहीं बुरी तरह सौ पण्डितोंकी मददसे गलेमें ही आकर रह जाते हैं. दर्शन मोटे होते रहे. पण्डितों और प्रकाशकोंका पेट भी भरते रहे. पर जब उन्होंने किसी एककी या समाजके जीवनकी बागडोर हाथमें ली तब मामला भयानक हो गया. इस भयानक कामको सच्चा विश्वास ही रोक सकता है. कितना ही होशियार कहानी-लेखक क्यों न हो, वह एक कहानी खड़ी नहीं कर सकता, अगर उसे एक पात्र ऐसा न मिले जिसने अपनी जिन्दगी एक विश्वासके साथ न बिताई हो. कालिदासके विश्वासकी खुराक पाकर एक साधारण घटना शकुन्तला नाटक बन बैठती है. रामा-यणमें जितना तुलसीका विश्वास चमकता है उतनी रामकी कथा नहीं.

सच्चे विश्वासके न होनेसे या उसके डिग जानेसे बड़े बुरे नतीजे होते हैं. व्यक्तिकी जिन्दगी तो मिट्टीमें मिल जाती है. ऐसा क्यों होता है ? इसके कारण आसानीसे समझमें आ सकते हैं. विश्वास उठ

जानेसे हमारे वे सब अनुभव, जो विश्वासकी हालतमें हुए थे, बेकार हो जाते हैं. विश्वाससे सम्बन्ध रखनेवाला सारा क्षेत्र हमारे हाथोंसे निकल जाता है. वे शक्तियां भी बेकार हो जाती हैं, जो इसीकी चलाई चलती थीं. हमारे दैहिक अनुभव यानी जड़-सम्बन्धी अनुभव तो सजग हो जाते हैं, पर आध्यात्मिक अनुभव सब-के-सब सो जाते हैं और हमारे लिए तो बेकार ही हो जाते हैं. जिसकी वजहसे आदमी सबसे श्रेष्ठ प्राणी समझा जाता है, वह चीज अब उसकी दुनियामें कहीं ठीक ही नहीं बैठती.

जिन्दगीकी तरफसे रुख बदलनेसे सब कुछ ही बदल जाता है. आदमीकी कहानी, रुपए, ईंट या पोस्ट-कार्डकी कहानी जैसी बन जाती है. आदमीके अन्दरकी सबसे अच्छी चीजका कहीं मेल ही नहीं बैठ पाता. आत्मा साथ देना भी चाहे तो नहीं दे सकता. जिन्दगीके दो टुकड़े हो जाते हैं. मनकी क्या हालत होती है, उसे ठीक-ठीक विश्वासी ही जानता है.

अविश्वासी समाजमें जगह बनानेके लिए नीतिकी शरण लेता है. नीति धीरे-धीरे पक्का जड़वादी बना देती है. जड़वादी होनेपर भी बुद्धिके साथ-साथ मनोभाव भी रह जाते हैं. अब मन दुविधामें पड़ जाता है. दुविधा है, क्या होना चाहिए ? वह क्या है ? आदमीको होना तो चाहिए देवता; पर है वह पशु. मानव-समाज कुटुम्बकी तरह होना चाहिए, पर है वह साथियोंका जत्था. जय होनी चाहिए नीतिकी, पर हो रही है मशीनकी. (विज्ञानमें वह आदमीको मशीन ही तो पाता है) उसकी समझमें जान नहीं है ; पर वह खुद जानदार है. उसकी समझमें बुद्धि नहीं है, पर वह बुद्धिमान है. उसकी समझमें नीति नहीं है, पर वह नीतिमान है. बिना विश्वासके यह हालत होगी ही. अविश्वासी बनकर अपनी धुनमें अगर तुम किसीसे टकरा गए और उसने पूछा कि 'तुम कौन हो ?' तो जवाब यही देना होगा, 'मैं कौन हूं ? यह तो मैं भी नहीं जानता.'

विश्वास का चमत्कार

पांच

'मैं यह हूं' कि जानकारीका नाम ही विश्वास है. सब धर्मों, दर्शन-शास्त्रोंकी मंशा ही यही है कि 'मैं क्या हूं?का हाल बताएं. इस दृष्टिसे ही दर्शन-शास्त्र दुनियाके अदबमें अपनी जगह बनाते हैं. मनको स्वस्थ बनाए रखनेमें इसलिए विश्वास अक्सीर माना जाता है. विश्वास हमें परिचय करा देता है. विश्वासहीन ही नास्तिक नाम पाता है. नास्तिक अनन्त आकाशमें बिखरे जड़ परमाणुओंकी खोजमें लगकर अपनी आत्मा को ठण्डा कर डालता है. वह इस ओर भी ध्यान नहीं देता कि इन परमाणुओंका ज्ञान किसकी मददसे हो रहा है. कोई आदमी अपनेको पहचाने बिना अपनी जिन्दगीसे पूरा लाभ नहीं उठा सकता और न वह उस फर्जको पूरा कर सकता है जिसको पूरा करनेके लिए वह पैदा हुआ है.

आत्माभिमान बनाए रखनेके लिए आदमी न मालूम क्या-क्या करता है और उसे करना भी चाहिए. यह बुरी बात तो है ही नहीं, जरूरी है. अगर किसी आदमीको अपने बारेमें यह भी पता चले कि वह एक

मामूली आत्मा है, तब भी उसके लिए ऊंचे विचारोंमें मस्त रहना जरूरी है. ऊंचे विचारोंके बलपर ही तो वह अपने न-कुछसे बहुत-कुछ काम ले सकेगा. पत्थरमें जिस तरह अच्छी, बुरी, मामूली, तीनों तरहकी मूर्ति मौजूद रहती हैं, और वह अच्छे, बुरे, मामूली कलाकारोंके हाथों जाहिर होती हैं. ठीक इसी तरह हर आत्मामें अच्छे, बुरे, मामूली काम करनेकी क़ाबलियत रहती है, पर वह अच्छे, बुरे, मामूली विश्वासमें ही काममें आती है. जिससे जो कुछ हो जाता है उसको आत्मा ठीक बताकर अपनी तसल्ली करता है. उसकी जांचनेकी कसौटी या तराजू वही होती है, जो परिस्थितियोंने उसे बनाकर दे दी है. इसीलिए तो इस बातपर जोर दिया जा रहा कि विचार हमेशा ऊंचे रखने चाहिएं. ऊंचे विचारोंसे परिस्थितियोंका असर अगर बिल्कुल नष्ट नहीं होता तो कम तो हो ही जाता है.

इच्छाएं सबमें हैं, सब उनको पूरा भी करना चाहते हैं. ऊंचे विचारवालों और नीचे विचारवालोंमें एक ही इच्छाके पूरा करनेमें अन्तर रहेगा. मान लो, दोनोंमें लड्डू खानेकी इच्छा पैदा हुई. यह भी मान लो कि दोनोंके पास पैसा नहीं है. ऐसी हालतमें नीचे विचारवाला चोरीकर अपनी इच्छा पूरी करेगा और दूसरी मजदूरीकर या साधारण आत्मा है तो भीख मांगकर. भीख मांगना चोरीसे नीच काम है या नहीं इस बातपर दो राय हो सकती हैं. पर यह इस लेखका विषय न होनेसे छोड़ा जाता है. 'मैं कौन हूं' यह जाननेकी इच्छा भी इच्छा है और इसके जवाब भी अलग-अलग कई हो सकते हैं. हर जवाबमें जवाब देनेवालेके दर्शनका निचोड़ रहेगा. वह जवाब ही विश्वास बनकर आगेकी राह दिखानेमें काम आएगा. आदमीके अल्लाहकी शक्लवाला बने होनेमें इतनी ही सचाई है, जितनी कि खाकका पुतला होनेमें. आदमी पञ्चभूतका भी है और अजर-अमर आत्माका भी. वह क्या नहीं है? परमात्मा और आत्मा भी. हम कहां तक ऊंचे जा सकते हैं, यह अभी तय नहीं हो सका. आजकल ऊंचे जानेकी हद नहीं. सच्चा फिर क्यों न विचार ऊंचे रखे और क्यों न अपनी इच्छाओंको उसीके मुताबिक पूरा किया करे.

अपनेको तुच्छ मानकर ऊंचा जीवन बितानेमें तुम टोटेमें रहोगे. इस तरीक़ेसे तुम्हारी नाव किनारे न लग पाएगी, बीचमें ही डगमगाकर भंवर में जा फंसेगी. धर्म या धर्मोंमें चाहे कितनी ही कमियां क्यों न हों, एक जबरदस्त गुण भी है और वह अकेला ही सब कमियोंकी ओर किसीकी नजर नहीं जाने देता. वह गुण है, यह आदमी अजर-अमर आत्मा है, मिट्टीका पुतला नहीं. मनुष्य खुदाका अंश है, हड्डी-चमड़ेकी मशीन नहीं. यह नहीं कि कुछ चीज मिलकर जिस्म बन गया और फिर उसमें मनका किल्ला फूट आया और फिर साहस आनेपर आदमी कहलाने लगा. धर्म आदमीकी जड़ अनादि अनन्तमें जमा देता है और उसे सदाके लिए सुरक्षित कर देता है. धर्म आदमीमें परमात्मा होनेका विश्वास करा देता है. सब बड़े-बड़े धर्मोंके 'मै क्या हूं?' के जवाब सुनकर तबियत फड़क उठती है. तभी तो बचपनसे विज्ञानमें लगे आदमी बड़ी जल्दी धर्मको स्वीकार करते हैं. मेरी रायमें सब धर्मोंका निचोड़ यही है कि विश्वाससे आदमी बदला जा सकता है,

हम वही हैं जो अपनेको माने हुए हैं. अवतार हमारी मान्यताको बदलकर हमें कुछ-का-कुछ बना देते हैं. जो विश्वास अवतार हममें पैदा करते हैं, क्या वह हम अपने आप अपनेमें पैदा नहीं कर सकते ? क्यों नहीं कर सकते ? जरूर कर सकते हैं. कैसे ? दो तरीकोंसे विवेक से और त्यागसे. विश्वासके दो पहलू होनेसे यह दोनों एक ही हैं. कहनेके लिए दो हैं. जीवनके तूफानमें डगमगाता आदमी अगर अपने पांव जमाना चाहता है तो आंखें खुली रक्खे और उन्हीं गुणोंको अपनाए जो आदमीके अपनाए जाने लायक़ हैं. उन्हीं उद्देश्योंकी ओर दौड़े जिनतक पहुंचकर उसकी आत्मा खुशीका भोजन पाएगी अपना सबसे सच्चा, सबसे बलवान्, सबसे ज्ञानवान्, वही मिलेगा. आदमीको सम्पूर्ण बननेके लिए विवेकके दियेको लेकर भले-बुरे गुणोंकी तमीज करनी ही होगी. उसमेंसे एकको पकड़कर बैठना ही होगा. पकड़ते ही त्याग शुरू हो जाएगा. सचको अपनाकर झूठ छोड़ना ही होगा. ऊंचा डण्डा पकड़कर

नीचेका छूट ही जाएगा. चढ़नेका तरीक़ा ही यही है. 'हां हूं' का दूसरा पहलू 'नहीं हूं' है ही.

विवेक और त्याग न अपने आप कभी पैदा हुए, न होते हैं और न होंगे. यह ख़ासियतें अलग कहीं मिलती ही नहीं. यह तो विश्वासमें विश्वास करने वालोंको ही मिलती हैं. किसीमें विश्वास किए बिना ये दोनों तुम्हारे हाथ न लगेंगी. विश्वासके बिना तुम ऐसे गिरोगे कि हजारों घोड़ोंकी ताक़तवाला लोहेका घोड़ा भी तुम्हें न उठा सकेगा.

मरते आए हो, मर रहे हो, मरते रहोगे, यह सिलसिला तो न रुकेगा. हां, कुत्तोंकी मौत मरना रुक सकता है और वह विश्वाससे.

मानना शुरूकर दो कि तुम हो, आजाद हो, जो और कर रहे हैं वह कर सकते हो, और ज़्यादा भी कर सकते हो.

सच्चे सुख का सार

••

छः

आश्रम (ब्रह्मचर्याश्रम–हस्तिनापुर) का सर्वेसर्वा होनेपर भी अनेक बन्धनोंमें जकड़े होनेसे मुझे अपनी जानसे प्यारे ब्रह्मचारियोंको वह सिखाना पडता था और सीखने देने पड़ता था, जिसे मे जीसे नहीं चाहता था. मेरे अध्यापकोंमें एकसे ज्यादा ऐसे थे, जिन्हें मेरी तरह उसके सिखानेमें दुःख होता था जिसे वे ठीक नहीं समझते थे. उस तकलीफने समाज-सेवाके सम्बन्धमे मेरे मनमें एक जबर्दस्त क्रान्ति पैदाकर दी और मुझे साफ-साफ दिखाई देने लगा कि समाज-सेवा और समाज-दासत्व दो अलग-अलग चीजें है. समाज-सेवासे समाज ऊँचा उठता है और समाज दासत्वसे समाजका पतन होता है. आत्म-विकास, आत्म-प्रकाश, मौलिकता और नवसर्जनसे समाज-सेवा होती है. लीक-लीक चलनेसे समाजकी दासता हो सकती है, सेवा नहीं. व्यक्तिके सुखमें ही समाजका सुखहै. समा जके सुखमें व्यक्तिका सुख नहीं और समाजका भी नहीं. आज जिस सुखको सुख मानकर समाज सुखी हो रहा है, वह सुख नहीं, सुखाभास है, सुखकी छाया है, झूठा सुख है. सुख क्या है ? वह कैसे मिलेगा ? समाज सुखी

कैसे होगा ? यह जान लेना ही समाज-सेवा है. इसलिए उसीपर कह-सुन लूं और इस नाते लिखकर भी थोड़ी समाज-सेवा कर लूं.

खेती-युगमें दुख रहा तो रहा, मशीन-युगमें क्यों ? खानेके लिए बिस्कुटके कारखाने, पहननेके लिए कपड़ेकी मिलें, सैर-सपाटेके लिए मोटर-रेलें, हवाई जहाज; बीमारीसे बचनेके लिए पेटेंट दवाएं, बूढ़ेसे जवान बनानेके लिए ग्लेंड-चिकित्सा; कानोंके लिए रेडियो, आंखोंके लिए सिनेमा, नाकके लिए सस्ते सेंट; जीभके लिए चाकलेट, लाइमजूस, क्रीम; देहके लिए मुलायम गद्दे; यहांतककी मनके लिए भी किसी बातका टोटा नहीं—गुदगुदानेवाली कहानियां, हंसानेवाले निबन्ध, अचरजमें डालने वाली जासूसी कहानियां, रुलानेवाले उपन्यास, उभारनेवाली वक्तृताएं, सभी कुछ तो हैं.

रुपया—?

रुपयेका क्या टोटा. उन्तीस रुपये कुछ आनेमें एक लाखके रुपये वाले नोट तय्यार हो जाते हैं और वे उन्तीस रुपये भी कागजके हों तो काम चल सकता है ! सरकार बाजीगरकी तरह घर-घरमें अगर चाहे तो रुपयोंका ढेर लगा सकती है. बाजीगरकी हाथकी सफाईसे सरकार की सफाई कई-गुनी बढ़ी-चढ़ी है.

मतलब यह कि यह युग खपतसे कहीं ज्यादा पैदावारका युग है. सुखकी बाढ़का युग है, चीजोंकी भरमारका युग है; जी दुखानेका नहीं, आंसू बहानेका नहीं, रोने-चिल्लानेका नहीं.

हैं! फिर यह कौन रोता है ? क्यों रोता है ? कैसे रोता है ? रोनेका नाटक तो नहीं करता ? अगर सचमुच रोता है तो बिस्कुट, कपड़े और रुपयोंकी बाढ़में डूबकर दम घुटनेसे ही रोता होगा.

सुख मोटा होकर ही कामका हो सके, यह नहीं. वह बढ़िया भी होना चाहिए. हलवा गालियोंके साथ मीठा नहीं लगता. मुफ्तमें पाए ओवरकोटसे जाड़ा नहीं जाता. बे-पैसे की सवारीमें मजा नहीं आता. सुखका सुख भोगनेकी ताकत विदेशी राज्यने रगड़ दी, विदेशी व्यापार

ने पकड़ ली, विदेशी तालीमने जकड़ दी, विदेशी वेशभूषासे लजा गई और विदेशी बोलीसे मुरझा गई.

खानेका लुत्फ, बनानेके तरीकोंपर निर्भर है, कपड़ेकी खूबसूरती उसके काटमें है, आमदनीका सुख इसमें है कि वह कैसे कमाई गई है.

पांच बार खाकर, घंटे-घंटेके बाद कपड़े बदलकर, कई कमरेवाले मकानमें रहकर, सुख नहीं मिलता. सुखके लिए ऐसा काम चाहिए, जिसके द्वारा मैं यह बता सकूं कि मैं क्या हूं ? जिनके लिए काम करूं वे मां-बाप, वे सम्बंधी भी चाहिएं मेरी मर्जीकी तालीम न मिली तो सब सुख बेकार, मेरी मर्जीका समाज न मिला तो सब सुख भार.

इस बाढ़-युगके मुकाबलेमें पहले युगका नाम आप सूखा-युग रख लीजिए; पर उस युगमें ये सब चीजें मिल जातीं थीं. आजकल कारखाने चीजें बनानेमें जुटे हैं, सरकार परमाणु बम बनानेमें. सुख उपजानेकी किसीको फुरसत नहीं. चीजोंकी भरमारसे और एटम-बमकी दहाड़में सुखकी परछाई देखनेको मिलेगी, सुख नहीं.

हलवाईकी तबीयत मिठाईसे ऊब जाती है यानी उसे सुखकी जगह दुःख देने लगती है. रेलका गार्ड रेल सवारीको आफत समझता है. खपतसे उपज कुछ कम हो तो सुख मिले. खपतके बराबर हो तो हर्ज नहीं; पर खपतसे ज्यादा हो तो दुःख ही होगा.

डाकबाबूको यह पता नहीं कि उसके कितने बच्चे हैं ; जहाजके कप्तानको यह पता नहीं कि उसके मां-बाप भी हैं और उसका विवाह भी हो गया है; जुलाहेको पता नहीं कि वह तरह-तरहके बेल-बूटे बना सकता है. सुख जिसका नाम है वह कहीं रह ही नहीं गया. खाओ-पहनो-दौड़ो! सुखसे कोई सरोकार नहीं. फटफटियाकी फटफट, धुआं गाड़ीकी भकभक, हवाई जहाजोंकी खर-खर, मिलोंकी घर-घर—बाहर चैन कहां! पंखेकी सर-सर, टाईपराइटरकी क्लिक-क्लिक, स्टोवकी शूं-शूं, रेडियोंकी रूं-रूं घरमें आराम कहां ! छब्बे होने चले थे, दुब्बे रह गए. सुखकी खोजमें गांठका सुख भी गंवा बैठे. वह मिलेगा,

इसमें शक है.

सुख लोगोंको आजकल कभी मिलता नहीं. इसलिए वे उसे भूल गए. अगर वह आए तो उसे पहचान भी नहीं सकते. भीतरका सुख और बाहरका सुख वह दोनों ही भूल गए हैं.

सुख उस हालतका नाम है, जिसमें हम आजाद हों, कोई हमें हमारी मर्जीके खिलाफ न सताए, न भूखों मारे, न जाड़ा-गरमी सहनेको कहे. इतना ही नहीं, हमारी मर्जीके खिलाफ न हमें खिलाए, न पहनाए और न सैर कराए. सुख बीचकी अवस्थामें है, खींचतानमें नहीं. मर्जीसे किये सब कामोंमें सुख है—बर्फमें गलनेमें, आगमें जलनेमें, डूबने और ऊबनेमें भी. बेबातकी मेहनतमें भी सुख नही. लगन और उद्देश्यके बिना किसी काममें सुख नहीं. सुख एक हालत तो है, पर है वह तन मन-मस्तक तीनोंकी. भूखे मरकर सुख नहीं मिलेगा और पाषाण हृदय होकर भी नही. पेट भरी बकरी भेड़ियेके पास बांधनेसे दुबली हो जाती है तो राम-भजन करनेवाला संत भी भूखा रहकर दुबला ही होगा.

सुखकी पहेलीका एक ही हल है. धर्मसे कमाएं और मौज करें. (धर्म-अर्थ-काम) धर्मसे कमानेका अर्थ है खपतके अनुसार पैदा करना. कमानेमें मौज करनेकी योग्यता गंवा बैठना बुद्धिमानी नहीं है. इतना थकनेसे फायदा कि खा भी न सको. थककर भूखे सो जाओ. पैसेसे बेचैनी तो देह भी नहीं चाहिए, पर यहां तो तन, मन और मस्तिक बिक रहे है ! तन-मन और मस्तक सभी बिक गए तो सुख कौन भोगेगा.

बिको मत, बिकना गुलामी है. गुलामीमें सुख कहां ? दुःखमें मीठा कड़वा हो जाता है. कपड़ा देहका भार हो जाता है. तमाशा काटनेको दौड़ता है. सवारी खींचती नहीं, घसीटती-सी मालूम होती है.

बना-बनाया खानेमें खाने भरका मजा. बनाकर खानेमें दो मजे—एक बनानेका और एक खानेका. मिलोंमें चीजें बनती हैं, तुम्हारे लिए नहीं बनतीं. घरमें चीजें बनती हैं, वे तुम्हारे लिए बनती हैं. तुम्हारी

रुचिका ध्यान रखकर बनाई जाती हैं. तुम्हारे स्वास्थ्यका भी ध्यान रखा जाता है. अपनी चीज अपने आप बनी कुछ और ही होती है.

सभी तो बनी बनाई काममें ला रहे हैं ?

लाने दो, वे पास खड़े सुखको पहचानते ही नहीं. अपनाए कैसे ? तुम पहचान गए हो, अपनाओ. उसके अपनानेसे सोना, स्वास्थ्य, सुख तीनों हाथ आएंगे. सुखसे सुख और उस सुखसे और सुख मिलेगा. सुख तुममेंसे फूटकर निकलने लगेगा. धीरे-धीरे वे सब तुम्हारे रास्तेपर आ जाएंगे, जिन्होंने सुख अब तक देखा ही नहीं. अब देखनेको मिलेगा तो फिर क्यों न अपनाएंगे.

श्रममें सुख है, मेहनतमें मौज है. श्रम बिका सुख गया. मेहनत बिकी मौज गई. पैसा आया वह न खाया जाता है न पहिना जाता है. चीजें मोल लेते फिरो. भागे-भागे फिरो, जमींदारके पास, बजाज के पास बनियेंके पास, सिनेमाघरोंमें, स्कूलोंमें. लो खराब चीजें और दो दुगुने दाम. कभी सस्ता रोता था बार-बार, आज अकरा रोता है हजार बार.

सुख चाहते हो तो बड़ा न सही, छोटा-सा ही घर बनाओ. चर्खा खरीदो, चाहे महंगा ही मिले. कर्घा लगाओ, चाहे घरकी छोटी-सी कोठरी भी घिर जाए. जरूरी औजार खरीदो, चाहे एक दिन भूखा मरना पड़े. खेत जोतो और बोओ, चाहे खून-पसीना एक हो जाए. गाय घोड़ा रक्खो चाहे रातको नींद न ले सको.

बिक्रीकी चीज न बनो. बिगड़ जाओगे. अगर बिकना ही है तो कामकी उपजको बिको. सुख पाओगे.

खाने भरके लिए पैदा करो. थोड़ा ज़्यादा हो जाए तो उसके बदले में उन्हीं चीज़ोंको लो, जो सचमुच तुम्हारे लिए ज़रूरी हैं और जिन्हें तुम पैदा करना नहीं जानते.

कमाना और बेचना, कमाना और गंवाना है. कमाना और खाना, कमाना और सुख पाना है.

कामके लिए काम करनेमें सुख कहां? अपनोंके लिए और अपने लिए काम करनेमे सुख है. सुखकी चीजे बनानेमे सुख नहीं, अपने सुखकी चीज़ें बनानेमे सुख है. जब भी तुम पैसोंसे अपनेको बेचते हो, अपनी भलमनसियतको भी साथ बेच देते हो. उसीके साथ सच्ची भली जिंदगी भी चली जाती है. मन और मस्तक सब बिक जाते हैं. तुम न बिकोगे ये सब भी न बिकेंगे. भलमनसीकी बुनियादी जरूरतें यानी कुटिया, जमीन, चर्खा, कर्घा, वगैरह बनी रहेंगी तो तुम बने रहोगे और सुख भी पाते रहोगे. सुख भलोंके पास ही रहता है, बुरोंके पास नहीं. जो बुरोंके पास है वह सुख नहीं है, सुखकी छाया है.

गाड़ीमे जुतकर बैल घास-दाना पा सकता है, कुछ मोटा भी हो सकता है, सुखी नहीं हो सकता. सुखी होनेके लिए उसे घास-दाना जुटाना पड़ेगा, यानी निर्द्वन्द्व होकर जंगलमें फिरकर घास खाना होगा. तुम पैसा कमाकर, रोटी कपड़ा जुटा लो, सुख-सन्तोष नहीं पा सकते. सुख-सन्तोष, रोटी-कपड़ा कमानेसे मिलेगा, पैसा कमानेसे नहीं.

रोटी न कमाकर पैसा कमानेमे एक और ऐब है. घर तीन-तेरह हो जाता है. घर जुटानेवाले माता-पिता, अविवाहित बच्चे, अलग-अलग हो जाते हैं. बाप दफ्तर चल देता है और अगर मां पढ़ी-लिखी हुई तो वह स्कूल चल देती है ! बालक घरमे सनाथ होते हुए अनाथ हो जाते हैं. यह कोई घर है. वासनाके नाते जोड़ा झमेला है. यह वासना कुछ कुदरती तौरपर और कुछ दफ्तरोंके बोझसे पिचककर ऐसी बेकार-सी रह गई है, जैसे बकरीके गलेमे लटकते हुए थन.

घरको घर बनानेके लिए उसे कमाईकी संस्था बनाना होगा. वह कोरी खपतकी कोठरी न रहकर उपजका कारखाना बनेगी. आदमी मुंहसे खाता है तो उसे हाथसे कमाना भी चाहिए. इसी तरह एक कुटुम्बको एक आदमी बन जाना चाहिए. कोई खेत जोत-बो रहा है, कोई कात रहा है, कोई बुन रहा है, कोई खाना बना रहा है, कोई मकान चिन रहा है, कोई कुछ और कोई कुछ कर रहा है. इधर-उधर मारे-

मारे फिरनेसे यह जीवन सच्चा सुख देनेवाला होगा.

आज भी गांव शहरसे ज़्यादा सुखी हैं. वे अपना दूध पैदाकर लेते हैं, मक्कखन बना लेते हैं, रुई उगा लेते है, सब्जी बो लेते हैं, अनाज तैयारकर लेते हैं और सबसे बडी बात तो यह है कि घरको वीरान नहीं होने देते. शहरवाले ये सब चीजे पैसोंसे खरीदते है, घरबार बाँटकर गलेमे गुलामीका तौक डाले सुबह-सुबह खरगोशकी चाल जाते हैं और शामको कछुएकी चाल घिसटते-घिसटते घर आते हैं.

वृक्षका अपना कोई सुख नहीं होता. जड़ोंका नीचेतक जाना और ख़ुराक खीचनेके लिए काफी मजबूत होना, पेड़का डालियों और पत्तोंके बोझको संभाले रखनेके लिए काफी मोटा होना और रस ऊपर ले जाने के लिए पूरा योग्य होना, डालोंका मुलायम होना और पत्तोंका हरा-भरा होना इत्यादि ही पेड़का सुख है. ठीक इसी तरह समाजका अपना कोई सुख नहीं. वह समाज सुखी है, जिसके बच्चे, जवान, बूढ़े, औरत,मर्द सुखी हैं; भरे-बदन हैं, हंसते चेहरे है, ऊंची पेशानी है, खातिरदारीके नमूने हैं, समझदारीके पुतले है, आदमीकी शक्लमें फरिश्ते हैं. ऐसी ही मनुष्योंकी जिन्दगीके लिए देवता तरसते हैं

जिस्म बनानेके लिए खाना, कपड़ा और मकान चाहिए. जी हां, चाहिए; पर उन चीजोंके जुटानेमें अगर आपने देहको थका मारा तो वे सुख न देकर आपको काटेंगे, खसोटेंगे, रुला देंगे. मेहनतसे आप ये चीजें जुटाइए, पर ऐसी मेहनतसे, जिसमें लगकर आपका जिस्म फूल उठे, आपका मन उमंग उठे, आपका जी लग सके, आपका दिमाग ताजगी पा सके, आपकी आत्मा चैन माने और जिस काममें आप अपनेको दिखा रहे हों कि आप क्या हैं. जिस काममें आपका आत्म-विकास न हो, आप-का आत्म-प्रकाश न हो, उसे कभी न करना. वह काम नहीं, बेगार है. बदलेमें ढेरों रुपये मिले तो भी न करना. असलमें जी न लगनेवाले कामोंमें लगाकर जी मर जाता है. मरे जी, मरी तबियतें, सुखका आनन्द कैसे ले सकती है !

दोस्तो, समाजको सुखी बनानेके लिए अपना वक्त जाया न करो. वह सुखी न होगा. वह मशीन है. वह जानदार नहीं है. वह तुम सबका मिलकर एक नाम है. तुम अपनेको सुखी बनाओ, वह सुखी है.

यह नहीं हो रहा.

जैसे बहुत खानेसे सुख नहीं होता, भूखों मरनेसे भी सुख नहीं मिलता, वैसे ही बहुत कमानेसे सुख नहीं मिलता और न बिलकुल बेकार रहनेसे. जो बेहद कमा रहे हैं, वे बिलकुल सुखी नहीं. वे असलमें कमा ही नहीं रहे ; उनके लिए और कमा रहे हैं. जो और कमा रहे हैं वे यों सुखी नहीं हैं कि वे अपने लिए नहीं कमा रहे. यों समाजमें कोई सुखी नहीं है और इस वजहसे समाजमें कहीं पहाड़ और कहीं खाई बन गई हैं. समतल भूमि नामको नहीं रही. समतामें सुख है. समताका नाम ही समाज है. अगर समताका नाम समाज नहीं है तो उस समता को पैदा करनेके लिए ही उसका जन्म होता है. समता होनेतक समाज चैन नहीं लेता. चैन पा भी नहीं सकता.

खाना, कपड़ा, मकान दुःख पाए बिना मिल सकते हैं? ज़रूर मिल सकते हैं ; बिलाशक मिल सकते हैं. अगर नहीं मिल सकते तो सुख भी नहीं मिल सकता. फिर समाजका ढांचा बेकार, उसका पैदा होना बेसूद, उसकी हस्ती निकम्मी. अगर आरामकी निहायत जरूरी चीजें जुटानेमें भी हमें अपनेपर शक है तो सुख हमारे पास न फटकेगा. फिर तो हम मोहताजसे भी गए बीते हैं. फिर बच्चेके माने अनाथ. जवान के माने टुकरखोर और बूढ़ेके माने जीते-जी मुर्दा.

सांस लेकर खूनकी खुराक हवा, हम हमेशासे खींचते आए हैं, खींच रहें हैं और खींचते रहेंगे. फिर हाथ-पांव हिलानेसे जिस्मकी खुराक रोटी, कपड़ा, मकान क्यों न पाएंगे ? हम पाते तो रहे हैं ; पर पा नहीं रहे हैं. कोशिश करनेसे पा सकते हैं और पाते रहेंगे. हवा हम खुद खींचते हैं, अनाज और कपास भी हम खुद उगाएंगे.

हमने अबतक धन ढूंढा, धन ही हाथ आया. अब सुखकी खोज

करेंगे और उसे ढूंढ निकालेंगे.

जर, जमीन, जबरदस्तीकी मेहनत और जरा सख्त इन्तजामीसे पैसा कमाया जा सकता है तो चार बीघे जमीनसे, चार घड़ी सुबह-शाम जुट जानेसे, चर्खे जैसी मसीनोंके बलसे और चतुराईकी चोटनी जितनी चिनगारीसे चैन और सुख भी पाया जा सकता है.

नए युगमें नए अर्थ-शास्त्रसे काम चलेगा, पुराने से नहीं.

चार बीघे जमीनका दूसरा नाम है घरबार. घर वह जिसमे हम रहते हैं. घरबार वह जिसमें हम सुखसे रहते हैं, यानी उसमें हम कमा-खा भी लेते हैं.

आदमी भूचर, थलचर प्राणी है. वह हवामे भले ही उड़ ले और सागरमे भले ही तैर ले, पर जीता जमीनसे है और मरकर उसीमें मिल जाता है. वह जमीनसे ही जिएगा और यह ही उसका जीनेका तरीका ठीक माना जाएगा. जमीन उसे जो चाहे करने देगी और जी चाहे जैसा रहने देगी. उसे हर तरह आजाद कर देगी. वह जमीनसे हटकर जबरसे जेर हो जाएगा. आजादी खोकर गुलामी बुला लेगा. आज़ादीके साथ सुखका अन्त हो जाएगा. दुःख आ जुटेगा और वह देवतासे कोरा दुपाया रह जाएगा.

जब हमारे पास जमीन थी हम सुखी थे और हमने वेद रच डाले. दशरथ और जनक हल चलाते थे, कौरव और पाण्डव खेत जोतते-बोते थे. वे आज भी जीवित हैं और हमें पाठ दे रहे हैं. सुख जमीनमें है और वहींसे मिलेगा.

जिस दिन तुमने जमीन लेकर फावड़ा उठाया, उसी दिन तुम्हारा सुख तुम्हारे सामने हरी-भरी खेती बनकर लहराया. जिस दिन उसी खेतीसे लगी अपनी छोटी-सी कुटियामें बैठकर चर्खा चलाते-चलाते तुमने वेदसे भी ऊंची ज्ञानकी तान छोड़ी कि सुख अप्सराका रूप रख तुम्हारे सामने नाचने लगेगा. फिर किस सेठकी मजाल है जो तुमसे आकर कहे कि आओ, मेरी मिलमें काम करना या मेरी मिलमें मैनेजर बनना.

कौन राजनेता तुमको सिपाही बनाने या वज़ारतकी कुर्सीपर बिठानेकी सोचेगा ? और कौन सेनापति तुमको फौजमें भर्ती होनेके लिए ललकारेगा ? ये सब तो तुम्हारे सामने दुजानू हो (दण्डवत कर) सुखकी भीख मांगेंगे. सच्चा गायक हुक्म पाकर राग नहीं छोड़ता, सच्चा चित्रकार रुपयोंकी खातिर चित्र नहीं बनाता. गायक गाता है अपनी लहरमें आकर: चित्रकार चित्र बनाता है अपनी मौजमें आकर. ठीक इसी तरह तुम भी वह करो, जो तुम्हारा जी चाहे, जिसमें तुम खिल उठो, जिसमें तुम कुछ पैदाकर दिखाओ, जिसमें तुम कुछ बनाकर दे जाओ. ऐसा करनेपर सुख तुम्हारे सामने हाथ बांधे खड़ा रहेगा.

आजकल 'मेहनत बचाओ', 'वक़्त बचाओ' की आवाज चारों ओरसे आ रही है. मेहनत बचानेवाली और वक़्त बचानेवाली मशीनें आए दिन गढ़ी जा रही हैं. परम पवित्र श्रमको कुत्तेकी तरह दुर्दराया जा रहा है. समय जिसकी हद नहीं, उसके कम हो जानेका भूत सवार है. एक ओर समयके निस्सीम होनेपर व्याख्यान दिया जा रहा है और दूसरी ओर गाड़ी छूट जानेके डरसे व्याख्यान अधूरा छोड़कर भागा जा रहा है! यह क्या! एक ओर श्रमकी महत्तापर बड़े-बड़े भाषण हो रहे हैं. दूसरी ओर उसीसे बचकर भगानेकी तरकीबें सोची जा रही हैं. खूब! कामके बारेमें लोगोंका कहना है, 'काम करना पड़ता है, करना चाहिए नहीं.' उन्हींका खेलके बारेमें कथन है, 'खेलनेको जी तो चाहता है,पर वक़्त ही नहीं मिलता.' इन विचारोंमें लोगोंका क्या दोष. समाजका दोष है. हरएकसे वह काम लिया जा रहा है, जिसे वह करना नहीं चाहता और वह भी इतना लिया जाता है कि उसे काम नामसे नफरत हो जाती है. उसको सचमुच खेलमें सुख मिलता-सा मालूम होता है.

काममें खेलकी अपेक्षा हजार गुना सुख है,पर उस सुखको तो समाजने मिलोंको भेंट चढ़ा दिया ! आदमीको मशीन बना दिया. मशीन सुख भोगे तो कैसे भोगे.

मालीको, किसानको, कुम्हारको, चमारको, जुलाहेको, दरजीको, बढ़-

ईको, मूर्तिकारको, चित्रकारको, उनकी प्यारी-प्यारी पत्नियां रोज खाना खानेके लिए खुशामद करती देखी जाती हैं. वे कामसे हटाए नहीं हटते. कभी-कभी तो इतने तल्लीन पाए जाते हैं कि वे सच्चे जीसे अपनी पत्नियोंसे कह बैठते हैं, 'क्या सचमुच हमने अभी खाना नहीं खाया ?' यह सुन उनकी सहधर्मिणियां मुस्करा देती हैं और उनके हाथसे कामके औजार लेकर उन्हें प्यारसे खाना खिलाने ले जाती हैं. सुख यहां है. यह सुख दफ़्तरके बाबूको कहां ! मिलके मालिकको कहां !! सिपाहीको कहां !!! उनकी बीवियां तो बाट जोहते-जोहते थक जाती हैं. एक रोज नहीं रोज यही होता है. मुहब्बत इस बेहद इन्तजारकी रगड़से गरमा जाती है और आगकी चिनगारियां उगलने लगती है. इसका दोष बीवीको न लगाकर समाजको ही लगाना चाहिए. कुम्हारिन, चमारिन वग़ैरह अपनी आंखों अपने पतियोंको कुछ पैदा करते देखती है, कुछ बनाते देखती हैं, कुछ उगलते देखती हैं, कुछ उमंगते देखती हैं, कुछ आनन्द पाते देखती हैं; पर सेठोंकी औरतें इन्तजारमें सिर्फ़ घड़ियां गिनती हैं और अगर देखती हैं तो यह देखती है कि उनके पति घिसटते-घिसटते चले आ रहे हैं, पांव के पहिये लुढ़काते आ रहे हैं, या मोटरमे बैठ ओंघते आ रहे हैं. वे उनकी दयाके पात्र रह जाते हैं, मुहब्बतके नहीं. कुम्हारका चेहरा काम के बाद चमकेगा, वजीरका मुरझाएगा. कुम्हारके जीमें होगी कि थोड़ी देर और काम करता, वजीरके जीमें होगी कि जरा जल्दी ही छुट्टी मिल जाती तो अच्छा होता. जो अन्दर होता है वही बाहर चमकता है. जो चमकता है उसे उसी हिसाबसे स्वागत मिलता है.

जिसे काममें सुख नहीं, वही उसे खेलमें ढूंढेगा. वहां वह उसको मिल भी जाएगा. उसके लिए तो कामसे बचना ही सुख है. वह काम से तो किसी तरहसे बच जाता है पर कामकी चितासे नहीं बच पाता. खेलमें भी जीसे नहीं लग पाता. वहांसे भी सुखके लिहाजसे खाली हाथ ही लौटता है.

'कामके घंटे कम करो'—यह शोर मच रहा है और प्रलयके

दिनतक मचता रहेगा. काम आठ-घंटेकी बजाए आध-घंटेका भी कर दिया जाए तब भी सुख न मिलेगा. ऊपर-नीचे हाथ किए जानेमें आध घंटेमें ही तबियत ऊब जाएगी. पांच मिनटको भी मशीन बननेमें सुख नहीं. एक मिनटकी गुलामी दिनभरका खून चूस लेती है. कामके घंटे कम करनेसे काम न चलेगा. कामको बदलना होगा. काम अभीतक साधन बना हुआ है. उसे साधन और साध्य दोनों बनाना होगा.

चार मील सरपर दूध रखकर बाजार पहुंच, हलवाईको बेच और बदलेमें रबड़ी खानेमें वह सुख नहीं है, जो घरपर उसी दूधकी रबड़ी बनाकर खानेमें है. साधनको साध्य बनानेसे ही सुख मिल सकेगा और वही सच्चा सुख होगा.

बिना सोचे-समझे पहिया घुमाए जाना, हथौड़ा चलाए जाना, तार काटे जाना, कागज उठाए जाना, उजड्डुपन या पागलपनके काम हैं. इनको मिलमालिक भला और समझदारीका काम बताते हैं और नाज तरकारी और फल उगानेके शानदार कामको बेअक्ली और ना समझीका बताते हैं. खूब ! किया उन्होंने दोनोंमें से एक नहीं.

पेट भरनेके लिए मेहनत की जाती है. यह सच है. पर इसमें एक चौथाई सचाई है, तीन चौथाई सचाई इसमें है कि हम मेहनत इसलिए करते हैं कि हम जीते रहें, आनन्दके साथ जिन्दगी बिता सकें, गुलामी-का गलीच धब्बा अपनी जिन्दगीकी चादरपर न लगने दें. हम पेट भरनेके लिए हलवा बनाएं, यह ठीक है; पर हम ही उसको खाएं-खिलाएं, यह सवा ठीक है और हम ही उसके बनानेका आनन्द लें, यह डेढ़ ठीक है. मेहनत हमारी, उपज हमारी, तजुर्बा हमारा, तब सच्चा सुख भी हमारा.

जानवर रस्सीसे बंधता है यानी जगहसे बंधता है. शेर भी मांदमे रहकर जगहसे बंधता है. और आदमी ? वह घरमें रहकर जगहसे बंधता है. दस बजे दफ़्तर जाकर वक़्तसे बंधता है. वाह रे प्राणीश्रेष्ठ! चिड़िया फुदकती फिरती है और खाती फिरती है. उसे नौ-दस-ग्यारह

बजनेसे कोई सरोकार नहीं. आदमीके अद्धे-पौवे बजते हैं, मिनटोंका हिसाब रखा जाता है; सिकंडोंकी कीमत आंकी जाती है और यह कहा जाता है कि उसने जगह (Space) और वक़्त (Time) दोनों पर काबू पा लिया है. हमें तो ऐसा जंचता है कि वह दोनोंके काबूमें आ गया है.

और लीजिए. हमे बाप-दादोंकी इज्जत रखनी है और नाती-पोतों के लिए धन छोड़ जाना है; यानी स्वर्गवासियोंको सुख पहुंचाना है और उनको जिन्होंने अभी जन्म भी नहीं लिया !! तब हम बीचवालोंको सुख कैसे मिल सकता है ?

अगले-पिछलोंको भूल जाना, जानवर बनना नहीं है, सच्चा आदमी बनना है. हमारे सुखी रहनेमे हमारे पिछले सुखी और हमारे अगले सुखी. सुखी ही सुखी सन्तान छोड़ जाते हैं और सुखी देखकर ही स्वर्गीय सुखी होते हे. बेमतलबकी मेहनतमें समय खर्च करना गुनाह है. वक़्त पूंजी है. उसे काममें खर्च करना चाहिए और ऐसे काममें जो अपने कामका हो.

सुख भोगनेकी ताकतको जाया करनेवाले कामोंमे लगाकर जो वक्त जाता है, उस कमीको न गाना पूरा कर सकता है, न बजाना, न खेल, न तमाशा और न कोई और चीज.

कपड़ा खतम कर धब्वा छुड़ाना, धब्बा छुड़ाना नहीं कहलाता. ठीक इसी तरह आदमीको निकालकर वक्त बचाना, वक्त बचाना नहीं हो सकता. मिलें यही कर रही हैं. सौ आदमीकी जगह दस और दस की जगह एकसे काम लेकर निन्यानवेको बेकार कर रही हैं. काममें लगे एकको भी सुखसे वंचित कर रही हैं. यों सौके-सौका सुख हडप करती जा रही हैं.

मिल और मशीन एक चीज नहीं. मिल आदमीके सुखको खाती है और मशीन आदमीको सुख पहुंचाती है. मशीन सुखसे जनमी है, मिल शरारतसे. चर्खा मशीन है, कोल्हू मशीन है, चाक मशीन है,

सीनेकी मशीन मशीन है. मशीनें घरको आबाद करती हैं, मिलें बरबाद करती हैं. मशीन कुछ सिखाती है, मिल कुछ भुलाती है. मशीन सेवा करती है, मिल सेवा लेती है. मशीन पैदा करती है, मिल पैदा करवाती है. मशीन समाजका ढांचा बनाती है, मिल उसीको ढाती है. मशीन चरित्र बनाती है, मिल उसीको धूलमें मिलाती है. मशीन गाती है, मिल चिल्लाती है. मशीन धर्मपत्नीकी तरह घरमें आकर बसती है, मिले वेश्याकी तरह अपने घरमें बुलाती है और खून चूसकर निकाल बाहर करती हैं. मशीन चलानेमें मन हिलोरें लेता है, मिलमें काम करनेमें मन चकराने लगता है, जी घबराने लगता है. मशीनें पुरानी हैं और हमसे हिल-मिल गई हैं. मिलें नई हैं और कर्कश स्वभावकी हैं. मशीनें हमारे कहनेमें रहती है, मिलें हमारी एक नहीं सुनतीं. मतलब यह कि मशीन और मिलका कोई मुकाबला नहीं. एक देवी है तो दूसरी राक्षसी.

मशीनोंकी पैदावारका ठीक-ठीक बंटवारा होता है. मिलोंका न होता है और न हो सकता है. अगर मार-पीटकर ठीक कर दिया जाय तो तरह-तरहकी दुर्गंध फैलेगी, बेकारी फैलेगी, बदकारी फैलेगी, बीमारी फैलेगी और न जाने क्या-क्या फैलेगा ?

मशीनपर लगाया हुआ पैसा घी-दूधमें बदल जाता है. मिलोंपर लगाया हुआ पैसा लाठी, तलवार, बन्दूक और बम बन जाता है.

एकका सुख जिसमें है, सबका सुख उसमें है. एकको भुलाकर सबके सुखकी सोचना सबके दुःखकी सोचना है. मिलें सैकड़ोंका जी दुखाकर शायद ही किसी एकको झूठा सुख दे सकती हों. झूठा सुख यों कि वे मुफ्तका रुपया देती हैं और काफीसे ज्यादा धनसे ऊबा देती हैं. ऊबनेमें सुख कहां !

ऊपर बताए तरीकोंसे सुख मिलता है. पर उस सुखको बुद्धिके जरिए बहुत ज्यादा बढ़ाया जा सकता है. ज्ञान बाहिरी आरामको अन्दर लेजाकर कोने-कोनेमें पहुंचा देता है. अनुभव, विद्या, हिम्मत वगैरह

से ज्ञान कुछ ऊंची चीज है. वही अपनी चीज है. और चीजें उससे बहुत नीची हैं. ज्ञानी-आत्म सुख खोकर जिस्मी आराम नहीं चाहेगा. भेड़िएकी तरह कुत्तेके पट्टेपर उसकी नजर फौरन पहुंचती है. उसको यह पता रहता है कि आदमीको कहां, किस तरह, किस रास्ते पहुंचना है. जो यह नहीं जानता वह आदमियतको नहीं जानता. फिर वह आदमी कैसा ! समझमें नहीं आता, दुनिया धन कमानेमें धीरज खोकर अपनेको धी-मान कैसे माने हुए हैं! वह धनकी धुनमें पागल बनी हुई है और उसी पागलपनका नाम उसने बुद्धिमानी रख छोड़ा है. खूब ! उसने सारे सन्त-महन्तोंको महलोंमें ला बिठाया है, गंदी गलियोंमें मंदिर बनाकर न जाने वे क्या सिद्ध करना चाहते हैं. ज्ञानसे दुनिया इतनी दूर हट गई है कि उसके हमेशा साथ रहनेवाला सुख उसकी पहचानमें नहीं आता. सुखका रूप बनाए असन्तोष उसे लुभाए फिरता है और घुमाए फिरता है. हिरनकी तरह लू की लपटोंको पानी मानकर दुनिया उसके पीछे-पीछे दौड़ती चली जा रही है. तुम बुद्धिमानीके साथ सुख कमानेमें लगो. उसे असन्तोषके पीछे दौड़ने न दो.

कितना ही मूर्ख क्यों न हो, 'क्यों' और 'कैसे' को अपनानेसे बुद्धिमान बन सकता है. अनुभवसे बड़ी पाठशाला और कौन हो सकती है. हां, दुनियाकी लीक छोड़कर, अपने रास्ते थोड़ी देर भटककर ही सीधा रास्ता मिलेगा. ध्यान रहे, आदमीको लीक-लीक चलनेमें कम-से-कम बुद्धि लगानी पड़ती है, पर वह लीक सुखपुरीको नहीं जाती. वह लीक असंतोषनगरको जाती है. उस ओर जानेकी उसे पीढ़ियोंसे आदत पड़ी है. दूसरे रास्तेमें ज्यादा-से-ज्यादा बुद्धि लगानी पड़ती है, ज्यादा-से-ज्यादा जोर लगाना पड़ता है, वहां कोई पगडंडी बनी हुई नहीं है. हर एकको अपनी बनानी पड़ती है. हां, उस रास्तेपर चलकर जल्दी ही ज्ञाननगर दीखने लगता है और फिर हिम्मत बंध जाती है. कम ही लोग आदत छोड़ उस रास्तेपर पड़ते हैं, पर पड़ते जरूर हैं. जो पड़ते हैं वे ही ज्ञाननगर पहुंचते हैं और उसके चिरसाथी सुखको पाते हैं.

सुख चाहते सब हैं. बहुत पा भी जाते हैं. पर थोड़े ही उसे भोग पाते हैं. सुख ज्ञानके बिना भोगा नहीं जा सकता. असन्तोषनगरकी ओर जो बढ़ चुके हैं वे सुनकर भी नहीं सुनते और जानकर भी नहीं जानते. उन्हें भेद भी कैसे बताया जाए, क्योंकि वे भेद जाननेकी इच्छा ही नहीं रखते. भगवान बुद्धपर उसका राजा बाप तरस खा सकता था, पांव छू सकता था, बढ़िया माल खिला सकता था, पर भेद पूछनेकी उसे कब सूझ सकती थी. सेठको स्वप्न भी आएगा तो यह आएगा कि अमुक साधु बिना कुटीका है, उसकी कुटी बना दी जाए. उसे स्वप्न यह नहीं आ सकता कि वह साधु सुखका भेद जानता है और वह भेद उससे पूछा जाए.

ज्ञानी कहलानेवाले लोग बाजारकी चीज बने हुए हैं. अखबार उठाओ और जी चाहे जितने मंगा लो. जो बाजारकी चीज बनता है, वह ज्ञानी नहीं है. वह क्या है, यह पूछना बेकार है और बताना भी बेकार है.

पैदा हुए, बढ़े, समझ आई, दुःख-सुख भोगा; बच्चे पैदा किए, बूढ़े हुए और मर गए. यह है जिन्दगी. एकके लिए और सबके लिए. इसमें सुख कहां ? सुखी वह है, जिसने यह समझ लिया कि कैसे जिए ? क्यों जिए ? पर यह कौन सोचता है. और किसे ठीक जवाब मिलता है. मुसलमानके लिए यह बात कुरानशरीफ सोच देना है और हिन्दूके लिए वेद भगवान्! फिर लोग क्यों सोचें. कभी कोई सोचनेवाला पैदा हो जाता है, पर उसका सोचा उसके कामका. तुम्हारे किस कामका ? वह तुमको सोचनेकी कहता है. तुम उसका सोचा अपने ऊपर थोप लेते हो. थोपनेसे तुम्हारा अपना ज्ञान छुप जाता है. सोचनेकी ताकत जाती रहती है. इस तरह दुनिया वहीं-की-वहीं बनी रहती है. पुजारी पूजा करता रहता है, सिपाही लड़ता रहता है, सेठ पैसा कमाता रहता है, नाई-धोबी सेवा करता रहता है. सोचनेका रास्ता बन्द हो जाता है, रूढ़ि-रोग रुके-का-रुका रह जाता है. रूढ़ि-रोगसे अच्छा होना

चमत्कार ही समझना चाहिए. रूढियोंमें खोट निकालने लगना और भी बड़ा चमत्कार है. और उन्हें सुखके रास्तेके कांटे बता देना सबसे बड़ा चमत्कार है. जिन्दगीकी अलिफ-बे-ते, यानी आ-ई, यहींसे शुरू होती है.

धर्म भले ही किसी बुद्धिमानकी सूझ हो, पर हिन्दू जाति, मुसलमान जाति, ईसाई जाति, जैन जाति, सिख जाति, किसीकी सूझ नही है. यह आप उगनेवाली घासकी तरह उठ खड़ी हुई हैं. इनकी खाद हैं— कायरता, जंगलीपन, उल्टी-सीधी बातें, उजड्डपन, दब्बूपन, वगैरह. आलसके पानीसे यह खूब फलती-फूलती हैं.

रिवाजोंकी जडमें, फिर वे चाहे कैसे ही हों, मूर्खता और डरके सिवा कुछ न मिलेगा. जब किसीको इस बातका पता चल जाता है तो वह उस रिवाजको फौरन तोड़ डालता है और अपनी समझसे काम लेने लगता है.

आज ही नहीं, सदासे ज्ञानपर शक होता आया है. कुछ धर्म-पुस्तकें तो उसको शैतानकी चीज मानती हैं. जो धर्म-पुस्तक ऐसा नहीं बताती उसके अनुयायी ज्ञानकी खिल्ली उड़ाते हैं और खुले कहते हैं कि ज्ञानी दुराचारी हो सकता है और अज्ञानी भला. याद रहे सुखी जीवन ज्ञानी ही बिता सकता है, अज्ञानी कदापि नहीं. अज्ञानी बेगुनाह हो सकता है, भला नहीं. भला बननेके लिए अक्ल चाहिए. वह अज्ञानीके पास कहां. ईंट, पत्थर, निष्पाप हैं; मन्दिरके भगवान् भी निष्पाप हैं, पर वे कुछ भलाई नहीं कर सकते.

सब एक बराबर ज्ञान लेकर पैदा नहीं होते. हीरा भी पत्थर है और संगमरमर भी पत्थर. पर संगमरमर घिसनेपर हीरा जैसा नहीं चमक सकता. पढ़ने-लिखनेसे समझ नहीं बढ़ती. हां, पहलेसे ही समझ होती है तो पढ़ने-लिखनेसे चमक उठती है. यों सैकड़ों पढ़े-लिखे रूढ़ियों में फंस जाते हैं. वे दयाके पात्र हैं.

आजकलकी दुनिया अक्षर और अंकोंकी हो रही है, यानी बी० ए०

एम० ए० या लखपतियों-करोड़पतियों की, समझदारोंकी नहीं. वह सुखी जीवनमें और जीवन-सुखके साधनोंमें कोई अन्तर करना ही नहीं जानती. दुनियामें समझदार नहीं, ऐसी बात नहीं है. वे हैं और काफी तादादमें हैं. पर वे भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य और विदुर आदि की तरह अक्षर और अंकोंको बिक गए हैं. जो दो-एक बचे हैं, वे संस्थाएं खोलकर अपने जालमें फंस गए हैं. और उन्हींके, यानी अक्षरों और अंकोंके हो गए हैं. अपनी औलादकी खातिर और मनुष्य समाज की खातिर वे उस गुलामीसे निकलें तो दुनिना बदले और सुखी हो. याद रहे, दुनिया समझदारोंकी नकल करती है, अक्षरों और अंकों की नहीं. हमेशासे ऐसा होता आया है और होता रहेगा.

दुनिया असचकी ओर दौड़ी चली जा रही है. कोशिश करनेसे बिल्कुल सम्भव है कि वह सचकी ओर चल पड़े

दुनिया बुराईमें फंस रही है. जोर लगानेसे निकल सकती है और भलाईमें लग सकती है.

दुनिया दिन-पर-दिन भौंडी होती जा रही है. कोशिश करनेसे शायद सुगढ़ हो जाए.

सत्यं,शिवं, सुन्दरंके लिए भी क्या दासता न छोड़ोगे ?

पैसा रोके हुए है.

समझदारोंको वह कैसे रोकेगा ? वे ऐसी अर्थनीति गढ़ सकते हैं, जिससे मनचाहा काम मिलने लगे और पराधीन भी न रहें. रोटी-कपड़े ही से तो काम नहीं चलता. आत्मानन्द भी तो चाहिए. बिना उस आनन्दके सुखके साधनोंमें डूबकर भी सुख न पा सकोगे.

समाजकी सेवा इसीमें है कि वर्तमान अर्थनीतिका जाल तोड़ डाला जाए. ज्ञानियोंको रगड़ना छोड़ना ही होगा और इस जिम्मेदारीको ओढ़ना ही होगा. इस विषके घड़ेको फोड़ना ही होगा अगर अपनेको बचाना है, अपनी संतानको बचाना है और मनुष्य-समाजको बचाना है. यह कुरूपी दुनिया तुम्हारे हाथों ही सुखिया बन सकती है और किसीके बूते सुखिया

न बनेगी.

पैसा ठीकरा है. वह तुम्हें क्यों रोके ?

पापी पेट रोक रहा है.

पापी पेटने समझदारोंको कभी नहीं रोका. उनका जिस्म कमजोर नहीं होता. वे भूख लगनेपर खाते हैं. वे काम करते हैं और खेलते जाते हैं. वे थोड़ा खाते हैं और बहुत बार नहीं खाते. वे धीरे-धीरे खाते हैं. वे कुदरती चीजें खाते हैं. जरूरत पड़नेपर हाथकी बनी भी खा लेते हैं. वे घरपर खाते हैं. वे बीमार क्यों होंगे और क्यों कमजोर ?

जिस्म तुम्हारा घोड़ा है. वह तुम्हें क्यों रोकेगा ? वह तो तुम्हें आगे, और आगे, ले चलनेके लिए तैयार खड़ा है.

समाज रोक रहा है.

वह क्या रोकेगा. वह घासकी तरह उग खड़ा हुआ जंजाल है. वह सूख चुका है. उसमें अब दम कहां. उसमें रिवाजोंके बट हे सही, पर वे जली रस्सीकी तरह देखने भरके हैं. अंगुली लगाते बिखर जाएंगे.

समाज समझदारोंको अपने रास्ते जाने देता है.

धर्म रोकता है.

धर्म आगे ढकेला करता है, रोका नहीं करता. अगर वह रोकता है तो धर्म नहीं है. धर्मके रूपमें कोई रूढ़ि या रिवाज है. जो रोकता है वह धर्म नहीं होता. वह होता है 'धर्मका डर'. धर्म खुद तो डरावनी चीज नही है, वह तो लुभावनी चीज है. पर धर्मके नामपर चली रस्में बेहद डरावनी होती हैं. अगर डराती हे तो वे, रोकती हैं तो वे. उस डरको भगानेमें समझ बड़ी मददगार साबित होगी.

डर हममें है नहीं. वह हममें पैदा हो जाता है या पैदा करा दिया जाता है. जो डर हममें है, वह बड़े कामकी चीज है. वह इतना ही है जितना जानवरोंमें. जिन कारणोंसे जानवर डरते हैं, उन्हीं कारणोंसे हम भी. उतना डर तो हमें खतरेसे बचाता है और खतरेको बरबाद

करनेकी ताकत देता है. अचानक बन्दूककी आवाजसे हम आजतक उछल पड़ते हैं. हमारी हमेशाकी जानी-पहचानी बिजलीकी चमक हमको आज भी डरा देती है. इतना डर तो कामकी चीज है. पर जब हम भूत-प्रेतसे डरने लगें, नास्तिकतासे डरने लगें, तब समझना चाहिए कि हमारा डर बीमारीमें बदल गया है. उसके इलाजकी जरूरत है. तिल्ली और जिगर तो कामकी चीजें हैं, पर बढ़ी तिल्ली और बढ़ा जिगर बीमारियां हैं. बढ़ा डर भी बीमारी है. मामूली डर हमारी हिफाजत करता है, बढ़ा हुआ डर हमारा खून चूसता है. हमें मिट्टीमें मिला देता है. मिट्टीमें मिलनेसे पहले हम उसे ही क्यों न मिट्टीमें मिला दें. भूत-प्रेत आदि हैं नहीं, हमने ख़्यालसे बना लिए हैं, जैसे हम अंधेरेमें रोज ही तरह-तरहकी शक्लें बना लेते हैं

डरपोकको धर्म हिम्मत देता है, तसल्ली देता है, बच भागनेको गली निकाल देता है. जिन्हें अपने आप सोचना नहीं आता, धर्म उनके बड़े कामकी चीज है. सोचनेवाले ना-समझदारोंके लिए ही तो उसे सोचकर रख गए हैं. सोचने-समझनेवालोंके लिए धर्म जाल है, धोखा है, छल है. धर्म आए दिनकी गुत्थियोंको नहीं सुलझा सकता, कभी-कभी और उलझा देता है. धर्म टालमटोलका अभ्यस्त है और टालमटोलमें नई उलझनें खड़ा कर देता है.

सुखी बनने और समाजको सुखी बनानेके लिए यह बिल्कुल जरूरी है कि हमारे लिए औरोंके सोचे धर्मको हम अपनेमें से निकाल बाहर करें उसकी रस्में, उसकी आदतें, उसकी छूतछात उसका नरक-स्वर्ग, उसकी तिलक-छाप, उसकी डाढ़ी-चोटी, उसका धोती-पायजामा, एक न बचने दें. सचाई, भलाई और सुन्दरताकी खोजमें इन सबको लेकर एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता.

मां बच्चेके लिए हौवा गढ़ती है. बच्चा डरता है. मां नहीं डरती. मां क्यों डरे. वह तो उसका गढ़ा हुआ है. महापुरुष एक ऐसी ही चीज हमारे लिए गढ़ जाते हैं. हम डरते हैं, वे नहीं डरते. जो दिखाई-

सुनाई नहीं देता, जो समझमें नहीं आता, जो सब कहीं और कहीं नही बताया जाता, ऐसे एकका डर हममें बिठा दिया जाता है. धर्म साधारण ज्ञान और विज्ञानकी तरह सवाल-पर-सवाल पैदा करनेमें काफी होशियार है, पर जवाब देने या हल सोच निकालनेमें बहुत ही कम होशियार. वह होनी बातोंको छोड़ अनहोनीमे जा दाखिल होता है. धर्मकी इस आदतसे आम आदमियोंको बड़े टोटेमें रहना पड़ता है. वे जाने-अनजाने अपनी अजानकारीको कबूल करना छोड़ बैठते हैं. इस जरा-सी, पर बड़ी भूलसे आगेकी तरक्की रुक जाती है.

समझदार अपनी अजानकारी जानता भी है और औरोंको भी कह देता है. समझदारीकी बढ़वारीमें अजानकारी भी बढ़ती है, पर इससे समझदार घबराता नहीं. खोजमें निकला आदमी बीहड़ जंगलोंसे घबराए तो आगे कैसे बढ़े. समझदार अपने मनमें उठे सवालोंका कामचलाऊ जवाब सोच लेता है. वे जवाब काम-चलाऊ ही होते हैं. पक्के नहीं. पक्केपनकी मोहर तो वह उनपर तब लगाता है जब वे तजुर्बेकी कसौटी पर ठीक उतरते हैं.

जो जितना ज़्यादा रूढ़िवादी होगा, वह उतना ही ज्यादा धर्मात्मा होगा, उतना ही ज्यादा अजानकार होगा और उतना ही ज्यादा उसे अपनी जानकारी पर भरोसा होगा ! वह स्वर्गको ऐसे बताएगा, मानो वह अभी वहांसे होकर आ रहा है. वह ईश्वरको ऐसे समझाएगा, मानो वह उसे ऐसे देख रहा है, जैसे हम उसे.

नासमझीसे समझदारीकी तरफ चलनेका पहला कदम है 'शंका करना'. शंका करना ही समझना है. अपनी नासमझीकी गहराई शंकाके फीतेसे नापी जाती है. यह नापना ही समझदारी है. 'ईश्वर है' यह कहकर सचाईकी खोजसे भागना है. अपनी नासमझदारीसे इन्कार करना है.

कितना सच्चा और कितना समझदार था वह, जो मरते दमतक यही कहता रहा, 'यह भी ईश्वर नहीं,' 'यह भी ईश्वर नहीं,' 'यह भी

ईश्वर नहीं' (नेति, नेति नेति) उसकी तरह तुम भी खोजमें मिटा दो अपने आपको, पर अजानकारी को मत छिपाओ. 'मैं नहीं जानता' कहना जिसको नहीं आता, वह सच्चा बन नहीं सकता. समाज सेवक तो बन ही नहीं सकता.

आस्तिकताके लिए अपनी बोलीमें लफ्ज है 'है-पन.'* जो यह कहता है, 'मैं नहीं जानता कि ईश्वर है' वही आस्तिक है. जो यह नहीं जानता, 'ईश्वर है' और कहता है कि 'ईश्वर है' वह नास्तिक है.

क्यों ?

'जो नहीं जानता कि ईश्वर है' यह वाक्य यूं भी कहा जा सकता है कि जो जानता है कि ईश्वर नहीं है. 'नहीं है'—यही नास्तिकता है.

मनकी जमीनमें बेजा डरका जितना ज्यादा खाद होगा, धर्मका बीज उतनी ही जल्दी उसमें जड़ पकड़ेगा और फले-फूलेगा.

महासत्ता यानी बड़ी ताकतसे चाहें हम इन्कार न भी करें ; पर बड़ी शखसियतसे तो इन्कार कर ही सकते हैं. व्यक्तित्व, व्यक्तिकी इंद्रियों और मनका योगफल ही तो है. इनके बिना व्यक्तित्व कुछ रह ही नहीं जाता. अब कोई अनन्त गुणवाली शक्ति व्यक्ति नहीं हो सकती.

मनका स्वभाव है कि वह डरकर शेखी मारने लगता है. कहने लगता है—'मैं अजर हूं, अमर हूं, और न जाने क्या-क्या हूं.' धर्मकी डींगोंकी जड़में भी अहंकार मिल सकता है. जीवन आप ही एक बड़ी पवित्र चीज है. तुम ऐसा मानकर आगे क्यों नहीं बढ़ते. धर्म तुम्हारे मार्गमें क्यों आड़े आए ?

आत्माको अजर-अमर कहकर धर्म चिंतामें पड़ गया कि वह इतना समय कहां बिताएगा. इसलिए उसको मजबूर होकर नरक-स्वर्ग रचने पड़े. पर इन दोनोंने दुनियाका कुछ भला न किया. धर्मके लिए आए-दिनके झगड़ोंने इनको सिद्ध किया है या असिद्ध, यह वह ही जाने. हिंदू-

---

* 'है' कि भाववाचक संज्ञा.

मुसलमान लड़कर, हिन्दू स्वर्ग चले जाते हैं और मुसलमान जिन्नत. नरक दोजख किसके लिए ? हिन्दू मुसलमान लड़कर हिन्दू मुसलमानोंको नरक भेज देते हैं और मुसलमान हिन्दुओंको दोजख. फिर स्वर्ग जन्नत किसके लिए ?

एक धर्म दूसरेकी बातें काटता है. एकका नैतिक विधान दूसरेको मंजूर नहीं. कहना यही होगा कि ठीक विधान किसीको भी नहीं मालूम.

असलमें कुछ सवाल निहायत जरूरी हैं और कुछ निहायत जरूरीसे मालूम होते हैं, पर बिल्कुल गैरजरूरी हैं. दुनिया जरूरी सवालोंको छोड़कर गैरजरूरीके पीछे पड़ गई है. इसलिए सुखसे दूर पड़ गई है. और समाज-सेवाकी जगह समाजकी दासतामें लग गई है. इस तरह दुनिया अपना नुकसान कर रही है और समाजका भी.

खाने-पहननेका सवाल सबसे जरूरी है ('भूखे भजन न होय गुपाला') इसको तो हल करना ही होगा. न हम वगैर खाए रह सकते हैं, न वगैर पहने. रहनेको मकान भी चाहिए. इसके वगैर भी काम नहीं चलता: इनके बिना जी ही नहीं सकते. सुखकी बात तो एक ओर. जीवन नहीं तो धर्म कहां ?

जरूरीसे लगनेवाले गैरजरूरी सवाल है—पुनर्जन्म, ईश्वर, स्वर्ग-नरक इत्यादि. इनको हल करनेकी बिरले ही कोशिश करते है और वह भी कभी-कभी. कोई-कोई इन सवालोंको बहुत जरूरी समझते है, पर वे समझते ही हैं. कुछ करते नहीं हैं.

ईश्वरको कोई माने या न माने, आग उसे जरूर जलाएगी, पानी उसे जरूर डुबाएगा. कोई ईश्वरको माने या न माने, पानी उसकी प्यास जरूर बुझाएगा और आग उसकी रोटी जरूर पकाएगी. हां, धर्मके ठेकेदार माननेपर भले ही न माननेवालोंको कुछ सजा दें. अब अगर न माननेवालेका समाजसे कोई आर्थिक नाता नहीं है तो समाजका धर्म उसका क्या रोक लेगा ? और वह क्यों रुकेगा ?

रह गया धर्म यानी सच्चा कर्त्तव्य. वह तो तुम्हारा तुम्हारे साथ

है और हमेशा साथ रहेगा. रह गया धर्म, यानी सच्चा ज्ञान. वह तो तुम्हारा तुम्हारे साथ है और हमेशा साथ रहेगा. रह गया धर्म यानी सच्ची लगन. उसे तुमसे कौन छीनेगा ? उसे धर्म रोकता नहीं.

धर्म वही जो हमें सुखी करे, हमें बांधे नहीं और हमें रोके नहीं.

अब आपकी तसल्ली हो गई होगी और समाज-सेवाके मैदानमें कूदनेकी सारी दिक्कतें भी खत्म हो चुकी होंगी. आप हर तरह यह समझ गए होंगे कि व्यक्ति जैसे-जैसे अपने पैरों पर खड़ा होता जाएगा, जैसे-जैसे वह अपने खाने-पहनने और रहनेके लिए दूसरोंपर निर्भर रहना छोड़ता जाएगा, वैसे-वैसे ही वह सुखी होता जाएगा और समाजको सुखी बनाता जाएगा.

उसके पास ऐसी चीजें ही नहीं होंगी, जिनके लिए उसे सरकारकी जरूरत पड़े. हां, वह समाजकी कुढंगी रचनाके कारण कुछ दिनों सरकारी टैक्ससे न बच सकेगा. पर इससे उसके सुखमें ज्यादा बाधा न पड़ेगी. लेकिन जब उसकी देखादेखी और भी वैसा करने लगेंगे तो उसकी यह दिक्कत भी कम होकर बिल्कुल मिट जाएगी.

बड़ी-बड़ी संस्थाओंका हम तजुरबा कर चुके, तरह-तरहकी सरकारें बना चुके, तरह-तरहके धर्मोंकी स्थापना कर चुके; पर व्यक्तिको कोई सुखी न बना सका. देखनेके लिए आजाद, पर हर तरह गुलाम !

बस अपने को पूरा स्वस्थ रखनेमें, सब तरह प्रसन्न रहनेमें, भला और समझदार बननेमें, अपने नियम बनाकर आजाद रहनेमें और अपने ऊपर पूरा काबू रखनेमें ही अपनोंकी, अपनी और समाजकी सेवा है.

सज़ा, इनाम और होड़

सात

सजाके जरिए हम नेकीके बीजमें अंकुआ फोड़ते हैं. इनामसे हम उसको पानी देकर बड़ा करते हैं और होड़से उससे ज्यादा-से-ज्यादा फल लेते हैं. दुराव, स्याव, ह्याव (सजा, इनाम, होड़) तीनोंकी एक ही गरज है यानी बालकमें बैठी नेकियोंको जगाना, उठाना और काममें लगाना. तीनों आदमीकी ईजाद हैं. आदमीकी हरेक ईजाद बड़ा काम कर रही है. दो-एकको छोड़, सबको ऐसा मालूम होता है कि आदमी की हरेक ईजाद समाजका बडा भला कर रही है. लगता है कि अगर वे ईजादें न हुई होतीं तो आदमी बड़ा दुखी होता. मिशालके लिए परमाणु-बम. अपनी ईजादोंके, बलपर आदमी यह सोचने लगा है कि अगर कल वह गेहूंकी खेती करना छोड़ दे तो गेहूंका दुनियासे नाम-निशान मिट जाए. और भी बहुत-सी चीजोंका यही हाल हो. ठीक इसी तरह वह यह भी सोचने लगा है कि अगर सजाको उठा दें तो दुनियामें बदमाशोंकी बाढ़ आ जाए. इनाम देना बन्द कर दे तो सारी दुनिया सोया करे, कोई कुछ काम ही न करे. होड़का रिवाज उठा दें तो

आदमीको जंग लग जाए और वह घिसकर गल-सड़ जाए. अफरीकाके जंगलोंमें आपोंआप उगे केलेके दरख्त कितने बड़े और मीठे केले देते हैं, उस तरफ उसकी निगाह ही नहीं जाती. जहां सजा, इनाम, होड़ नहीं पहुंची ऐसी जंगली जातियोंमे कितनी सिफतें पाई जाती हैं, उस तरफ वह ध्यान ही नहीं देता. उसने कुछ मनमाने कायदे बना लिए हैं जो उसके लिए जाला बन गए हैं. आदमी मकड़ी बना हुआ उस जालेमें न जाने किस शिकारकी ताकमे बैठा रहता है.

लीजिए, पहले सजाके बारेमें कुछ विचार सुनिए :

सारी जिंदगी, सारा अनुभव हमको यह साफ सबक दे रहा है कि भलाई बेफायदा नहीं जाती और कोई बुराई बेसजा नहीं, फिर चाहें वह तनकी हो, वचनकी हो मनकी हो या आत्माकी. सजा मिलनेमें देर हो सकती है; पर मिलती जरूर है.

अफलातून सजाको दवा समझते थे और गलती, भूल, बुराईको बीमारी. उनका कहना था कि बदमाशको सजा देना इतना ही जरूरी है जितना बीमारको दवा देना.

जो लोग यह समझते हैं कि हर बुराईकी सजा ईश्वर देता है, उनका सजाके बारेमे अजब ख्याल है. वे सजाको लंगड़ी बुढ़िया समझे हुए हैं. ईश्वरका हुक्म पाते ही वह लंगड़ाती हुई चल देती है और देर-सवेरे बदमाश तक पहुंच ही जाती है.

हर बुराईकी सजा मिलती ही है, चाहे वह ईश्वरकी तरफसे मिले या उसके तैनात किए राजाकी तरफसे या समाजकी तरफसे. यह ख्याल ऐसा ख्याल है जो हमारे दिलको बेहद तसल्ली देता है. हमे खुद भी सजा देनेमें आसानी मालूम होती है. दिल ठण्डा हो जाता है और ऐसा मालूम होने लगता है मानो सचमुच हमने जादू कर दिया. सजा पाने-वालेका चेहरा हमको साफ ऐसा कहता हुआ लगता है कि बुराई उससे एकदम काफूर हो गई और हमने, सिर्फ हमने, उसको शैतानसे फरिस्तां बना दिया ! यही वजह है कि सजा-देवी हमारे मनमें आसन जमा बैठी

हैं. उनकी सलाह हमारे लिए फिर यही होती है कि तुम कानून बना दो कि हर बुराईकी सजा मिलेगी ही और उन्ही देवीजीका फिर यह भी कहना है कि बुराइयां एकदम रुक जाएंगी. वह सजाकी सख्तीपर इतना जोर नहीं देती, जितना सजाके लाजमी होनेपर. देवीजी न सजाकी किताब (पीनलकोड) की मुटाई देख पाती है और न जेलखानोंकी गिनती गिन पाती हैं.

सजा-देवीके मुंहमें होकर उनके पेटके अन्दर झांका तो वहां फांसी का रस्सा और फूलोंका हार दोनों दिखाई दिए. मैं चकरा गया. मैंने पूछा—यह फूलोंका हार आपके पास किसलिए ? बोलीं—तुम अपना दुश्मन मारो तो गलेमें मैं डालती हूं फांसीका रस्सा और अगर तुम राजाका दुश्मन मारो या समाजका दुश्मन मारो तो गलेमें मैं डालती हूं फूलोंका हार. यह सुनकर मै दंग रह गया.

आदमी या आदमियोंको मार डालनेकी सजा गलेमें फूलोंका हार !

ऐसे लोग आज भी मौजूद है जो 'कंकड़ीके चोरको कटारकी सजा' के कायल हैं. 'एक गोलीसे दस्त नहीं होता तो दो गोली दो' उनका उसूल है. होमियोपैथिकी हल्की खुराककी तरफ उनकी निगाह ही नहीं जाती. झाड़-फूंकसे वह आदमियोंको अच्छा होते देखते है, अपनी आंखों देखते हैं, पर उसमें वह कुछ नजरबन्दी मानते हैं, छल मानते हैं. बुराइयां भलाईसे दूर होती हैं, इस बातको तो वह सुनना ही नहीं चाहते. दोनों कानोंपर हाथ धर लेते हैं. सजा, कड़ी सजा, तीरोंकी सजा, आधा गाड़कर कुत्ते छोड़ देनेकी सजा, जिंदा जला देनेकी सजा ही उनको ठीक सजा जंचती है.

एक हैं—सजाके कायल हैं, दिलसे कायल हैं, पर दिल रखते हैं मोम-सा. वह सजाको ईश्वरके हाथ सौंपकर भी सलाह देते हैं—किसीको सजा पाते देखकर हमको सुख नहीं मानना चाहिए. हम जो लोगोंकी नजरमे बड़े भले हैं, काला दिल रखते हैं. एक दिन हमको भी सजा मिलेगी तब क्या दूसरे न हंसेंगे ? किसीको डूबते देखकर हमको तरस

ही आएगा और हमपर ईश्वरका रौब ही छाएगा.

कुसूर करना यानी समाजके किसी कायदेको तोड़ना. कायदा तोड़नेके लिए इच्छा-शक्तिको थोड़ा कड़ा करना पड़ता है. सजा देने-वाला जब कुसूरवारको सजा देता है तब यही तो चाहता है कि उसकी इच्छा-शक्ति मुलायम पड़ जाए और उसकी ऐंठ कम हो जाए. अब सोचना यह है कि क्या समाजके लिए यह भलाईकी बात है कि वह अपने मेम्बरों की, जिनसे वह बना हुआ है, इच्छा-शक्तिको कमजोर बनाए ? सजाका सजा पानेवालेपर क्या असर होता है, उस तरफसे आंख फेर लेनेसे काम क्यों कर चलेगा. सजाका नतीजा ज्यादातर यह हुआ करता है कि सजा पानेवालेकी इच्छा-शक्ति और मजबूत हो जाती है और वह और भी जोरसे बुराइयां करनेमें लग जाता है.

सजाको जो ठीक समझते हैं, उनकी एक दलील, जो असलमें जबर-दस्त नहीं है, देखने-सुननेमें बड़ी जबरदस्त मालूम होती है, यह है—'बद-माशीकी ठीक-ठीक सजासे सिर्फ बदमाशकी बेइज्जती होती है.' इस दलीलमें एक छल है, दलील देनेवालेके सामने कुछ मिनटोंका संसार है. वह दलील देते वक्त यह सोचता ही नहीं कि सजाके आगे-पीछे और क्या होनेको है. वह समझता है कि आग राखसे ढक देनेके बाद बुझ जाती है और ठण्डी हो जाती है. जो गलत है.

सजाके रिवाजने समाजके मनकी कायापलट कर दी है. सजा दिए जाते वक्त समाजका मेम्बर समाजसे एकदम अलग पड़ जाता है. समाज सजा पानेवालेको अपने दिलसे भुला देता है. सज़ा दिए जाते वक्त समाज सिर्फ यही देखता है कि बदमाशको बदमाशीकी पूरी सजा मिली या नहीं और बदमाशी रुकी या नहीं. बदमाशसे बदमाशी क्यों हुई इस बातसे उसको कोई मतलब नहीं. बदमाश भी समाजका मेम्बर है, यह उसके ध्यानमें नहीं आता. भूलसे हमारे हाथकी उंगली अगर गरम कोयला छू ले तो उससे हमें तकलीफ तो होगी पर उंगलीको हम सजा नहीं देते, उसकी दवा करते हैं. समाजका मेम्बर समाज-देहकी एक उंगली

होता है. उसके साथ हम वैसा क्यों नहीं करते ? सजाकी फिलासफी ही इसकी जिम्मेदार है.

मौतकी सजाने तो सजाकी सारी भलाईका भंडाफोड़ कर दिया. सजा का मतलब है बुरे आदमीको भला बनाना, किसी कामका बनाना, समाजके फायदेका बनाना, पर उसको मौतके घाट उतारकर यह सब काम तो नहीं हो सकते. फिर यह सजा क्या हुई ? एक आदमीसे जो थोड़ी-बहुत भलाई होती थी वह भी रोक ली गई. समाजके हाथों मौतकी सजा पाए हुए लोगोंकी कहानियां यह साबित करती हैं कि सजाकी न सही, मौतकी सजाकी रग-रगमें समाजकी बुराई मौजूद है. एक मन-चले इसका यों जवाब देते हैं—फांसी देकर हम फांसी देनेवालेको थोड़े ही ठीक करना चारते है, हम तो उसको फांसी देकर किसी या किन्हीं और को ही ठीक करते है और आगाह करते हैं. खूब ! सुना है या शायद कहीं पढ़ा है कि कुछ उस्ताद राजाके लड़केको पढ़ानेके लिए एक 'पीटू लड़का' भी रखा करते थे. राजाका लड़का जब कोई कुसूर करता था तो पिटा करता था 'पीटू लड़का'. उस लड़के के पिटनेका असर राजाके लड़के पर पड़ता था और वह कुसूर करना छोड़ देता था !! यह बात सच हो सकती है और किसी कायर उस्तादको एसी बात सूझ भी सकती हैं, पर राजाका लड़का इस तरीकेसे सुधर जाए यह बात बिल्कुल गलत है. असल बात तो यह है कि एककी सजा दूसरेपर दो असर छोड़ती हैं एक यह कि कुसूर होशियारीसे और छिपकर करना चाहिए दूसरा यह कि कुसूर खुल्लमखुल्ला और ज्यादा बहादुरीसे करना चाहिए. दोनों ही असर समाजके लिए भले नहीं. यह बात गलत है कि सजासे न्यायकी धाक जमती है, या समाजकी रक्षा होती है, या कुसूर करनेवालेका सुधार होता है.

जैसे आममें गुठली और गूदा दोनों रहना जरूरी है. अगर आम में गुठली छोटी होती है तो गूदा ज्यादा होता है और गुठली बड़ी होती है तो गूदा कम रहता है. ठीक इसी तरह आदमीमें बदी और नेकी

दोनों रहती हैं. बदी कम होती है तो नेकी ज्यादा और बदी ज्यादा होती है तो नेकी कम. नेकी के साथ बहादुरी बढ़ती है और बदीके साथ कायरता. बहादुरीको सुख पहुंचानेमें मजा आता है और कायरताको दुःख पहुंचानेमें. कायरताकी खुराक बदमाशी. बदमाशीको काबूमें रखनेके घर जेलखाने, नेकीके फलने-फूलनेके बगीचे मदरसे. यों मदरसे और जेलखाने एक-दूसरेकी कमीको पूरा करते हैं. निन्यानवे स्कूल हैं तो एक जेलखाना होगा, अठानवे स्कूल हैं तो दो जेलखाने होंगे और सतानवे स्कूल हैं तो तीन. सरकारको जेलखानेका शौक होता है. सरकार जब पैदा हुई थी तब बुराइयां बहुत थीं. यों सरकारकी आदत जेल-पसन्द बन गई है. सरकार अपनी समझमें भलाई करती है, पर उसके कामसे समाजकी बुराई ही हो जाती है.

समाजने, न जाने क्यों, सजाको न्यायका रुतबा दे रखा है और इस तरह उसका आसन सचाईसे भी ऊंचा कर दिया है. सजासे अन्याय मिटता है यों सजा न्याय है. पर सजासे अन्याय मिटा कब ? दो बातें समाजमें पूरी सचाईकी जगह पाए हुए हैं जबकि उनमें पांच फी-सदी सचाई भी नहीं है. एक यह कि दवासे बीमारी जाती है, दूसरी यह कि सजासे अन्याय मिटता है. सजा अपने आप बुराई है और अन्याय है. वह अन्याय किस तरह मिटा सकती है. जलती हुई मोमबत्तीकी लोय एक पतंगेको जलाती है, उस लोयने बुराईकी. हमने उसे सजा दी और एक दहकता कोयला उस लोयपर रख दिया. लोय बुझ गई. हुआ क्या ? रोशनी मिट गई जो सबके भलेकी चीज थी. पतंगा जल रहा है, मोम-बत्ती पिघल रही है, अंधेरा बढ़ रहा है और हो सकता है कोई ठोकर खाकर उस दहकते कोयलेपर ही गिर पड़े. यह है सजा, न्यायकी बेटी या अन्यायकी अंगरक्षक !

सजाकी जड़में हमेशा न्याय ही रहता है, यह बात गलत है. ज्यादातर बदलेका ख्याल रहता है. कानूनी सजा जो हाईकोर्टके जज देते हैं, उसमें भी खालिस न्याय नहीं रहता. उसमें तो बदलेके अलावा और

भी बातें रह सकती हैं. उन्हें जाने दीजिए. सिर्फ बदलेको ही लीजिए. कभी-कभी किसी डाकूसे सारा समाज तंग आ जाता है, हाईकोर्टके जज भी तंग आनेसे अछूते नहीं रह जाते. उस वक्त डाकूको जो सजा दी जाती है उसमें न्यायका रत्तीभर हिस्सा नहीं रहता. बेहद तकलीफ मिलने पर जो सजा दी जाती है, उसके पीछे कोरा बदला रहता है. घरोंमें बच्चोंके साथ, स्कूलोंमें पढ़नेवालोंके साथ, मिलोंमें मजदूरोंके साथ, दफ्तरों में क्लर्कोंके साथ, रोज जो सजा मिलती है, उसमें बदलेका हिस्सा इकावन फी सदीसे कम नहीं होता. वह सजा इन्साफकी बेटी समझी जाती है !

चोरोंकी सजा मौततक पहुंचकर अटक गई, चोरी न रुकी. अब पीछे लौट रही है. आगे रास्ता नहीं. जो रास्ता है उस रास्ते सजा चल नहीं सकती. सजाकी यह नाकाबलियत इस बातका सबूत है कि वह मुहब्बत, इन्साफ, दया, माफीसे कोई रिश्ता नहीं रखती. प्रेमकी चिकनी सड़कपर सजाके पांव फिसल जाते हैं, वह गिर पड़ती है और एक कदम नहीं चल सकती. सजा बेकार साबित हो रही है; पर लोग उससे चिपके हुए हैं और न जाने कबतक चिपके रहेंगे.

कुछ लोग इस हदतक पहुंच गए हे कि कह बैठते हैं कि कुसूरमें खुद सजाके बीज रहते हैं. जो बात कही, खूब कही. जरा आगे बढ़िए और कहिए—कुसूर खुद सजा है. ऐसा कहनेसे कुसूरवार सजासे बच सकेगा और हमें तो यही ठीक जंचता है. उंगलीने आगमें जाने की भूल की और जली. अब तो कुसूर और सजा एक ही सिक्केके दो पहलू भर रह जाते हैं. फिर सजा देनेके मन्दिर, अदालतें और सजा भुगतनेके घर, जेलखाने बेकार हो जाते हैं.

बहुतोंकी यह राय है कि सजाको असरवाली बनानेके लिए दो बातें जरूरी हैं. एक यह कि कुसूरसे जरा भी घट-बढ़ कर सजा न दी जाए. दूसरी यह कि किसीको बिना सजाके न छोड़ा जाए. बात तो बड़ी अच्छी है. हम समझे थे कि उन्होंने वह तराजू भी तैयार कर ली है, जिसके एक पलड़ेमें कुसूर रखा जा सकेगा और दूसरेमें सजा; पर वह

तराजू तो उनके पास न निकली. कुसूर और सजा दोनो ही ऐसी चीजें हैं जो तोली नहीं जा सकतीं. बिना सजा किसीको न छोड़ना ईश्वरके बसकी बात हो तो हो, आदमीके बसकी बात नहीं है. ईश्वरके बनानेवालोंने कुसूरकी सजासे बचनेकी मोरी पहले ही तैयार कर रक्खी है. 'राम-राम' और 'अल्लाह-अल्लाह' कहकर किसी सजासे नहीं बचा जा सकता.

शुरु-शुरुमें आदमीको आग बड़ी बुरी जंची होगी. वह जहां उसको देखता होगा मार डालता होगा ; यानी बुझा देता होगा. यही हाल शुरुमें चोर-डाकुओंका हुआ होगा. पर पीछे आदमीको अक्ल आई और उसने आगसे खाना पकवाया और चोर-डाकुओंसे अपना राज बढ़वाया. आदमी जैसे बड़े कामवाले जानदारका सबसे बुरा इस्तैमाल है उसको मार डालना. समाजकी इससे बड़ी नाकाबलियत और क्या हो सकती है कि वह अपने एक हिस्सेसे कोई फायदा नहीं उठा सकती ! कुसूरको सजा न देकर या कुसूरको न ठीककर कुसूरवारपर पिल पड़ना ऐसा ही है जैसे बन्द घड़ीको कूकनेकी जगह पत्थरसे कुचल डालना या सुस्त चलनेवाली घड़ीको, कांटा सरकाकर ठीक करनेकी जगह, समुन्दरमें फेंक देना.

एक और मदरसा है, जिसका अनोखा ही ख्याल है. उसका कहना है कि हम किसीको सजा इसलिए देते ही नहीं कि उसने कुसूर किया है, हम तो सजा इस बातकी देते हैं कि वह आगे कुसूर न कर पावे. जो हो चुका सो हो चुका, उसका सजा कुछ बना-बिगाड़ नहीं सकती. उस मदरसेका यह भी कहना है कि सजामें न गुस्सा रहता है, न बदलेका ख्याल, न कुसूर करनेवालेसे नफरत, न और कोई बात. उसकी रायमें सजा कुसूरकी रोक-थाममें काम आती है. बात बड़ी अच्छी है ; पर सजा देनेवालेमें अगर गुस्सा नहीं है, घमण्ड नहीं है, फरेब नहीं है, बदले का ख्याल नहीं है, तो वह सजा ही क्या हुई. उसका तो नाम ही सजा होगा और वह भी सिर्फ इसलिए कि कुसूरवारको दी जा रही है. अगर

एक मां अपने कुसूरवार बच्चेको गोदीमें लेकर बड़े प्यारसे पुचकारकर कहे—ना बेटा, ऐसा नहीं किया करते. यह भी एक सजा है, पर ऐसी सजाको हम भी कब बुरा कहते हैं. अगर आप मुहब्बतके सब गुन ज्यों-के-त्यों रहने देते हैं तो आप भले ही मुहब्बतको सजाके नामसे पुकारिए हमें कोई एतराज न होगा. पर मुहब्बतका डरावना और बदनाम नाम सजा आप रखते ही क्यों हैं ? आप साफ कहिए कि कुसूरके गर्म पानीको प्यारकी हवा देकर ही ठंडे पानीमें बदला जा सकता है.

कुछ अपने ही ढंगसे सोचते हैं. वह कहते हैं—आदमी दिल और दिमाग दोका बना है. दिल भी कुसूर करता है और दिमाग भी. दिमागके कुसूरकी सजा समाज देता है, दिलके कुसूरकी ईश्वर. लोक-परलोकमें अकीदा रखनेवालोंका ऐसा सोचना ठीक है ; पर उनको यह तो मानना ही पड़ेगा कि आदमीका हरेक कुसूर दिल व दिमाग दोनोंकी मददसे होता है. अब उसको यहां भी सजा मिलेगी और वहां भी. यह कहांका इन्साफ है. यों इन्साफकी हद पार कर सजा गैर इन्साफीके दायरेमें आजाएगी और सबकी नजरोंसे गिर जाएगी. एक थप्पड़ मारने-वाला एक थप्पड़ खाकर यह समझ ही नहीं सकता कि अब उसके लिए और कौनसी सजा बच रही है जो उसको ईश्वरके दरबारमें मिलेगी और वह कौन देगा ? जो देगा क्या वह उसे मारकर और कुसूरवार न बन जाएगा ? ईश्वरके दरबारमें यह नहीं हो सकता कि मैं उसका थप्पड़ खाऊं, जिसका मैंने कुछ नहीं बिगाड़ा, नहीं तो इस लोक और परलोकमें फर्क ही क्या रह जाएगा.

जिस आदमीने ईश्वरको ढूंढा उसने ईश्वरकी सजाएं भी खोज निकालीं. आदमीमें डर पैदायशी है और मरते दमतक रहता है. डर-का और सजाका गहरा नाता है. डर सजाकी याद करता है पर जब वह आती है तब डरता है. उसका उस मोमबत्ती जैसा हाल है जो सुबहकी यादमें घुलती रहती है ; पर सुबहके आते ही उसे देख मर जाती है. डरकी, सजाके साथ इस अनोखे ढंगकी नातेदारीसे आदमीने

फायदा उठाया. ईश्वरकी सजाएं कायमकर वह बहुत-सी दिक्कतोंसे बच गया. डरकी वजहसे आदमीका मन सजाके नामसे घबराने लगा और कभी-कभी तो उसके खयालसे ही बैठ जाने लगा. बे-सजाके मौत होने लगी हें और होती रहेंगी.

अब यह बात तय हो गई की ईश्वर भलोंका तरफदार है क्योंकि जो सजासे डरता है, वह कुसूर नहीं करता. और जो कुसूर करता है वह सजा से डरता है और डरकर अपनी सजा आप दे लेता है. इस बातमें बड़ी सचाई है. फांसीकी सजाका हुक्म जिसको हो जाता है, वह उसी वक्तसे मरने लगता है ; यानी सजा भुगतने लगता है. फांसी लगनेके दिनतक तो वह पूरा मर चुका होता है. फांसी तो मुर्देको दी जाती है. यह बात हम आंखों देखी कह रहे हैं. सजाने हमारे मनोंमें इतनी गहरी जगह कर ली है कि अगर हम संसारसे सजाका नाम मिटा दें तब भी वह कई सदी वहां बनी रहेगी.

कुछ जुर्म और सजाको एक डालीमें लगे फूल-फल बताते हैं. वह जुर्मको फूल मानते हैं. फूलकी खुशबूकी तरह हर जुर्ममें आदमीको मजा आता है और यह सच बात है. जुर्ममें कुछ मजा न हो तो कोई करे क्यों ! उसी फूलमें फलके बीजकी शक्लमें सजा छुपी रहती है. जुर्मका फूल गिर जाता है, सजाका फल लगा रह जाता है और बढ़ता रहता है. यह बात बड़े ढंगसे कही गई है. पर इस असूलसे न ईश्वर सजा देनेवाला रह जाता है, न सरकार, न उस्ताद और न मां-बाप. यही हम चाहते हैं.

हमारी रायमें सजासे बुरी और कोई चीज नहीं. यह आदमीकी आदमियतको खा गई. उसकी ही नहीं जिसको यह मिलती है, उसकी भी जो इसको देता है. अन्तरात्माकी पुकारको अगर कोई बाहर जानेसे रोकता है तो यह सजा है. जमीरको खुदाकी राह चलनेसे हमेशा सजाने रोका है. हमारे अन्दर बैठे ईश्वरका दम यही घोटती रहती है. अगर सजा न होती तो एक युग, एक अवतार या एक रसूल ही पैदा करके न

रह जाता, वह हजारों लाखोंको जन्म देता और यह दुनिया देवनगर या फरिश्ताबादमें बदल गई होती.

सजा बुराइयोंकी डाट है. जिस आदमीमें तुमने डाट लगाकर बुराइयां रोक रखी हैं उसमेंसे कभी भलाई फूट निकलनेकी उम्मीद तुम कैसे रख सकते हो ? उनमेंसे जब भी कुछ निकलेगा वह बुराई ही होगी. सजा देकर आदमीसे नेकीमें लग जानेकी उम्मीद करना बबूल बोकर आमोंकी फसलकी उम्मीद करना है.

आदमी कुसूर करनेके बाद अन्दरकी तरफ देखता ही है. तब वह जो अपना सुधार करता है वह किसी सजा या सजा के ख्यालमें नहीं हो सकता. बच्चा कोई नुकसान करनेके बाद जब बापका थप्पड़ खा लेता है तो नुकसानके बारेमें सोचना बन्द कर देता है. यही आदमीका हाल है.

इस बातकी सच्ची जानकारी होनी ही चाहिए कि कब सुधारकी जरूरत है और कब प्यारकी. यह जानकारी मुश्किलसे मिलेगी. पर होती है बढ़िया और बढ़िया चीजके लिए थोड़ी मुश्किल उठाना बुरा न होगा.

अगर आप सजा दिए वगैर नहीं रह सकते तो आइए, हम आपको एक बहुत बढ़िया सजा बताते हैं. यह सजा सब सजाओंसे बढ़कर अपना असर रखती है. हमारी आजमाई हुई है और वह है यह :

कुसूरवारको उसीपर छोड़ दो

यह कहा जाता है, इनामसे नेकीके पौधेको पानी मिलता रहता है. सोमरस हम नहीं जानते क्या चीज थी. हां, यह पता लगा कि उसे पीकर वेदके ऋषि वेद ऋचाएं लिखते थे. लिखते होंगे. आज भांग पीकर बहुतसे कवि ईश्वरके भेदकी कौड़ी ले आते हैं तो वह सोमरसके जरिए क्यों न सीधे ईश्वरसे बातें करते होंगे. शराब पीकर बढ़िया फैसले लिखनेकी बात इलाहाबाद-हाईकोर्टके एक जजकी सच्ची है. शराबकी और बहुत-सी तारीफें हैं. शराबकी चुस्कीसे बर्तानिया और अमरीका

रानीकी आंखें लाल रहनेकी वजहसे वह सारी दुनियाको पसन्द आ गई है. शराब अक्लको खराब करती है, यह बात अब कोई सुनना नहीं चाहता. इनामका रिवाज लड़कोंको कुन्द-जहन बनाता है, यह भी कोई सुनना नहीं चाहता. शराबकी तरह इनामका नशा चढ़ता है, आंखें लाल होती हैं. उनमें सरूर आता है और वे सब बातें होतीं हैं जो शराबसे होती हैं. इनाम पानेके लिए लड़के चोरी करते हैं. अपनी नेकचलनी पर धब्बा लगाते हैं. तरह-तरहके वहमोंमें फंस जाते हैं. हां, अक्ल भी बढ़ाते हैं, पर वह इस कामकी कि इनामके हकदार न होते हुए हम इनाम कैसे पा लें.

जरूरत-रानीको इनाम जवान जंचा. उन्होंने उससे शादी कर ली. पहला बच्चा हुआ नजर, जिसका प्यारका नाम भेंट है. दूसरा बच्चा हुआ रिश्वत, जिसका प्यारका नाम घूँस है. तीसरा हुआ वजीफा (सरकारी वर्जाफाखोरोंने बड़े-बड़े नाम कमाए हैं) जिसको पंडित लोग पुरस्कार नामसे पुकारते हैं. चौथा हुआ दक्षिणा, जिसका प्यारका नाम दच्छना है. मतलब यह है कि इसने बहुतसे बच्चे जन डाले. इन औलादोंमें इनाम की कितनी सिफतें रह गई हैं यह पता लगाना टेढ़ी खीर है. उन्हें छोड़िए, हमें इनामसे काम.

पहले इनाम पानेवालेने जो नेकीकी थी उसने इनामकी बात कभी नहीं सोची थी. अब भी जितने सचमुच इनामके काम होते हैं उनमें काम करनेवाला इनामकी नहीं सोचता. उसे वैसा करनेकी फुर्सत ही कहां होती है. डूबतेको बचाने के लिए कूदनेवाला इनामकी बात सोचनेके लिए वक्त कहां पाएगा ? गुंडेके हाथमें पड़ी अबलाको बचानेके लिए जानपर खेलनवाला इनाम देनेवालेको कहां ढूंढता फिरेगा ? आग लगे मकानमें से बिलखते बच्चेको आगमें घुसकर निकानेलवाला किस इनामके भरोसे पर कूदता है ? इनाम देनेवाले इनाम पानेवाले मनको नहीं जानते और जान सकते भी नहीं हैं. पर अचरज तो यह है कि इनाम पानेवाला भी अपने उस मनकी याद भूल जाता है, जिस मनने इनाम पानेका काम

किया था. उस मनका एक कण भी उसे फिर वापस मिल जाए तो वह हरगिज इनाम न ले. दो बड़े कामोंका इनाम शायद ही किसीने पाया हो. हां, दो बड़े काम करनेवाले दोसे ज्यादा एक शहरमें मिल सकते हैं. मेरे कहनेका मतलब यह है कि इनाम पाकर मन खुश तो होता है; पर बड़े काम करनेकी काबलियत अगर बिल्कुल नहीं खो देता तो कम तो जरूर कर लेता है. राजा बननेसे पहलेके ऊंचे ख्याल राजा बननेके बाद नहीं रह जाते. क्रामवैल और नेपोलियनकी मिसालें मौजूद हैं.

चीनके संत कांगफूने कितनी समझकी बात कही है कि 'जो दूसरों की भलाईकी इच्छा करता है, उसने अपनी भलाई तो पहले ही कर ली.' इसमें शक नहीं कि भलाईका फल भले पेड़में ही लग सकता है. पेड़ फल देकर अपनेमें का बहुत कम हिस्सा दूसरोंको देता है. इसीसे अंदाजा लगाया जा सकता है कि भलाई करनेवालेका दिल कितना भला होता है. उतना भला दिल क्या इनाम पानेकी सोच सकता है, या अगर मिले तो कभी ले सकता है ?

मनमें एक बड़ी खराबी है. वह बादलकी तरह जल्दी-जल्दी रूप बदलता है. अगर ऐसा न होता तो इनामका रिवाज दुनियामें कभी न पनप पाता. दिलकी कली जब खिलने लगती है तो वह खुशबू देना शुरू करती है. उसी खुशबूको लोग नेकी कहकर पुकारते हैं. इनामकी गरमी उस खिले फूलको कुम्हला देती है. नेकी करनेके ठीक बाद तो सौ-फीसदी इनामके हकदार इनाम लेनेसे इन्कार करेंगे. पर इनाम तो बहुत देरमें मिलता है. तबतक मन-बादल न जाने क्या-क्या रंग बदल चुका होता है और इनाम लेनेकी हालतमें आ चुका होता है. कभी शरमाता-लजाता और कभी उछलता-इतराता उसे ले हीलेता है.

पहले इनाम देनेवालेका इनाम, मनकी उमंग था. शायद वह इनाम न रहकर नोछावर रहा होगा. पर अब तो इनाम रिश्वतका बाप बनता जा रहा है और लालचकी गद्दी हथियाता जा रहा है. नोछावरमें इनामकी असलियत मौजूद है,पर वह तो नेकी करनेवालेको नहीं मिलती,

उसके सगे-संबन्धियोंको भी नहीं मिलती; वह जिसको मिलती है उसे नेकी करनेवाला जानता भी हो, यहांतक जरूरी नहीं है. हमें तो नोछा-वरकी मां वह अरुचि या बेपरवाही मालूम होती है जो इनामका काम करनेवालेने इनाममें दिखाई होगी. इनाम था इनाम देनेवालेके मनकी उमंग, वह बरसते पानीकी तरह बादलको नहीं लौट सकता था, वह इनाम पानेवालेकी बेपरवाहीकी छतरीसे टकराकर गिर गया. उससे उसको क्या सरोकार और इनाम देनेवाले बादलको भी क्या सरोकार!

इनाम कर्तव्यका मैल है. कर्तव्य करनेवाला मन उसको फेंकेगा ही, अपनाएगा कैसे ? पसीना मैल है वह अन्दर रुक जाए तो दुःख देता है, निकल जाएगा तो सुख देगा. कर्तव्य करनेवाला मन सौ-फीसदी इनामकी ख्वाहिश (भगवान् कृष्णकी बोलीमें फलकी इच्छा) को मैलकी तरह निकालता ही है. उसी और सिर्फ उसी ख्वाहिशके निकल जानेसे उसे आनन्द मिलता है. वह आनन्द इतना भारी और गहरा होता है कि कितना ही बड़ा इनाम उसका न तो पासंग हो सकता है और न उसकी तहको पहुंच सकता है. सूरजको किसीने खुश होकर एक जलती मोमबत्ती इनाममें दी, इसे सुनकर लोग जितने हंसेंगे उससे कहीं ज्यादा हंसेंगे यह सुनकर कि वह मोमबत्ती सूरजने इनाममें ले ली. हां, सूरज मावसका चन्दा बनकर वैसा कर सकता है. मनमें यही तो सिफत है कि वह मईके दोपहरके बारह बजेका सूरज भी बन सकता है और भादों की आधी रातका चन्दा भी.

ईश्वरने आदमीको उधार ले-लेकर जीनेके लिए पैदा नहीं किया, वह तो तुरन्त दाम चुकाता है. यह गलत है कि वह मरनेके बाद कुछ देता है. वह नेकीका बदला उसी वक्त देता है और इतना ठीक देता है कि कभी किसीकी शिकायत नही हुई. शिकायत तो एक तरफ, हमने हरेकसे यही सुना है कि इतना बदला मिलता है कि संभाले नहीं संभलता. नेकी करनेके बाद नेकी करनेकी खुशी मिलनेमें इतनी ही देर लगती है जितनी दिया जलने और रोशनी होनेमें. आज साइंस यह

दावा करती है कि चाहे जहां, चाहे जब, मेह बरसाया जा सकता है, क्योंकि हवामें पानी सब जगह मौजूद है. ठीक इसी तरह ईश्वरकी नेमतों, बरदानों, बरकतोंके बादल, सब जगह सब वक्त छाए रहते हैं. नेकी करनेवाले जैसे ही नेकी करते हैं कि वह बरस बड़ते हैं. ऐसी दुनियामें इनामको कहां जगह रह जाती है. झाड़ू देते-देते सफाई हाथ लगती ही है, फिर इनाम कैसा ! पढ़ाते-पढ़ाते अक्ल पढ़ती जाती है, इनाम कैसा ! तुम्हारे मुल्कवालोंको कोई और मुल्कवाला मोटा-ताजा करदे तो तुम रिवाजके मुताबिक उसको इनाम दोगे या नहीं और अगर तुम खुद अपनेको मोटा-ताजा करलो तो तुम इनाम पाओगे या नहीं ? फिर इनाम की तरफ क्यों आंख लगाए बैठे हो ?

इनाम हमारे लिए बला साबित हुआ है. इसको मिटाना ही होगा. अगर यह जिन्दा रहना चाहता है तो नोछावरकी शक्लमे ही रह सकता है.

आदमीका जमीर यानी अन्तरात्मा सच्चा है, भला है और सुन्दर है. सजा सचाईको खा जाती है, भलाई और सुन्दरताको धक्का पहुंचाती है. होड़ भलाईको खा जाती है, पर सुन्दरतामें मदद करती है और सचाईको छोड़ती नहीं. इनाम सुन्दरताको खत्म कर देता है, भलाईको मैला कर देता है और सचाईमे लहरें पैदा कर देता है. सबसे बुरी सजा, उससे अच्छा इनाम और सबसे अच्छी होड़.

होड़ चीज तो अच्छी है. पर भलाई खा जानेका ऐब तो उसमें है ही. होड़मे घमण्ड तो रहता है पर बहुत ही अच्छी किस्मका. घमण्ड अन्दर-ही-अन्दर रहता है, बाहर नहीं आता. असलमें उस घमंडका ताल्लुक अन्दरके गुणोंसे है. हमारे अन्दरके किसी दूसरे गुणको देखकर घमण्ड करना ही होड़ कहलाता है. यह बात न समाजके लिए बुरी है और न एकके लिए. कछवे और खरगोशकी दौड़की कहानी किसने नहीं सुनी. कछवेने होड़ नहीं लगाई थी, होड़ लगाई थी खरगोशने और हारा भी वही. होड़की असलियत क्या है, यह इस कहानीमें

कूट-कूटकर भरी हुई है.

होड़में सबसे बड़ा ऐब यह है कि आदमी बाहर अनेक काम ऐसे कर आता है जिसमें उसे फौरन तो फायदा दिखाई देता है पर आखिरमें वह सारा काम टोटेका काम ही निकलता है. एक मशीनके जरिए, मुर्गीके अण्डोंसे बच्चे जल्दी पैदा कर लिये जाते हैं ; पर वह इतने अच्छे और कामके थोड़े ही होते हैं, जितने वह बच्चे जो ठीक बक्त लेकर पैदा होते हैं.

ऐटम-बम होड़की ईजाद है. वह अमरीकाके लिए कुछ दिन भले ही कामका साबित हो. पर सब आदमियोंके वह कामका साबित नहीं हो सकता. होड़की सभी ईजादें आदमीका नुकसान कर रही हैं और करती रहेंगी.

होड़ बड़े कामकी चीज है, अगर वह काबूमें रक्खी जा सके. मगर वह तो तुरन्त काबूके बाहर हो जाती है. होड़का भलाई-बुराईसे इतना ही ताल्लुक है जितना दौड़नेवालोंको पूरब पच्छिमसे. उनको दौड़नेसे काम. किधर ही दौड़नेका हुक्म दे दो. होड़ भी किधर ही को चल पड़ सकती है.

होड़में एक और ऐब है. वह जल्दी ही नशीली चीज बन जाती है और अपने मालिकपर काबू कर बैठती है.

सुख-सड़क के सूल

आठ

[१]

पहला सूल यह है कि हम हैं, अकेले हैं, पैदा अकेले होते हैं और मरते अकेले हैं. हम पैदा होते ही पुत्र हैं और पुत्र हैं तो हमारे कुछ फरज हैं. पालपोस परवान चढ़े कि पति हैं. पतिके और भी बड़े काम हैं. प्यार-प्यारमें पता न पाया कि कब पिता हो गए. अब तो हमारी जिम्मेदारी बेहद बढ़ गई और वह भी अचानक. हमारी जरूरतें, हमारे चाहे अनचाहे, बढ़ती ही गई. हमारी ख्वाहिशें जरूरतोंसे दो कदम आगे ही रहीं. सच्चे पुत्र, पति या पिता बननेकी जरूरत कभी कम न हो पाई और उन ओहदों का फरज, जैसा हम चाहते थे, कभी अदा न कर पाए. हम समाजके भी हिस्से हैं, यह बात सोचनेका तो हमको दम ही न मिला. एकके नाते जितना-जितना मिलता है, मिलता गया; उतना-उतना ही हमारा बोझा बढ़ता गया. हम सुख चाहते हैं और जीसे चाहते हैं. सुख कैसे मिलता है, उस तरीकेका हमे पता है, पर पा नहीं पा रहे हैं.

क्यों ?

वक्त नहीं मिलता. ईश्वर सुखी है; क्यों कि वह नित कुछ-न-कुछ सिरजन करता रहता है. हम भी सुखी हो सकते हैं, अगर कुछ-न-कुछ सिरजन करना अपना स्वाभाव बना लें. हम चाहते हैं कि मशहूर हो जाएं. उससे हम अमर हो जाएंगे; पर मशहूर होनेकी हवेली भी हम मांगे-तांगे के ईट-गारेसे खड़ा करना चाहते हे ! हमारा बुरा हाल है. ख्वाहिशें हमे एक तरफ खींचती हैं और दोस्त-रिश्तेदार-समाज दूसरी तरफ. हम हैं कि बीचमें रस्सेकी तरह खिंच रहे है. साथिनकी जोरकी चाहसे मजबूर होकर हम समाजके जालमें ऐसे फंसते है कि जिस सुखके लिए फंसे थे, उसीको हाथसे खो बैठते हैं.

इस जालसे निकलनेका एक ही इलाज है, अपनी जरूरतोंको कम करना. एक-एक जरूरतको अपनी सिरजन कलाके बलपर संभालना और उसीके जरिए पूरा करना. यह तो याद रखना ही चाहिए कि अपनेको सुखी बनाकर ही औरोंको सुखी बनाया जा सकता है. सुखी आदमी ही सुख बांट सकता है. दुखी नहीं. सुख, सुखीके बांटमें आ सकता है, दुखीके बांटमें नहीं. रोता या रूठा बच्चा मिठाई पाकर फेंक देता है. हंसता बच्चा अपनी और उस फेंकी हुई मिठाईको भी गप मुँहमें रख लेता है. सुख दौड़ता ही सुखीकी तरफ है. सुखका आनन्द सुखी ही ले सकता है. मिठाईका आनन्द हंसते हुए बालकको ही आता है. जैसे हम है, वैसे और भी हैं. दो 'हैं' टकराएं नहीं, इसीका ख्याल रखना है.

सैंकड़ों सोचते हैं कि सखी और सखा उनके लिए सुख सहेजे बैठे हैं. उनतक पहुंचे नहीं कि दे देंगे. जब वे उनके पास पहुंच, सुख नहीं पाते तो दुखी होते हैं. जिस बैंकमें उनका रुपया नहीं, उस बैंकपर चैक काटना रुपया नहीं ला सकता. उसी तरह जिस दोस्तको उन्होंनें सुख नहीं पहुंचाया, उससे वे सुख पा कैसे सकते हैं ? वे आराम पानेके लिए दोस्त बनते हैं; पर यह नहीं सोचते कि दोस्त भी तो आराम पानेके लिए उनका दोस्त बनता है. दोस्ती बदलेका व्यवहार है. जो दोस्त सुख

नहीं लेता, वह उतना ही बीमार है, जितना वह दोस्त, जो सुख देता नहीं. जिसमें सुख देने लेनेकी ताकत नहीं वह अगर उदार है तो असफल रहेगा, राजनेता है तो नाकामयाब रहेगा और अगर प्रेमी है तो अपने प्यारेका प्यार न पा सकेगा. हरेक, हरेकको दोस्त नहीं बनाता; क्यों कि हरेक, हरेकको दोस्तीकी नजरसे नहीं देखता. जो एक-दो देखते हैं, उन्हींसे एक-दो, दोस्तीका नाता जोड़ते हैं. ऐसे आदमी मिल सकते हैं, जिनके सैकड़ों दोस्त हों. पर वे वही होंगे जिनके पास देने के लिए बेहद सुख है. सुख देनेको किनके पास बहुत है ? उनके पास, जो सफल गृहस्थ हैं, जो अपने बूढ़े मां-बाप, घरके कामके बोझसे लदी पत्नी और अपने देवता सूरत और सीरत (स्वभाव) बच्चोंको सुख पहुंचाते हैं. वही दोस्तोंको भी सुख बांट सकते हैं.

इन्सानी हमदर्दी और मुहब्बतके नाते हमसे आदमी-जातकी खिदमत चाही जाती है. देश-प्रेमके नाते हमसे देशकी खुशहालीके लिए मदद मांगी जाती है. फर्ज और कामके नाते हमसे संस्थाओंको कामयाब बनानेके लिए कहा जाता है. पर यह नहीं बताया जाता कि हम किस नाते दोस्तीके पौधेको पानी दें ? न बतानेकी वजह साफ है. ऊपरके सब कामोंमें दोस्ती ही तो काम करती है. बस वहां दोस्तीका रस मठेकी तरह बढ़कर इतना पतला हो जाता है कि उसमें दोस्तीका कुछ भी स्वाद नहीं रह जाता.

सैकड़ों-हजारोंकी दोस्ती भी कोई दोस्ती है ! स्कूलों, कारखानों, दफ्तरों और फौजोंमें दोस्तीकी इसी वास्ते मिट्टी पलीद होती है. दो आत्माओंके मिलनसे दोस्तीका रस तैयार होता है. पर आजकलकी आपाधापीमें इस मिलनकी फुरसत कहां ! इसी वजहसे मिलता है दोस्तोंका झमेला. जिस होड़के जंजालमें हमने अपनी जिन्दगियां फंसा दी हैं उसमें फंसे हम एक-दूसरेको कभी ठीक-ठीक नहीं समझ पाएंगे, फिर दोस्त पानेकी बात तो भूल ही जानी चाहिए. हम लाखोंकी आबादीवाले शहरमें रहते हैं, सही, पर अकेले परदेशी जैसे! हम पचासों

आदमियोंकी भीड़में गाड़ीके डिब्बेमें सोते जरूर हैं, पर ऐसे ही, जैसे एक कैदी अपनी अकेली कोठरीमें ! होटलोंमें दसियोंके साथ खाकर भी केवल अकेले खानेका मजा ले पाते हैं. मतलब यह कि हम चाहें सोएं, खाएं-पीएं, खेलें-कूदें, नाचें-गाएं, हैं अकेले-के-अकेले ! यह है जिन्दगीकी सबसे बड़ी सजा और यही है सबसे बड़ा दुःख. दुःख इक्का-दुक्का दोस्त ही बंटा सकता है, दोस्तोंकी भीड़ नहीं. दुःख रिश्तेदार ही बंटा सकते हैं, रेलके मुसाफिर नहीं. सुख भी कई गुना बढ़ सकता है, पर दोस्त और रिश्तेदारोंमें बैठकर. दफ्तर, कारखाने, स्कूल, ये हमको दम कहां लेने देते हैं ! न बात करनेकी घड़ी, न बच निकलनेका क्षण, न सर उठाने का वक्त ! दोस्तीके पौधेको पानी कौन दे ? उसकी तरफ आंख उठाने-का तो मौका ही नहीं मिलता. अब सुख मिले तो कैसे ? आए तो किधरसे ?

हमें कमाल हासिल करनेका रोग लग गया है. आंख बनाने यानी आंख फोड़नेका कमाल ! नाक बनाने यानी बेकार करनेका कमाल ! दांत लगाने, नहीं-नहीं दांत तोड़नेका कमाल ! एक लफ्जमें, जेब काटने-का कमाल ! और यही आजकलकी साफ-सुथरी आत्माओंकी मांग है. तब दोस्त बनानेकी किसे जरूरत. रहो अकेली कोठरीमें, खेलो ताशका इक्कल-खेल. याद रक्खो, कमाल, शोहरत, दौलत, कोरे घमंड नहीं हैं; पर तुमने घमण्ड बनाकर उनको अपनी सुखकी सड़कके बीचमें डालकर सूल बना लिया है. चलो अब इन कांटोंपर और बीनों पदवियोंकी कंक-रियां, नामके ठीकरे और सोने-चाँदीके ठीकरे.

दोस्तों, रिश्तेदारोंकी खातिर अगर पदवियां छोड़ीं, नाम फेंका और पैसा तर्क किया तो भी काम न चलेगा. इसके बिना आजकल वहां भी तुमको कोई न पूछेगा.

तब ?

जगाओ अपने भीतर बैठा कलाकार, जिसे कमालके रोगने अपने पांव तले दबा रक्खा है.

समाजको सुगढ़ बनानेकी समझ थोड़ी-बहुत सबमें है. पर उसे मौका तो मिले, उसे वैसा करनेकी आजादी तो हो, उसकी तरफ कोई आंख उठाकर देखे तो, वह खुद भी किसी तरफ आंख उठा पाए तब ही तो वह भोंडी सभ्यतामें अपने हिस्सेकी सुघड़ाई पैदा कर सकेगा. जो सच नहीं वह सभ्यता नामवाली कोई और चीज है, सभ्यता नहीं. जो सुन्दर नहीं, वह भी सभ्यता नहीं और जो सुखदायी नहीं वह तो सभ्यता हो ही नहीं सकती. मां बनकर ही औरत सुन्दर होती है, सच्ची होती है, सुख देनेवाली होती है. बाप बनकर ही आदमी सुन्दर होता है, सच्चा होता है. बापसे हमारा मतलब है बच्चोंको पालने-पोसनेवाला बाप. मां-बाप बनना माने आगे चलनेवाला बनना, हादी बनना, सुख इसीमें है. अन्धे को राहपर लगाकर पांच बरसका बालक भी बापके सुखका मजा ले लेता है. अन्धी, बुड्ढी भिखारिनका गिरा पैसा ढूंढ देकर पांच बरसकी लड़की भी मनमें मां-पनेकी गुदगुदी पा लेती है. आदमीका अपना भला इसीमें है कि वह काबलियतसे काम ले और समाजका भी भला आदमीके भलेमें है.

मिल-युग यानी कारखानेकी खपतने सबसे बड़ा नुकसान यही तो किया है कि इसने औसत आदमीकी काबलियतको कुचल डाला है. यों इसने सभ्यता-देवीको काना, बूचा और लूला-लंगड़ा बना दिया है, सुन्दर सभ्यताको भोंडी, भद्दी, बेकान पूंछवाली भैंसमें बदल दिया है. आज इक्का-दुक्का वह काम कर ही नहीं सकता, जिसको वह सबसे अच्छा करना जानता है. करना उसको वह पड़ता है जो मिल-मालिकों और कारखानेदारोंको उससे कराना है. जी-लगती बात की, कि उसपर फटकार पड़ी और फौरन उसे रोका गया. अगर उसने कुछ इस वक्त तक बना ही डाला तो तोड़-मरोड़कर ज्यों-का-त्यों कर दिया. उसको वही करना चाहिए, जो उसके मालिकको ठीक जंचे ! एक आदमीको उत्साह का काम दे दिया जाता है और फिर उससे कहा जाता है कि तुम वह सिखाओ, जिसका सिखाना तुम ठीक नहीं समझते, या बुरा समझते हो.

विज्ञानी बम बनाना मानव-जातिके भलेकी बात नहीं मानता, पर उसको बम बनानेके काममें ही जोत दिया जाता है. कलाकारसे तस्वीरें बनवाई जाती हैं, पर लड़ाईकी इश्तिहारबाजीकी तस्वीरें ! मूर्त्तिकारसे मूर्तियां बनवाई चाती हैं ; पर लुटेरोंकी. लिखनेवालोंसे किताबें लिखवाई जाएंगी, अखबार-नवीसोंसे अखबार लिखवाए जाएंगे, पर इनमें बात वह रहेगी, जिसको लिखनेवाला जीसे नहीं चाहता. टकसाल-ज्वालामुखीसे निकला चांदीका लावा इतना जोरदार नहीं होता जितना छापेखाना-ज्वालामुखीसे निकला सीसेका लावा. मतलब यह कि सभ्यताके नामपर आज सब-के-सब उस कामके करनेमें लगे हुए हैं, जिसे जीसे वे बुरा भी समझते हैं. और दूसरी तरफ सब-के-सब उसे माने जा रहे हैं, जिसको उनके जीने नहीं माना. सभ्यताकी ऐसी उपजमें जिसे सुन्दरता दिखाई देती है, वह सचमुच सुन्दर है, हम तो यह कहनेकी भी हिम्मत नहीं कर सकते.

जो हम अपने मामूली साधनोंसे देखें, सुनें, सीखें, उनके पकड़नेकी कोशिशके बाद, कुदरती तौरपर जो हमारे हाथ लगे, वही सुन्दर होता है और उसीका नाम सुन्दरता है. सच्ची खूबसूरती उसीमें मिलेगी. पर उसको तो पैसेके बलपर कारखानेदार और जबरदस्तीकी बनी हुई सरकारें आए दिन बेपरवाहीसे कुचल-कुचल मिट्टीमें मिला रहीं हैं. ऐसे काम करा रही है जिससे आगे वह सुन्दरता कभी पनप ही न पाए. जो चीज बदलेमें दी जा रही है, वह हैं झूठी, झुलसी, झुंझलाई सुन्दरता, जिसकी हमारे जीसे जुगत नहीं जुटती. हम करें क्या ? उसमें हमारे सच्चे 'स्व' की सूरत कहीं नहीं दीख पड़ती. हम उसे अपनाएं तो कैसे अपनाएं ?

समाज कुछ चाहता है, हमारी अपनी आत्मा कुछ. दोनों एक कोना बनाकर चल रहे हैं और हर सैकिण्ड एक-दूसरेसे दूर होते जा रहे हैं. अब हम क्या करें ? क्या अपने मनकी करें ? क्या समाजके ही मनकी किए जाएं ? क्या कोई समझौता कर लें, जिससे दोनोंके सुखकी राह

निकल आवे ?

मनको न करना माने अपनेको कुर्बान करना और समाजको नुकसान पहुंचाना. समाजकी न करना माने समाजको कमजोर बनाना और अपने ऊपर भी आफत बुलाना. न अपनेको कुर्बान करो, न समाजको. बीचका रास्ता ठीक रहेगा. इसीमे दोनोंका भला है.

सिर्फ जीनेके लिए नहीं, अपने 'अहं' के साथ जीनेके लिए हमें यह करना चाहिए ही कि हम अपनेको विकसाते रहें और समाजके सामने पेश करते रहें. जीनेका यह मतलब तो होता ही आया है कि हम अपने पीछे अपनी औलाद छोड़ जाएं. खाने-पहनने, सोनेकी तरह औलाद होना जरूरी है. हरेकके मनमें यह बात अच्छी तरह जमा देनी चाहिए कि उसका और समाजका, दोनोंका ही जीता रहना जरूरी है. हममें से कोई अगर ज़्यादा काबिल बननेकी ज़रूरत रखता है, वह वैसा जरूर बने. पर वह यह ख़्याल रखे कि उसकी वह काबलियत उसकी निरी अपनी न हो, उसकी जिन्दगीके सारे कामोंपर उसका असर पड़े, जिससे सारे समाजको फायदा पहुंचे.

आजकलकी हवामें किसी भी बातपर हमारा कुछ भी बस नहीं रह गया. यही वजह है कि हम जिन्दगीके मामूली-से-मामूली कामोंको भी भले आदमीकी तरह नहीं कर सकते. हम भले होते हुए भी अपने कामोंको भले आदमियोंकीं तरह नहीं कर सकते. कारखानेके मालिक और इस तरह हमारे भी मालिक हमको भला आदमी देखना ही नहीं चाहते. मालिकको पैसा चाहिए, नाम चाहिए, ताक़त चाहिए और उसकी इन ख्वाहिशोंकी वेदीपर हमारी भलाईकी कुर्बानी होनी ही चाहिए; यही है आजकी सभ्यता ! जिन कामोंके जरिए हम भले बन सकते थे और समाजको ऊंचा उठा सकते थे, उन्हीं कामोंके जरिए आज हम अपने मालिकोंके लिए पैसा कमानेमें जुटे है. खूब! ! हमारी राहका यह कांटा तो हटाना ही होगा. इसके हटे बिना हम दोस्ती-जैसी नायाब चीज नहीं पा सकेंगे.

अपने सरपरसे मालिक हटाकर, अपने मालिक आप बनकर, अपना खाना-कपड़ा आप जुटाकर ही हम सुख पा सकते हैं और सुख पहुंचा सकते हैं. पूंजीपति हमे पनपने न देंगे. हम पिसते रहेंगे और यह जानतक न पाएंगें कि हम पिस रहे है. आदर्श बदलकर, नई कथाएं गढ़कर, रस्म-रिवाजोंको कुचलकर ही हम सुखी हो सकते है और यही करना ही सुख-सड़कके सूल समेटना है.

[२]

दूसरा सूल है कि हम जानदार हैं. खाना, कपड़ा, मकान हमें चाहिएं ही. इन तीनोके हम पैदायशसे हकदार है और थोड़ा-बहुत ये तीनों हमें मिलते भी रहे हैं. बड़े होकर हमको इस तरह रहना है कि हम अपनी ये तीनों जरूरतें आसानीसे पूरी करते रहें. मेहनतसे हम जी नही चुराते, पर मेहनत ही मेहनतके हम नहीं बनना चाहते. हम कोरे जिस्म बनना नहीं चाहते. हम कोरे जिस्म नही है. हममें आत्मा है, जो अपनी खुराक चाहती है. वह अपनी खुराक मुंहके जरिए नहीं खाती, मस्तकके जरिए खाती है. उसकी खुराक हाथोंसे नहीं जुटाई जा सकती, कान, आंख, नाक, जुबानसे जुटाई जाती है. हाथ-पैरोंको आराम मिलने से आत्माका कुछ पेट भरता है. आत्माका पेट भरनेसे हाथ-पांव खुश होते है. उनमे जान आ जाती है और वे पहलेसे ज्यादा कामके काबिल हो जाते हैं. इसलिए और सिर्फ इसीलिए अगर हमारे कौमी पैसेका बंटवारा इन तीन कामोंको ध्यानमें रखकर किया जाए तो हमारी बहुत-सी जरूरते मिट सकती है और ज्यादा-से-ज्यादा ख्वाहिशे पूरी हो सकती हैं. आत्माको भी खुराक मिल सकती है. वह तीन बाते है :

(१) हमें अपनी जरूरतोंको पूरा करनेके लिए दूसरोंका मुंह न ताकना पड़े यानी स्वाधीनता, आत्म-निर्भरता, अपने पांवोंपर आप खड़े होना.

(२) ऐसा काम मिल सके, जिसमें हमारा जी लग सके.

(३) इन चीजोंका पूरा पक्का टिकाऊ काम. ध्यान रहे कि हमको

अपनी जरूरतें और ख्वाहिशें ही पूरी नहीं करनी. हमें ऐसी हवा पैदा कर देनी है, जिसमें हमारी आत्मा भी सुखी रह सके. इन तीन बातोंके बिना हम दुनियाकी सारी चीजोंसे घिरे रहकर भी दुखी ही रहेंगे.

एक आदमी जो अपने बापसे लाखोंका धन पाता है, उसकी तसल्ली उतनेसे क्यों नहीं होती ? तसल्ली यों नहीं होती कि उसको इस बातकी पक्काहट कहां है कि वह लाखोंका धन उसके पास ही बना रहेगा और यह कि धन न रहनेपर वह अपनी जरूरतकी चीजें अपनी मेहनतसे कमा सकेगा. उसे जी चाहा काम मिलनेतककी भी पक्काहट नहीं है. यही वजह है कि वह लाखों होते करोड़ों कमानेमें लग जाता है. वह अपनी आंखों देख रहा है कि जरूरतें पैसेसे ही पूरी होती हैं और हर कोई पैसा कमानेमें ही लगा है. रह गए वे जो गरीब घरमें पैदा हुए हैं. वे भी पैसा कमानेमें लगते हैं. पैसा कमानेके माने होते हैं अपनेको वहां फंसाना, जहां जानेको जी भी नहीं चाहता. जो हमारा मुल्क हथिया ले, वह हमारा दुश्मन हुआ. पर पैसे की खातिर हमको उस दुश्मनकी भी नौकरी करनी पड़ती है. उस नौकरीमें सुख कैसा ? और आराम कहां ? पेटको लोग पापी कहकर कोसते हैं, पर पेट पापी है नहीं. पेटको पैसा कमाकर भरना पाप है. अनाज उगाकर उस अनाजको खाना और फिर पेट भरना पुण्य है और धर्म है.

अब रह गए वे लोग जो गिनतीके लिहाजसे बहुत थोड़े हैं; पर उसूलके बड़े पक्के हैं और ऊंची जिन्दगी बिताना चाहते हैं. वे आम लोगोंके रास्ते चलना नहीं चाहते और यों अपना असली सुख खोना नहीं चाहते. पेटकी खातिर नौकरी करना उनको नहीं जंचता. बड़ी-से-बड़ी नौकरीमें न पक्काहट है और न छोटी-से-छोटीमें. नौकरी हो और जी चाही हो; यह कभी हो ही नहीं सकता. नौकरीके बदले जो पैसे मिलते हैं वह उस कामके हिसाबसे बहुत कम होते है, जो हम करते हैं. वह असलमें उस स्वाधीनताके पैसे होते हैं जो हम जाने-अनजाने नौकरी करते ही मालिकके हाथ बेच देते हैं. स्वाधीनताको ही सुख नामसे पुकारा गया

है. फिर सुख बेचनेकी बात ऊंचे दर्जेके आदमियोंको कैसे पसन्द आ सकती है और वे कैसे स्वाधीनता बेचनेवालोंकी राह चल सकते हैं.

आदमी दो तरहके होते हैं—एक मोल-पसन्द और दूसरे तोल-पसंद. दुशाला मोलमें भारी होता है और कम्बल तोलमें. आजकी दुनिया तोल-पसन्द बनी हुई है. तोल-पसन्द लोग खुल्लम-खुल्ला आदमी जातकी मेहनतको हड़प रहे हैं और आदमीजात लुटती हुई भी इस आर्थिक गुत्थीका सुलझाव नहीं पा रही है. तोल-पसन्दोंके गले वह बात उतर ही नहीं सकती. तोल-पसन्द गिनतीमें थोड़े हैं ; पर भेड़चाल चलने वाले रूढ़ि-पसन्द, तोल-पसन्दोंके साथ हैं. इससे उनकी तादाद बहुत हो जाती है. वे सब मिलकर रूढ़िका राग अलापने लग जाते हैं. यह ही हर बुरी चालको चलते रहनेकी बात जीसे चाह सकते हैं. पर जिन आदमियोंको अपनी राह अपने आप बनाना आता है, वे रूढ़िके मिट जानेमें ही अपना और समाजका भला मानते हैं और मानते रहेंगे.

आजके बाजारका निचोड़ है, बेचो और खरीदो. यही है आजके तोल-पसंदोंके मगजकी सूझ. यही है आजकी आर्थिक नीति और इसीका है जगह-जगह प्रचार. इस नीतिमें सुख कहां ! सट्टा और सुख अन्धेरे और उजालेकी तरह एक जगह रहनेवाली चीज़ें नहीं. सटोरियेको आत्म-सुख ठुकराते झिझक ही नहीं होती. सटोरिया सिर्फ खाने और कमानेको काम समझता है. इतना ही नहीं, वह उसको बहुत ऊंचे दर्जेका काम समझता है सटोरिया नई व्यापार-नीतिके नीचे दबा हुआ यह मानता रहता है कि वह व्यापार-नीतिको अपनी पीठपर संभाले हुए है. हमें चाहिए सुख और सुख भोगनेकी समझ. इस सुख और सुख भोगनेकी समझकी खातिर हम सारे कारबारमें उलट-फेर चाहते हैं और सारी तिजारतकी शक्ल बदली हुई देखना चाहते हैं.

जबतक हम दूसरेके बताए काममें लगे रहेंगे और यों जबतक हम दूसरोंसे पैसा पाते रहेंगें, हम वैसे रहना न सीख सकेंगे, न रह सकेंगे, जैसे हम रहना चाहते हैं. और जबतक हमको ठीक रहना ही नसीब

नहीं, हम आजाद कहां ! सुख-सड़कका यह दूसरा कांटा हमें हटाना ही होगा. पहले हम राजा-नवाबोंके गुलाम थे, अब सेठोंके, कारखाने-दारोंके!! सभ्यता भले ही तोल-पसन्दोंके लिए हिरनकी चाल दौड़ी चली जा रही है, हमारे लिए तो वह कछुएकी चाल ही है. रूढ़िरानीके रथ के बैल हम, कानूनीदेवीके किंकर हम, कंट्रोलदेवके कहार हम, सेंसर बहेलिएके शिकार हम !! क्या इसीका नाम सभ्यता है ? तोल-पसन्द जुटे हैं भाइयोंको लूटने और गुलाम बनानेमें. उनको फुरसत कहां कि वे यह सोचें कि सुखी जीवन क्या है !

भूसा और भूसीके लालचमें गाय दूध दुहा लेती है और अपने बच्चोंको गुलामीके जालमें फंसा देती है. घास-दानेकी खातिर घोड़ा पीठ तुड़-वाता और छाती छिलवाता है. दूसरों के बसमें आना, दूसरोंके भरोसे रहना, अपना पैदायशी हक—आज़ादी—खोना है और फिर सुख तो खो ही जाता है. भूसीके बदले दूध लेना और घासके बदले सवारी, यह इन्साफ नहीं है. यह नाइन्साफीसे भरा सौदा है. आजके अर्थशास्त्रकी जड़में यह नामुनासिब सौदा मौजूद है. उसी सौदेके बलपर तै की जाती हैं तनख्वाहें और चीजोंके दाम ! कानून यह है कि लेन-देन उसी हिसाबसे होता है, जिस हिसाबसे लेन-देन करनेवाले दोनों दल, लेन-देन करनेसे इन्कार करनेमें आजाद हों. यानी अगर बेचनेवालेको बेचना ही है और खरीदनेवालेको खरीदना ही है तब तो दाम ठीक लगेंगे और अगर बेचनेवालेको बेचना ही है और खरीदनेवालेको खरीदनेकी जरूरत नहीं तो बेचनेवालेको दाम पूरे नहीं मिलेंगे. या अगर खरीदनेवालेको खरीदना ही है और बेचनेवालेको जरूरत नहीं तो खरीदनेवालेको दाम बहुत ज़्यादा देने पड़ेंगे.

आज दुनियामें ऐसी हालत पैदा कर दी गई हैकि बेचने और खरीदने वाले दोनोंके ही दोनों कभी पूरे आजाद नहीं पाए जाते. कहीं खरीदने-वाला मजबूर है तो कहीं बेचनेवाला. कारखानेवाले, कोठीवाले, सब तोल-पसन्द होते हैं. ये गिनतीमें बहुत कम हैं. पर मुल्कपर इतने छा

गए हैं कि उन्होंने अपने-आपको बेचने-खरीदनेके लिए हर तरह आजाद बना लिया है और खुला हुआ कर लिया है. दूसरी तरफ हैं हम, जो हर तरहसे गुलाम और जकड़े हुए हैं. एक बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई है. या तो हम तोल-पसन्द बनें या उनकी गुलामी करें. मोल-पसन्द बनने की सोचें तो कैसे सोचें ? आजाद हुए बिना मोल-पसन्द बनना कैसा ? इस वक्त सारी ताकत तोल-पसन्दोंके हाथमें है. वे हमें चाहे जहां लगाएं, चाहे जो काम लें, चाहे जिस तरह हमारा उपयोग करें. अब हमें यही चाहिए कि हम जोर लगाकर इतने आजाद तो हो ही जाएं कि अगर हमको उनकी नौकरी ही करनी पड़े तो हम अपनी शर्तें उनसे मनवालें यानी हम यह काम करेंगे, इतना काम करेंगे और इतना लेंगे.

बड़ी बात तो यह है कि हम मोल-पसन्दोंकी तोल-पसन्दोंको हर घड़ी बहुत जरूरत रहती है. उनके कारखाने हमारे बगैर एक मिनट नहीं चल सकते. पर हमको अपनी ताकतका पता नहीं. हमारी इस अजानकारीसे वे खूब फायदा उठाते हैं. अगर आज हम हिम्मत करके कह दें कि तुम्हारा काम नहीं करते तो कल कारखानेवाले हमारे वशमें आ जाएंगें. और इतने ही वशमें आजाएंगे जितने आजतक हम उनके वशमें थे. असलमें हम उनके वशमें थे नहीं. हम तो सिर्फ वैसा समझे हुए थे. वह सचमुच हमारे वशमें हो जाएंगे और वे यह बात आज भी जानते हैं. पर यह सोचने-समझनेसे नहीं होगा. यह होगा अपनेको थोड़ा-बहुत अपने पांवपर खड़े करने से.

काबलियत हममें तब ही आ सकेगी जब यह सचाई हम अपने गले उतारलें कि पहले एक, पीछे समाज. यही सच्ची बात समझकी है और अक्लकी है. एक-एक बूंदसे तालाब बनता है, यह सच है. पर यह भी सच है कि एक-एक गन्दी बूंदसे गन्दा तालाब बनता है और एक-एक साफ बूंदसे साफ तालाब बनता है. सभ्यता आदमीके लिए है, आदमी सभ्यताके लिए नहीं. तुम्हारी समझमें तुमको जो काम सबसे अच्छा और मन-जंचता मालूम हो, तुम उसी काममें लग जाओ. उसीके जरिए

तुम एक-न-एक दिन इस काबिल बन जाओगे कि दुनियाके सभ्यता-भण्डारमें अपनी देन छोड़ सको.

जिस आर्थिक निजाममें हमें जरूरी आरामकी चीज़ें न मिलें, जिसमें हमें अपनी मर्जीका काम न मिले, जिसमे हमे यह भी हक न हो कि हम उस कामके करनेसे इन्कारकर सकें जो हमारी मरज़ीके ख़िलाफ हो वह निजाम कैसा ? वह न हमारे कामका, न समाजके.

सभ्यता दिन-पर-दिन भोंडी होती जा रही है. सुघड़ तभी हो सकती है जब हम उनके लिए एक रास्ता निकाल दें, जो ऊंची जिंदगी बिताना चाहते हैं. उनको अपनी कामनाओंके विकास और प्रकाशका पूरा मैदान मिलना ही चाहिए. तब ही तो वह दुनियाको आगे बढ़नेका रास्ता दिखा सकेंगे.

तोल-पसन्दोंको पीढ़ियों, सदियों, युगोंतक यह न सूझेगा कि सुखको टाले जाना बुरी चीज है. उनके अपने लिए भी बुरी चीज है. तो क्या हम सुखका तरीका अपनाएं ही नहीं ? हमे पता है कि नए और ऊंचे विचार जल्दी जगह बना लेते हैं. यह दूसरी बात है कि वह देरसे फलते और फूलते हैं.

जैसे-जैसे हमारा रहन-सहन ऊंचा और और ऊंचा उठता चलेगा वैसे-वैसे ही हम सुखी होते चले जाएंगे और वैसे-वैसे ही सभ्यताका भोंडापन कम होता चला जाएगा.

सुख-सड़कका आर्थिक सूल हटाना ही होगा, अगर सच्चा सुख पाना हमने तय कर ही लिया है.

[३]

तीसरा कांटा है, हमारा तन. हाड़-मासका कहकर उसे दुरदुरानेसे काम न चलेगा. खून-पीवकी थैली बताकर उसकी खिल्ली उड़ानेसे भी कुछ हाथ न आएगा. नाक सिकोड़कर, मुंह बिचकाकर 'गू-मूतकी ठिलिया' कह डालनेसे भी उससे पीछा न छूटेगा. जीते रहनेके लिए उसमें कुछ ड़ालना ही होगा और निकालना भी होगा. दौड़ना-भागना

भी होगा और लेटना-सोना भी. याद रहे, बेपरवाहीसे डालने-निकालने, काम करने और आराम करनेसे जीते रहनेका, सुख न मिलेगा. सांस न लेनेकी बेकायदगीसे जब तन तिलमिला उठता है तब खाने-पीने या सोने-जागनेकी बेक़ायदगीसे वह क्यों न घबरा उठेगा ?

आज हो क्या रहा है ? न तनको ढंगकी खुराक है, न ढंगका काम न ढंगका आराम. जो उसको दिया जाता है उसका नाम है तनख्वाह. नाम बहुत सुहाता है. पर जो उसके नामपर मिलता है वह है बेहद घिनौना. तनख्वाहके माने हैं तन-चाहा यानी मन-चाहा और मिलता है सख्त, सूखा सफेद रुपया. न हाथसे टूटे न दांतसे चबे. या फिर मिलता है बुरी तरह स्याहीसे लिथड़ा कागजका नोट. सुना है, उसे बकरी-गाय खा जाती हैं. आदमी खाते नहीं सुना. अनजान बालक भी उसे कभी-कभी मुहमें दे लेते हैं, पर ऐसा करते ही तुरन्त उनकी माताओंको दौड़ना पड़ता है और मुंहमेंसे निकालना पड़ता है.

मतलब यह कि तनख्वाहके नामसे मिलनेवाली चीजें तनमें डाले जाने काबिल नहीं होतीं. इतना ही होता तो बुरा न था. पर उन ठीकरों और कागजके टुकड़ोंने खाने-पहननेकी चीजोंको ऐसा नचा डाला है कि कुछ तो उनको बेहद खसोट लेते हैं और बहुतसे बिल्कुल थोड़ा, और कभी-कभी कुछ भी नहीं पाते और खिसियाकर रह जाते हैं. या फिर इन्हीं ठीकरों और कागजके टकड़ोंके घेरेसे कुछ तो उस चक्करमें चट जा पहुंचते हैं और बहुतसे प्रयत्न करके भी वहां नहीं पहुंच पाते. नतीज़ा इसका अब यह हुआ है कि कुछको छोड़कर सभी तनको तपा रहे हैं. आराम नहीं पा रहे हैं. सबको जो थोड़ा-बहुत मिलता है, उससे उनको सुख नहीं मिलता दुख ही मिलता है. क्योंकि उनको सिखा दिया गया है कि इस तरह रहना चाहिए. जब बीमार पड़ो तो डाक्टरोंके पास जाना चाहिए. पेटेण्ट दवाइयां खानी चाहिएं.

और न जाने क्या-क्या करना चाहिए. हमें अपने तनके बारेमें न जाने क्या-क्या बातें बता रखी हैं. वे बतानेवालोंके लिहाजसे चाहे कितनी

ही सच क्यों न हों, हमारे लिए वे बिल्कुल बुरी और गलत साबित हो रही हे. उनमेंसे कुछ तो वही हैं, जो कथा-पुराणोंमें लिखी हैं और हमारे पुरखोंसे चली आ रही हैं. बहुत-सी वैसी ही और गढ़ ली गई हैं. जिनको खाना-पीना, पहनना-रहना ठीक-ठीक नहीं आता उनको धड़ाधड़ लूटा जा रहा है !

तनको ठीक रखनेकी, ठीक राह बतानेवाली किताबोंकी कमी नहीं. पर उनको पढ़नेकी तकलीफ़ गंवारा कोई नहीं करता ! उनका वैसा शोर भी नहीं मचाया जाता, जैसा झूठी बातोंका; क्योंकि वे कारखानेदारोंके लाभकी चीजे नहीं. इतना ही नहीं कारखानेदार उन अच्छी किताबोंको यह कहकर कि इनके लिखनेवाले बी० ए०, एम० ए० या एम० डी० नहीं थे, आए-दिन बुराई करते रहते हैं. वे यह चाहते ही नहीं कि हम सीधे रास्तेपर आ जाएं. वह तो हमको अपने रास्तेपर चलाकर ही हमसे काम ले सकते हे और हमें लूट-खसोट सकते हैं. जबतक हम कारखानेदारोंके सिखाए काम सीखते रहेंगे तबतक हम उन्हींके कारखानोंमें काम करते रहेंगे. जबतक उन्हींके उठाए-बैठे हम उठतेबैठते रहेंगे और उन्हीके जगाए-सुलाए जागते-सोते रहेंगे तबतक हम यह सोच-समझ ही या तय कर ही न पाएंगे कि हम कैसे रहें, कैसे खाएं, कैसे पहनें और कैसे आराम करें.

अगर जिन्दगीका सच्चा सुख पाना है तो ये 'कैसे' जरूर तय करने पड़ेंगे.

आजकी सभ्यता कारखानेदारोंकी दासी बन गई है और यही सभ्यता हमारी मां बनी हुई है ! इसने खिला-खिलाकर हमारे पेट खराब कर दिए हे. किसीको कब्ज है तो किसीको हजम ही नहीं होता. किसीको बहुत कम भूख लगती है, किसीको लगती ही नहीं. इस मांने न जाने हमें क्या खिलाया है कि हमारी नसें सुन्न हो गई हैं. हमारा बदन गिरा जाता है. हम उठते ही नहीं. हमें ही नहीं, इसने हमारी नसलको बौना और बुजदिल बना दिया है. हमारे लिए आए दिन यही मां हस्पताल,

दवाखाने, पागलखाने, कोढ़ीखाने और न जाने क्या-क्या खोलती जाती है. सुख पानेके लिए जितना दम चाहिए वह तो हम मिलोंकी भट्टियों में फूंक चुके या दफ्तरोंकी कागजोंसे लदी मेज-रूपी वेदीपर बलिदान कर चुके हैं. जो कुछ बचा है वह दफ्तरों और मिलोंके काम करनेके लिए जरूरी है, नहीं तो वह दम भी इस सभ्यताडायनने चूस लिया होता.

हमें भूख नहीं है. सभ्यता-मां कहती है, "खाओ बेटा, खाओ. देखो न, मिलकी सीटी बज गई है और दफ्तरकी घंटी हो गई. और हां, स्कूलका टैम हो गया. हां, देखो कुछ साथ ले जाना न भूलना." कितनी प्यारी मां है. इसको तोल-पसन्दोंने डायन बना दिया है, इसको यह पता ही नहीं. मोल-पसन्दोंसे इसका पाला नहीं पड़ता. और पड़े भी तो सुन लेगी, उनकी तारीफ कर देगी; पर उनके बताए रास्तेपर चलेगी नहीं. तोल-पसन्दोंके सफेद ठीकरे और लिथड़ी धज्जियां इसकी आंखोंमें ऐसी बस गई हैं कि अगर कोई इसको दस सेर दूध देना चाहे, या दस धज्जियां, तो यह धज्जियां लेना ही पसन्द करेगी. दस सेर दूध को झंझट समझेगी, झंझट. वाहरी मां !!

दुनिया भरके समझदार कहते हैं, "धीरे-धीरे खाओ, चबा-चबाकर खाओ." यह मां है कि कहती है, "बेटा जल्दी-जल्दी खाओ. कामपर जानेका वक्त हो गया है. सीटी बज गई है. तोप छूट गई है." घोड़े घुड़सालमें जल्दीमें होते हैं; पर इतनी जल्दीमें नहीं. यही हाल बैलोंका बैलखानेमें. और लीजिए, "जल्दी खाओ, सिनेमा जाना है. क्रिकेटका वक्त हो गया है, फुटबालका मैच शुरू हो गया होगा." वाह, कितना ख्याल है इसको हमारे खेलका और सुखका!

हाथसे बनी खांड़ खाकर जितनी गरमी और तन्दुरुस्ती हम पा जाते थे, उतनी आज हम हाथसे न छुई हुई तानेदार शक्करसे नहीं पा रहे. न सही, वह तो हमें बीमार न डाले तो ही हम उसके गीत गा दें. पर वह अपनी उस आदतको भी नहीं छोड़ पाती. नानबाइयोंका पकाया हुआ, डाक्टरोंका चखा हुआ, खानसामाओंका परोसा हुआ, नौकरोंके

साफ किए बर्तनोंमें खाकर हम समझ बैठे हैं कि हम बढ़िया, खालिस, पवित्र, जायकेदार, तन्दुरुस्त बनानेवाला खाना खा रहे हैं. क्या कहना है!! हमको पता ही नहीं कि गेहूंकी जान निकाल दी कारखानेकी भभकती चक्कीने, गन्नेकी जान निकाल दी कारखानेके दहकते कोल्हूने और दूधकी जान निकाल दी सिर-चकराई कारखानेकी रईने. कारखानेके क्रीमसने बिस्कुट और फैशनकी दूसरी चीजें डाक्टरों, हकीमों और अत्तारोंके पास पहुंचानेके पासपोर्ट हैं. क्यों ? जिन्दा मशीनके पुर्जे बिगड़ जानेपर उनकी मरम्मत तो करानी ही पड़ती है.

हजारोंमें से कोई एक रसोइया ही खाना बनानेमें मांकी बराबरीकर सकता है, जिसको बचपनसे ही खाना बनाना आता है, वह भी वही रसोइया हो सकता है, जो घरका आदमी हो और हर तरहसे सुःख-दुःख का साथी बन गया हो. खाए एक घर, बनाए दूसरा घर ; खाए एक मुहल्ला, बनाए दूसरा; खाए एक मुल्क, बनाए दूसरा; यानी खपाए कोई और पैदा करे कोई ! तब तसल्ली किसे हो सकती है ? सब समझदार कहते हैं कि ताजा पिसा आटा खाओ. पर यह सभ्यता-मां हमे सात समन्दर पारका आटा पिसवाकर मंगवाती है और खिलाती है. और बड़ी बात यह कि उसीमें तसल्ली मानती है. आजकी सभ्यता एड़ी-चोटीका जोर इस बातमें लगाए हुए है कि अनाज, आटा, रोटी, फल, दूध, दही जैसी चीजे बरसों रह सके और सड़ने-गलने न पाएं. तन इसी काममे जुटा है, मन और मस्तक भी यही करते रहते हैं, सारी साइंस इसी काममें लग गई है. लुत्फ यह कि इसकी जड़में कोई भलाई नहीं है !! है तो यह, बुराई कि सड़ी चीजे भी बिक जाया करें. बिक्रीका है इनको मर्ज. स्वाद, जायके, लज्जत, ताकतसे इनको गरज !

हम सवासौकी जगह पच्चीस पर उतर आए हैं और वह पच्चीस भी हमारे दांत उखड़वाने, आंख जंचवाने और दवा खा-खाकर जीते रहनेमें गुजरते हैं !

झाड़-फूंकको झाड़ फेंका, जंतर-मंतरकी जड़ काट दी, यह सब तो

ठीक किया ; पर यह क्या किया कि उनकी जगह दे दी दवा-दारूको. हकीम, डाक्टर, वैद्य, अत्तार सभी जानते हैं कि वे कुछ नहीं करते. जो कुछ होता है, परहेज, आराम, मुनासिब खानेसे. बीमारीका इलाज है ठीक-ठीक रहना न कि ठीक-ठीक दवा करना. पुराने ओझाओंको मिटाया तोल-पसन्दों यानी बहुत पढ़े-लिखे और बहुत पैसेवालोंने. डाक्टरों, हकीमों और वैद्योंको मिटाएंगे मोल-पसन्द, यानी समझदार, ज्ञानी, भले आदमी, बैलोस, त्यागी, नंगे, भूखे, भिखमंगे नहीं.

पहले भूत आया करते थे. ये घरमें किसी एकको ही छेड़ा करते थे, सबको नहीं. एकको ही क्यों, यह कोई नहीं जानता. न जानता सही, ओझाजी यह जरूर जानते थे कि वह भूत कहां किस पीपलके पेड़ पर रहता है और उसको क्या देनेसे वह जा सकता है. वही उसको ले-देकर भगा दिया करते थे.

इस जमानेमें वे भूत भागे नहीं कि जर्म्स (कीटाणु) नामके बहुत छोटे-छोटे, पर भूतोंकी तरहसे ही आंखोंसे न दीखनेवाले, उनकी जगह आ डटे. वे घरमें किसीको नहीं छोड़ते, कभी किसीको तो कभी किसीको. मार्केकी है एक बात. भूत भी उसको ही छेड़ते थे, जो ठीक-ठीक खाता-पीता नहीं था, ठीक-ठीक नहीं रहता-सहता था. जर्म्स भी ऐसे ही को लगते हैं. आजकलके डाक्टर यह जानते हुए भी नहीं जानना चाहते कि ये जर्म्स नामके भूत बदनमें दाखिल होनेसे नहीं रोके जा सकते, भले ही साइंस कितना ही जोर क्यो न लगा ले और कितनी ही जर्म्समार दवाएं क्यों न तैयार कर ले. हां, ठीक-ठीक खान-पान और रहने-सहनेवालेका यह जर्म्स कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते. जो जानदार चीजे खाते है, मुनासिब तरीकेपर रहते है, आराम करते हैं; उनमें ठीक-ठीक खून बनता है, ठीक-ठीक रग-पुट्ठे बनते है; ठीक-ठीक चरबी-मज्जा बनती है, ठीक-ठीक हड्डी-पसली बढ़ती है. उनमें जाकर जर्म्स परेशान ही होते हैं और पिट-कुटकर किसी रास्ते नो-दो-ग्यारह हो जाते है.

जो काम हमसे लिए जाते हैं, वे दुख देनेवाले काम ही नहीं थका देने और उबा देनेवाले भी हैं. मन उनमें लगता नहीं, लगाना पड़ता है. जहां हम काम करते हैं, वह जगह सुखकी नहीं है. न वहां असली हवा पहुंचती है, न असली रोशनी. तन्दुरुस्त रखनेवाली धूपकी तो वहां पहुंच ही नहीं. हमारे काममें या तो हमारे रग-पुट्ठे काम नहीं करते या कोई एक-दो काम किए जाता है तो बाकी बेकार रहते हैं. हम इंजनकी भट्टीके सामने खड़े कर दिए जाते हैं. इसलिए नहीं कि जाड़ेका मौसम है बल्कि इसलिए कि हमारा काम ही इंजनमें कोयले झोंकनेका हो गया है. हमारे लिए दिनमें किसी वक्त जूनका महीना आ सकता है और किसी वक्त भी दिसम्बर ! कभी हम गिनती ही लिखे जा रहे हैं तो कभी हरफ ही ! मानो हम फिरसे पहली क्लासमें दाखिल कर दिए गए हैं. मतलब यह कि हमें कोई आदमी समझता ही नहीं, मशीनका पुरजा समझता है ! और वह भी ऐसा कि कहीं भी ठीक बिठाया जा सके ! !

बीचमें छुट्टी मिलती है, पर वह हमारी कितनी होती है, पता नहीं. क्योंकि उसके लिए हमने जो काम पहलेसे ही तय कर रक्खे होते हैं, वे भी नहीं हो पाते. मतलब यह कि तनके सुखकी खातिर जिस जालमें हम फंसे थे, वह सुख न रहकर सुख-सड़कका सूल बन गया है.

इस कांटेको हटाकर हमें ऐसे कामोंमें लगाना होगा, जहां हम तन्दुरुस्त हो सकें और सुख पा सकें.

[४]

चौथा कांटा हमारे रास्तेमें यह है कि हम ऐसे बने हैं कि अकेले जिंदगी नहीं बिता सकते. जनमसे मरनेतक यहांतक कि मरनेके बाद भी औरोंको सड़नसे बचानेके लिए हमें समाजकी जरूरत पड़ती है. बालकपनमें हमपर समाजका इतना करजा हो जाता है कि हमें उससे बचकर भागनेमें शर्म मालूम होती है. वह करजा भले ही कानूनी हिसाबसे कोई कीमत न रखता हो ; पर जब हम भले आदमी होनेका वादा करते हैं तब कानूनी कीमतसे हमको क्या सरोकार. हमारे लिए तो नीति

कानूनसे कई गुनी बड़ी होनी चाहिए और वह है भी. हम हेलमेली (सामाजिक) प्राणी होनेके नाते जब समाजमें रहकर साथियोंका सुख भोगना चाहते हैं तो हमको उन कायदों, रस्म-रिवाजोंका सामना करना पड़ता है जो उसने बना रखे हैं या जो उसमें काममें लाए जाते हैं. समाज सीधे-टेढ़े यह चाहता ही है कि हम अपने नए या उससे न मिलते विचारोंको उसकी रिवाजकी वेदीपर कुरबान कर दें. समाजने मिलकर, अलग-अलग नहीं, यह मान रखा है कि जो कुछ अनपहचाना और अनोखा, वह बुरा. जो जाना-पहचाना, वह जरूरी और अच्छा. ऐसी ही एक और मान्यता है कि जो नया वह पुरानेसे बेहतर, इसलिए नहीं कि वह सच्चा, भला और सुन्दर है; पर इसलिए कि वह नया है.

समाजके यह दोनों अकीदे हम खुशीसे मान लेते अगर वह हमारी ज़िंदगीके लुत्फ उठानेके रास्तेमें रुकावट न डालते होते, पर वह तो हमारे पैदायशी हकपर ही पहला वार करते हैं. मैं क्या मानूं, मैं किस-पर एतकाद रखूं, मेरा विश्वास क्या हो, मैं किस धर्मको अपनाऊं ? यह एककी अलग-अलग पूंजी है; समाजकी नही. अगर किसी वजहसे समाज इस पूंजीको अपना ले तो 'एक' बेहद कमजोर हो जाएगा और यों समाज भी ज्यादा ताकतवर न रह पाएगा. किसी रिवाजकी सचाई, भलाई, सुघड़ाई समझाए बिना उसे मनवाना एक तरहकी जबरदस्ती है. बचपनसे जबरदस्ती सहनेकी आदतकी वजहसे हम बड़े होकर भी सह लेते हैं और चूं-चपड़ नहीं करते. पर यह आदत अपने-आपमें भली चीज नहीं. क्योंकि हम बड़े होकर न सच्चे सुखको खोज सकते हैं और न पा सकते हैं. समाज, जो हमको वह बात मनवाकर सुख देनेका वायदा करता है, जिसको हमारा जी माननेको तैयार नहीं, हमें कैसे सुखी बना सकता है ?

हमारी समझमें नहीं आता कि हम क्या करें ? अपने साथियोंमें रहनेकी खातिर हमको समाजके कायदे और रिवाज मानने ही पड़ते हैं. उनसे आए दिन काम पड़ता है. उनके साथ रहना, खाना, पीना, खेलना,

सोना सभी तो होता है. हम अपनी बात भी कह दें और साथी भी बुरा न माने, यह कला भी सीखनी होती है. समाजकी रूढ़ियों या बिल्कुल बेतुकी रूढ़ियोंकी वजहसे समाजको अगर छोड़ बैठे तो जिन्दगीका लुत्फ ही क्या रह जाएगा ?

कुछ न सही, समाजको खुश रखनेके लिए ही हमको समाजके रिवाज अपनाने पड़ते है और समाजके अकीदे मानने पड़ते है. बहुत-सी तो ऐसी बाते है जिनका आजकल कोई काम ही नहीं पड़ता पर अपनाना तो पडता ही है. अगर हम कभी अपनी नई तान छेड़ते है, जो उनसे बिल्कुल मेल नही खाती, तो वह हमे रोकनेके लिए कानून बना डालते हैं. उसकी वजहसे वह भी दिक्कतमे पड़ते है और हम भी. कभी-कभी इस झझटमे बचनेके लिए और वक्त बचानेके लिए ही हम उनके रिवाज मान लेते है. समाजमें अभी अटपटे विचारोंकी बरदाश्त जितनी चाहिए उतनी पैदा नही हुई है और न वे लोग कभी पैदा होने देंगे जिनके हाथमें आजकल समाज है.

वह रिवाज है भी ऐसे कि खाने, पढ़ने, उठने-बैठनेमें उनका अगर कुछ मोल है तो इतना ही है जितना हम कभी-कभी आंखोंको धूप से बचानेके लिए पेशानीपर हाथ रख लेते है और छायामे आते ही वहांसे उसे हटा लेते हैं. वह रिवाज सारे-के-सारे इस काबिल है कि उनपर फिर विचार किये जाएं. जो रोकनेके काबिल हो रोके जाएं, बदलनेके काबिल हों बदले जाएं. सुधारके काबिल हों सुधारे जाएं, रखनेके काबिल हों तो जोरदार बनाए जाएं, अगर कोई रिवाज तोड़े तो उसके साथ पूरा इन्साफ किया जाए और देखा जाए कि उसने उस रिवाजको तोड़कर समाजका भला किया है या बुरा; या दोनों ही नहीं, सिर्फ अपना ही भला किया है.

रस्म-रिवाज एक तरहके सांचे हैं. एक-एकको उस सांचोंमें होकर निकाला जाता है और समाजकी मर्मीका बनाया जाता है. इन सांचों को समाज नहीं बनाता. बनाते हैं वह दो-चार दस-बीस, या एक, जिनके

हाथमें उस वक्तका समाज रहा होता है, जिस वक्त वह सांचे बनाए गए थे. समाज कभी हुल्लड़-पसन्दोंके हाथमें होता है. कभी तोल-पसंदों के और कभी मोल-पसन्दोंके. हुल्लड़-पसन्द तो कभी सांचोंको बनाते ही नहीं या अगर बनाते हैं तो उनको चलने नहीं देते. उनका बनाना तोड़ना इतनी तेजी से चलता है कि उसे बनाना कहा ही नहीं जा सकता.

तोल-पसन्दोंको इनकी सबसे ज्यादा जरूरत होती है. वह इन्हींके जरिए सबको काबूमें रखते हैं और उनसे अपनी मरजीका काम लेते हैं. वह उनको चूसते हैं और चुसनेवाले खुशीसे आगे बढ़-बढ़कर चुसनेको तैयार रहते हैं ! दुःख मानते हैं मगर चुसते रहते हैं. उनके मनमें उन सांचोंमें होकर गुजरनेसे यह पक्का जम गया है कि यह चुसना हमारे भलेके लिए हो रहा है और हमें अब भले ही तकलीफ हो रही हो, मरनेके बाद बड़ा सुख मिलेगा.

इन तोल-पसन्दोंके काबू मोल-पसन्द नहीं आते; पर वह गिनतीमें इतने थोड़े होते हैं कि अव्वल तो कुछ कर ही नहीं पाते; क्योंकि वह बहुत जन, धन, चेले-चपाटोंके कायल नहीं होते और अगर किसी एकको अपने विचार फैलानेकी सूझ ही गई तो वह या तो जल्दी खुदाके पास (जो तोल-पसन्दोंका अपना बड़ा प्यारा मालिक है) भेज दिया जाता है या फिर तोल-पसन्द खुद ही उसके पक्के चेले बन बैठते हैं. उसकी बातको आम लोगोंतक नहीं पहुंचने देते और अगर पहुंचने देते हैं तो उसे अपने रंगमें खूब रंग देते हैं. ऐसा बहुत कम ही होता है कि दुनिया मोल-पसन्दोंके हाथमें हो, कभी-कभी वह अपने आप ही किसी मोल पसन्दको अपना बड़ा मान बैठती है और यों कभी-कभी उसके हाथमें भी आ जाती है.

हां, उसी वक्त जो सांचे बनते हैं वह सबके भलेके होते हैं; पर वह भी उस वक्तके लिए होते हैं, हमेशाके लिए नहीं. आज भी अगर रस्म-रिवाजोंके सांचोंकी मरम्मत कराना हो या एकदम बदलवाना हो तो यह काम मोल-पसन्दोंको सौंपकर ही ठीक हो सकता है. तोल-पसन्दोंके

हाथमें देकर भी आप बदलवा सकते हैं और वह खुशीसे बदल भी देंगे; पर असली गरज उनकी वही रहेगी जो पहले थी.

इसमें शक नहीं कि समाज आए-दिन अपने रिवाज और कानून बदलता रहता है और नये-नये सांचे गढ़ता रहता है; पर वह सब तोल-पसन्दोंके बदले होनेकी वजहसे अपनी खासियतमें ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं और समाज ज्यों-का-त्यों गुलाम बना रहता है. समाजका नुकसान किए बिना हमें अपने ढंगसे रहनेकी आजादी मिल ही नहीं पाती. हम समाजसे कटकर ही वैसा कर सकते है, जिससे जिन्दगीका लुत्फ आधा रह जाता है.

हम अगर कोई अपना ढंग हिम्मतकर या ढीट बनकर अपना भी लें तब भी मन यह डर मानता ही रहता है कि लोग क्या कहते होंगे. कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हमारे मनके डरका न हमे पता चलता है और न समाजको, पर अन्तरात्मा तो उसको मानता ही है. इसलिए हमारे कार्योंमें अन्तरात्माके हिसाबसे कमजोरी रह जाती है. उस कमजोरीका असर हर घड़ी हमारी जिन्दगीपर होता है. जल्दी या देरसे वह कम-जोरी हमें भी खटकने लगती है.

मुश्किल तो यह है कि हमारी सचमुच 'दो तन एक मन' वाली पत्नी भी समाजके रिवाजोंसे इतनी गुथी होती है कि वह हमारा साथ निभाते भी नहीं निभाती. यही हाल बेटे बेटियोंका होता है. पत्नी कुछ कर बैठे तो पति साथ देते झिझकता है! और कब ? जब कि वह उसके कामको जीसे ठीक समझता है. यही हाल बेटे-बेटियोंके कर गुजरनेपर बापका होता है. हमें क्या पहननेमे सुभीता है, कहां रहनेमें आराम है, क्या खानेसे हम तन्दुरुस्त रह सकते हैं, कौनसा खेल खेले, इन जरूरी बातोंमें भी हम आजाद नहीं हैं. समाज जो कहे वह पहनो, जहां कहे वहां रहो, जो बताए वह खाओ, जो खेल कहे वह खेलो. समाजकी मरजीकी बात न करें तो हम कहीं के नहीं रह जाते. वह हमें सिर्फ जातसे बाहर ही नहीं कर सकता, वह तो यह भी कर सकता है कि हमारे

कारबारसे अपना रिश्ता काट ले और हमें कहींका भी न रहने दे. हमको सिर्फ हेलमेलके लिए ही नहीं, कमाने और पेट भरनेके लिए भी समाजकी रूढ़ियोंको अपनाना पड़ता है.

अब यह तो समझ ही लेना चाहिए कि अपने पैरोंपर आप खड़े हुए बिना कोई ऐसा खेल खेल बैठना जो समाजके कायदोंके एकदम खिलाफ हो कितना डरावना काम है. पर हमें हिम्मत मिली और किसलिए है सच्चे-सुखकी खोजमें उससे काम न लेंगे तो उसके हमारे पास होनेका फायदा ही क्या है? हेलमेलसे रहनेकी कुदरती आदतका कांटा तो रास्ते से हटाना ही होगा.

कुदरती आदत तो छूट नहीं सकती और छूटनी चाहिए भी नहीं, उसे छोड़कर हम न आदमी रह जाएंगे और सभ्यता तो फिर रह ही कैसे सकती है. हमें करना यह होगा कि एक छोटा-सा कुटुम्ब बनाना होगा जो अपने आपमें हर तरहसे पूरा हो. यानी अपना नाज-तरकारी उगा ले, अपने कपड़े बना ले, अपने जानवर पाल ले और अपनी कुटिया बना ले. सच्चा सुख उस कुटुम्बमें बिना बुलाए आएगा ही और उस सुखके दर्शनकर तुम जैसे कितने ही कुटुम्ब तुम्हारे आसपास कुछ ही दिनोंमें अपने आप आ खड़े होंगे. जिसमें जरा भी हिम्मत और अपनी समझ होगी वह तुम्हारी नकल किए बिना न रहेगा. तुम अपना कांटा हटाओ सुख पाओ और सुख बांटो.

डरे, वह जवान कैसा ?

नौ

डर भी सुख सड़कका सूल है. डरसे सब डरते हैं. डरको सब बुरा समझते हैं. डर सुखका मजा नहीं लेने देता. डरम एक और भारी ऐब है. यह सुझावकी फूंकसे फुटबालकी तरह फूलता चला जाता है. डर जानवरोंमें भी है पर सुझावके मामलेमें वह हमसे अच्छे हैं. उनका डर जितना है उतना ही रहता है, कम तो होता है, बढ़ता नहीं. किसी जानवरमे झूठा डर, अगर समा जाए तो वह बना ही रहता है. मिसाल के लिए किसी सांपको अगर आप लाल गरम लोहेकी सींकसे छुआकर डरा दें तो वह उमर भर लाल रंगकी लकड़ीसे डरता रहेगा. मतलब यह कि डरके मामलेमें जानवर हमसे फिर भी भले हैं.

डर लेकर हम जन्मे भी हैं और वह हममें पैदा भी किया जा सकता है. यह मनका भाव है. मार्केका होनसे नौ भावोंकी गिनतीमें इसको जगह मिल गई है. मांके पेटसे जितना डर हम लाते हैं, वह हमारे बड़े काम आता है. हमें जीते रहने और बड़े होनेमें मदद देता है. डरने हमको 'चौकन्नापन' नामवाला चौकीदार दे रखा है जो बड़ी होशियारीसे हमारी देहका पहरा देता रहता है और पूरी वफादारीसे काम करता है.

चोर उचक्कोंको रोकनेमें तो यह बड़ा पक्का है पर सुझावके साथ मामूली आवाजके रथमें बैठकर जो चोर उचक्के मनमें आ बैठते हैं उनको यह नहीं रोक सकता. चौकीदार होते, उल्टा उनसे डरने लगता है. मिसाल के लिए देवी-देवता, भूत-प्रेत, सुरग-नरक और हौआ जैसी बातें हमारे मनमें जम जाती हैं तो चौकन्नापल ढ़ीला पढ़ जाता है और चौकीदार होनेपर भी डरने लगता है. कल्पना-देवी उन सुझावोंकी गोलियोंको बाजीगरकी तरह दो की चार, चारकी आठ करती रहती हैं. मनमें डरका राज हो जाता है. मन के डरको दूर करना आसान नहीं. आसान नहीं है, न सही, पर वह तो देहको बनानेकी जगह देहको खाने लगता है. 'जो है ही नहीं' उसका डर बिठाना आसान है पर निकालना बेहद मुश्किल है. उसको निकाले बिना असली सुख भी मिलना मुश्किल है.

'है नहीं' का डर निकालनेका बल जिसमे है उसीका नाम धर्म है, सत्य है, दीन है. उसीको ईश्वर कहो तो हर्ज नहीं. पर ईश्वरकी बात कही नहीं कि दुनियाका राजा ईश्वर तुम्हारे मनमें आ बैठता है. उसका तख्त बन जाता है, ताज बन जाता है, शक्ल बन जाती है, दरबार बन जाता है और दरबारी भी ! ईश्वर आया था डर निकालने और डरकी ही पोशाक पहनकर जम जाता है. इसलिए हमारी सलाहमे उसका नाम धर्म या सत्य ही ठीक रहेगा.

अब धर्मकी बात सुनिए. उसको भी धर्म ही कहते है जो तरह-तरहके धर्मोंने 'है नहीं' को 'है मानकर', अपने-अपने सिद्धान्त बना लिए हैं. उसको भी धर्म कहते हैं जो तरह-तरहके धर्मोंमें पैदा हुए सन्तोंने 'जिंदगी बितानेके' सीधे-सच्चे-रास्ते बता दिए हैं. अब धर्म दो तरहका हो गया—सिद्धान्तवाला धर्म और सच्चे रास्तेवाला धर्म. सिद्धान्तवाले धर्मको हम अफीमकी पिचकारी (इन्जेक्शन) मानते हैं और सच्चे रास्तेवाले धर्मको अचूक दवा, जो जरा देरमें असर करती है. बढ़ा हुआ डर है बीमारी. सिद्धांतकी पिचकारी बेहोशकर डरको भुला देती है या फिर डरको दबा देती है. दूर नहीं कर सकती न मुनासिब हदको

पहुंचा सकती है. 'सच्चे रास्तेवाली' दवा डरको दूर कर देती है और डरको उतना ही रहने देती है जितना वह मांके पेटसे आया था और जो जीवनके लिए जरूरी है.

सिद्धान्त-धर्मसे डरपोकको तसल्ली मिलती है. वह धर्मको अपनी आदत बना लेता है और जब भी डर लगता है तो उससे काम लेने लगता है. जैसे भूत भगानेके लिए हनुमानचालीसा पढ़ना या लाहौल पढ़ना. जिनमें न अपनी समझ है न सोचनेकी ताकत वह और करें भी तो क्या. सिद्धान्त-धर्मसे एक और फायदा होता है. आदमी जिन्दगीकी सैकड़ों झंझटोंसे बच जाता है. उसे यह सोचना ही नहीं पड़ता कि मिरगी एक बीमारी है और इस वजहसे होती है. उसके पास हनुमानचालीसा है या लाहौल है. यों सस्ता छुट जानेवाला आदमी आखिर टोटेमें ही रहता है.

गलतियां सुलझानेसे काम चलेगा बचकर भागनेसे नहीं. वह तो कदम-कदमपर आएंगी और बढ़ती ही जाएंगी. एकके सुलझानेसे सुलझाना आ जाएगा और वह हमेशा काम आएगा. गुत्थीको उलझा छोड़ना बुद्धिमानी नही. सुलझानेके झूठे तरीके अपना बैठना और भी बुरा. बचकर भागना सुलझाना नहीं हो सकता. कोई तरीका सिर्फ पुराना होनेसे सच्चा नहीं माना जा सकता. सच्चा साबित होनेके लिए उसको कसौटीपर कसे जानेको तैयार रहना चाहिए.

अगर हम यह चाहते हैं कि हमारी जिन्दगीकी हर घड़ीमें से हमें सच्चाई, भलाई और सुन्दरता मिला करे तो हमको सब तरहके सिद्धांत-धर्म ही नहीं छोड़ने होंगे बल्कि उनसे पैदा हुए डर, पक्षपात, रस्म-रिवाज और आदतोंको भी विदाई देनी होगी. सच्चा सुख और किसी तरह मिल ही नहीं सकता.

धर्म सबसे पहले हमें हवाई महलोंमें, हवाई जलसोंमें, हवाई फुलवारियोंमें, हवाई रसोईघरोंमें, हवाई मैदानोंमें ले चलता है. वहां महल मिलते हैं, पर आंख खोलकर देखो तो दिखाई नहीं देते ; वहां राग हैं पर कानसे सुनाई नहीं देते; वहां फूल हैं पर नाक उनकी खुशबू नहीं ले

सकती; वहां मिठाइयां हैं पर जीभ उनको नहीं चख सकती; वहां ठण्डी हवा है पर बदनको नहीं लगती!! वह सपनेकी दुनिया है, वह ख्याल-की दुनिया है. वहां दरबार भी है और सब दुनियाओं का राजा भी वहां है.

मामूली सूझबूझ और विश्वास, दोनों ही कुछ वजह लेकर चलते हैं. कुछ ढंगके नतीजे निकालते हैं, कुछ करके दिखाते हैं, सवाल उठाते हैं, उनके जवाब देते हैं, शक दूर करते हैं. पर धर्म ? वह सवाल उठाएगा सौ, पर जवाब देगा एक. कुदरत दिखाकर कहेगा, देख लो ईश्वरकी कारीगरी. ईश्वर दिखाई नहीं देता, कुदरत दिखाई देती है. कुदरतकी बात पढ़-अपढ़ सब ही जोरके साथ सुन-बोल लेते हैं. पर ईश्वरकी सुनते ही जबान बन्द हो जाती है या वह भी बहकी-बहकी बाते करने लगते हैं. आखिरी जवाब होता है 'तुम्हारी समझका फेर है' यानी यह कि जवाब देनेवाला बहुत अकलमन्द और जवाब सुननेवाला बिलकुल वेवकूफ है !

कुदरतकी खासियतको ईश्वरकी खासियत कहनेसे फायदा ? हमारी रायमें तो नुकसान ही है. नुकसान यह है कि हम जाने-अनजाने यह कह जाते हैं कि हम यह नहीं जानते कि कुदरतकी खासियत क्या है. ज्ञानियोंको तो हमने यहीं कहते सुना है कि हम सब कुछ जानना तो एक ओर बहुत कुछ भी नहीं जानते. जितना ज्यादा-ज्यादा जानते जाते हैं उतना यह जानते जाते हैं कि हम पहले अगर हजार बातें नही जानते थे तो अब लाख नहीं जानते. उनका तो यह कहना है कि तालीम एक ऐसा सफर है कि उस रास्तेमें जितने आगे बढ़ो, अज्ञानकारीके मैदानपर मैदान मिलते चले जाते हैं.

ऊंचे दर्जेके आदमी अपनी जिंदगी जब शुरु करते हैं तब सैकड़ों सवालोंका हल वह नहीं जानते. उनके काम-चलाऊ जवाब सोच लेते हैं और आगे बढ़ते हैं. अपनी अजानकारीको कहनेमें उनको खुशी होती है, झिझक नहीं.

अजानकारीकी अजानकारी लिए ही आगे बढ़ना हो सकेगा.

ज्ञानी होनेका पक्का दावा उनका ही होता है जो अजानकार होते हैं, रूढ़िवादी होते हैं या धर्म-सिद्धांती होते हैं. स्वर्ग या नरकको कौन राह गई, इसका पता तो उनको इतना पक्का याद हो जाता है जितना चिट्ठीरसाको डाकखानेका !! ईश्वरसे उनकी रोज बातें होती हैं, उसको जाननेकी फिर बात ही क्या !

जो कुछ पूछता है, तरह-तरहकी शंकाएं करता है, वह अपनी अजानकारीको साफ कुबूलकर रहा है और यही रास्ता समझकी तरफ बढ़नेका है. ईश्वरको मान बैठना तो इस अजानकारीको मान बैठना है कि हम यह नहीं जानते कि प्रकृतिका क्या स्वभाव है. ईश्वरको मान बैठना एक मजबूत रस्सी पकड़ना तो है पर वह रस्सी तो अजान-कारीके खूंटेसे बंधी हुई है. शंकाकी रस्सी सचाईके खूंटेसे बधी हुई है और वही 'सच' तो सब कुछ है.

पराधीनता और बीमारीसे हम बचते हैं; सिद्धांत बना बैठना भी बीमारी है और पराधीनता भी. इनसे भी बचना चाहिए. इनसे बचे विना सच्चा सुख नहीं मिलेगा. सिद्धांत बना बैठनेकी बीमारी बड़ी तेजीसे बढ़ती है और सीधी जिंदगीके महलमें जाकर रुकती है. इतना ही नहीं वहां जाकर अफसरकी कुर्सीपर जा डटती है.

सिद्धांतकी जड़में अनुभव एक, तो कल्पना निन्यानवे रहती है. इस वजहसे सिद्धांती जगह-जगह सिद्धांत खड़े कर देता है. एक विज्ञानी ईश्वर माननेसे पहले एक नई इन्द्रिय यानी हवास गढ़ता है और उसका नाम रखता है 'धर्मेन्द्रिय'. बस अब उसकी दलीलें नया रंग ले लेती हैं. वह कहेगा आंख न होनेसे आदमी देख नहीं सकता. इसी तरह 'धर्मेन्द्रिय' ठीक न होनेसे आदमी न ईश्वरको मान सकता है और न समझ सकता है. यह दलील लाखोंको भा जाती है, हजारोंको सोचमें डाल देती है और सैकड़ोंका मुंह बन्दकर देती है. हम दस-बीस ही टक्कर लेनेवाले रह जाते हैं. यह ठीक है कि विज्ञानी ईश्वरकी कल्पना काम चलानेके लिए

करता है पर उसकी यह आदत विज्ञानके मैदानमें पहुंचती है और वह वहां भी काम चलाउ सिद्धांत गढ़ने लगता है. वहां उसका काम रुक जाता है और फिर सिद्धान्त बनाना निरी बीमारी और गुलामी रह जाती है. सुखके रास्तेका काटा बनकर रह जाती है.

यह सच है कि हम जब भी कोई राय बनाते हैं तब सोलह आने ठीक नहीं होते. लेकिन अगर हम कह बैठें कि हमसे भूल हो सकती है तब कट्टर-पंथी हमको संशय-आत्मा यानी शक्की-मिजाज कहकर चुटकियोंमें उड़ा देते हैं. दूसरे लफ्जोंमें सचाईपर अमल करते ही हमें लोग अकीदेका कच्चा बताने लग जाएंगे. पर हमें इससे डरना नहीं है.

यह सच है कि हमारी समझमें उन तरह-तरहके ईश्वरोंमें से कोई भी ठीक नहीं बैठता, जिनको अबतकके समाज या समाजोंने गढ़ रखे हैं. पर जैसे ही हम एक अलग ईश्वर या ईश्वरोंके होनेसे इन्कार करते हैं, वैसे ही लोग हमको नास्तिक, काफिर कहकर बहुत तादादवाले नासमझों की नजरमें नीचा कर देते हैं.

ऊपरकी दोनों बातोंसे न हम बच सकते है न कोई और. क्योंकि हम सब किसी एक न किस्मके ईश्वरको तो माने ही हुए हैं और साथ-ही-साथ दूसरी किस्मके ईश्वरके होनेसे इन्कार करते हैं या शक करते हैं! तब डरनेसे फायदा. यह बेजा डर सुखके लिए दूर करना ही होगा.

ईश्वरके सामने भरकी बात होती तो कोई दिक्कत न थी; पर मुश्किल तो यह होती है कि उसको मानते ही उसको खुश करना जरूरी और फिर उसके सिर दुनिया भरकी जिम्मेवारी थोपना जरूरी, और न जाने क्या क्या. इस किस्मका एक सिलसिला ही खड़ा हो जाता है. पर मन है कि इसी रास्ते चलता है. मनको इस आसान रास्तेपर चलनेकी पुरानी आदत है और मीरासमें मिलती है. इस रास्ते चलकर जिन्दगीकी झंझटें जितनी जल्दी सुलझती है उतनी जल्दी दूसरे रास्ते चलकर नहीं. मन डाहका कुआं, हसदका टीला, जलावेकी भट्टी है; उसका गढ़ा हुआ ईश्वर फिर डाहका सागर, हसदका पहाड़ और जलापेका ज्वालामुखी होना ही

चाहिए. अब कोई समझदार आदमी ऐसे ईश्वरको कैसे आंखें बन्द करके मान ले. अब समझदार, सब जगह रहनेवाले, सब जानकार (हाजिर, नाजिरकुल यानी सर्वव्यापी, सर्वज्ञ) ईश्वरको मानकर उनसे पीछा छुड़ाता है. और इसीमें अपना भला समझता है. एक अलग समझदार उसके गले नही उतरता. आखिर पांचों इद्रियों और मनका नाम ही तो शख्सियत है. उससे अगर यह पांचों हवास और मन अलग कर लिए जाएं तो फिर शख्सियत खत्म हो जाती है. हम शख्सियत यानी व्यक्तित्व की कुछ भी सिफत कायम करें, ईश्वरपर पूरी नहीं उतर सकेगी. उन सिफतोंके साथ ईश्वर, ईश्वर ही न रह जाएगा. मामूली आदमीसे भी गयाबीता बन जाएगा.

समझदारी और नेकीका भी यही हाल है. जानदारसे अलग उसको सोचा ही नहीं जा सकता. समझदारी आदमीमें है. उसकी मददसे वह गाली खाकर उठे गुस्सेको काबूमें कर लेता है. दूसरेकी बढ़ती देख मनमें उठी जलनको बुझा लेता है. तंग आकर चोरी करनेपर उतारू मन को समझाकर उधर गिरनेसे रोक लेता है. किन्हीं दो आदमियोंमें एक सी समझ न होनेकी वजह ही यही है. दोनोंपर एक ही बातका असर होकर एकसे ख्याल पैदा नहीं होते. इसलिए कुदरतमें सारी समझदारी और नेकी एक जगह इकट्ठी हो जानेकी बात नहीं बनती. नेक आदमी जब तक खुद बद न बने वह अपने प्यारोंको न खाकमें मिला सकता है, न तकलीफ पहुंचा सकता है और न बदला लेनेकी सोच सकता है. किसी आग लगानेवाले या कत्ल करनेवालेके बारेमें यह सोच बैठना या कह उठना कि यह काम उससे कोई बेहद नेक शख्सियत (ईश्वर) करा रही है, कैसे ठीक समझी जा सकती है. यही बात आए दिन ईश्वरके बारेमें कही जाती है. इस तरह सोचनेकी तहमें, जड़में—डर है, झिझक है. यह झिझक सुख-बिस्तरकी सलवटें हैं. जो ठीक नींद नहीं लेने देतीं.

डरका बेटा हुआ घमंड. हम अजर-अमर हैं या नहीं, यह सोचनेकी

बात है. पर अजर-अमरका विचार घमंडकी देन है, उसीकी सूझ है. सुखी जीवन बितानेमें यह अजर-अमरका ख्याल बहुत खटकनेवाला कांटा है. हमारी छोटी-सी जिन्दगी इस ख्यालसे बेहद लम्बी हो जाती है. जिन्दगी अपने आप ही बडी पाक चीज है. यह अजर-अमरका ख्याल जीवनकी पवित्रताको खा जाता है. तभी तो धर्मात्मा कतल और गारतगरी पर उतर आते है. 'जिन्दगी क्या है ?' यह खोज भी रुक जाती है. जिन्दगीके अजर-अमर होनेकी बात वहीं ठस पड़ जाती है. हमारी हालत उन बच्चों जैसी हो जाती है जो दिल्ली जाना सोचते हे और खाटपर बैठे-बैठे यह मानकर कि दिल्ली आ गई वही बैठे रह जाते है और दिल्ली नही पहुच पाते !

हमेशा रहनेवाली जिन्दगीके साथ बुराई-भलाई मिलकर नरक-सुरग खड़े हो जाते है. बुराईसे बचाने और भलाईमे लगानेके यह औजार मान लिए जाते है. समझदारोंको यह दोनों अपील नहीं करते. नरककी ज्यादतियां और सुरगकी बेकारी दोनों ही नासमझीकी चीजे हैं. आम आदमियोंको वह ठीक जंची हों यह भी नही ; क्योंकि दीन-धर्मके नामपर किसी युगमे कतल गारतगरीकी कमी नही मिलती.

दीन-धर्मको तो कुछ लोग सिर्फ ईश्वरकी पूजा-वंदगी और उससे प्रेम करना ही मान बैठे है. कुछ ऐसे भी है जो दीन-धर्मको नेकी और अच्छे चाल-चलनकी बुनियाद मानते है. पर इस मामलेमे वह हवाला देते हैं किसी आसमानसे उतरी किताबका या ऐसी किताबका जिसमे जो कुछ लिखा है वह वही है जो उनके बड़ोंके कानमे ईश्वर आकर फूंक गया था ! नतीजा यह होता है कि हर धर्मके रस्म-रिवाज, चाल-चलन, वहीं-के-वहीं जमे रहते है और उनमे से बदचलनी निकल आती है. तरक्की रुक जाती है. सब धर्मोके रिवाज-तरीके एक नहीं, कहीं-कहीं तो उलटे हैं. नफा इसीमें है कि सिद्धान्त-धर्मसे बचा जाए. सुख इसीमे है.

धर्मका सवाल हिन्दुस्तानमें ही नहीं, सारी दुनियांमें जरूरी बन गया

है. दुनियामें सबसे जरूरी चीज हवा है. पर लोगोंके मनने धर्मको हवासे भी ज्यादा जरूरी मान रखा है. काममें लानेके लिहाजसे धर्म-का नम्बर बहुत पीछे पड़ जाता है और बहुत कम जरूरी चीज रह जाता है. काम जिससे ले रहे हैं उसे धर्म कहते शर्म आती है. कुदरत धर्म-को जरा भी महत्त्व नहीं देती. रिवाज धर्मकी सबसे ज्यादा जरूरत समझते हैं. रिवाजोंका कहना है कि हमें छोडा कि सजा तुम्हारे नाम लिखी गई और मौतका दारोगा तुमको वहां ले जाएगा जहांका हुक्म उसे मिला है. गर्ज यह है कि धर्म जैसे गैर-जरूरी कामपर इतना जोर दिया गया है और दिया जा रहा है कि जिन्दगीके बेहद जरूरी सवाल 'हवाकी सफाई' तकसे धर्ममें मस्त, अपनी आंखें फेर लेते हैं और हवाको गन्दा करते रहते हैं.

खाने-पीनेका सवाल भी बहुत जरूरी है. उसकी तरफ हम नजर ही नहीं डालते. काम हम सारा करते हैं, खाने-पीनेके लिए, पर मनमें उस सवालको जो हमने जगह दे रखी है, वह धर्मसे कहीं नीची है. खानेके सवालमें जीने-मरनेका सवाल है ; फिर भी हम उस तरफसे बेपरवाह बने हुए हैं.

सुखी बननेके लिए, जरूरी सवालोंको जरूरी समझनेमें जरा भी नहीं झिझकना चाहिए.

मिसालके लिए ईश्वरके सवालको ले लीजिए. यह सवाल सबसे जरूरी मान लिया गया है. पर इसका जवाब सोचना हमारा काम नहीं बताया गया. वह काम हमारे लिए, हमारे मां-बाप करें और उनके लिए उनके पुरोहित-मुल्ला करें और उनके लिए धर्मकी किताबें करें. हमारा काम सिर्फ इतना है कि हम ईश्वरको मान लें ! ! समाजने कानून बना रखा है, ईश्वरको मानो, नहीं समाज बाहर. कुदरतको अगर ईश्वरकी दासी मान लें तो वह ईश्वरका पता देने या उसको समझाने में रत्तीभर मदद नहीं करती. हां, धोखा खूब देती है. कुदरत नास्तिकके खेतमें पानी बरसा देती है, उसे लहरा देती है और आस्तिकके खेतमें

एक बूंद नहीं गिराती और रही-सही नमी भी सोख लेती है. वह खुदा के मानने या न माननेवालेमें कोई तमीज ही नही करती. ज्यादातर तो यह देखा गया है कि वह खुदाके न माननेवालेके साथ रियायत करती है. मानो वह खुदाके खिलाफ बागी हो गई हो. उसके एक-दो नहीं, हजारों काम ऐसे होते हैं कि वह खुदाकी गुत्थीको और उलझा देते हैं.

समझमें तो साफ आता है कि ईश्वरका सवाल एकदम गैरजरूरी है. पर समाजने हमको नकेलका ऊंट बना रखा है और नकेल सरकारके हाथोंमे थमा रखी है. अब नकेल तुड़ानेसे पहले हम अपना खाना आप जुटाना सीख लें और फिर नकेल तुड़ा लें तो सुख मिले.

अगर सचमुच हम जो कुछ हैं उससे ऊंचा उठना चाहते है तो हमें चाहिए कि हम एक नई पूजा ईजाद करें यानी जिंदगीकी पूजा. वह यह कि जीवन बहुत पाक चीज है. इसपर ऐसा कोई धब्बा न लगे कि हमारा सुख ही हमारा दु:ख बन जाए. धर्म अपनाना ही है तो ऐसा तो हो जो हमको सुख न दे, पर सुख पानेसे रोके तो नहीं.

ईश्वर मानो; पर डरो ईश्वरसे भी नहीं. डरे, वह जवान भी कैसा ?

बदलते डर कैसा ?

दस

चाल-चलनमें हमको कुछ हक नहीं. उसमें अक्लको दखल कैसा ? जो समाज कहे, जो राज कानून बना दे, वैसे ही रहना. यानी मनकी उमंगको कदम-कदमपर दबाना. मनकी उमंगोंको तो हमारी समझ भी हर वक्त दवाए रखती है, पर उसके दवाबमें और समाज और कानून के दबावमें बड़ा फर्क है. मिसालके लिए बच्चेपर मांका दबाव भी रहता है और गुरुका भी. पर मांके दबावमें बच्चा पनपनेसे नहीं रुकता. गुरुके दबावमें पनपनेसे रुकता है. समझका दबाव मनपर तन्दुरुस्त असर डालता है, पर समाजके बन्धन और कानूनकी अड़चन उसका (मनका) दम पी लेते हैं. वह उभर ही नहीं पाता. जब मन ही ठीक नहीं तब सुख कैसा !

अब हम ठहरे प्राणी और वह भी दसमें मिल-बैठकर जीनेवाले प्राणी. हम अपने हर कामसे किसी न किसीको रुलाते और हंसाते हैं; किसीको दबाते और किसीको उकसाते हैं; किसीको डराते और किसीको उमगाते हैं. यह सच है कि हमारा छोटे-से-छोटा काम हमारे हम-

झोलियोंपर किसी-न-किसी तरहका असर डालता है. पर यह और भी ज्यादा सच है कि हमारे हमझोली हमारी नीयतको जानते हुए भी इसका वही असर मानते हैं जो उनको रिवाजने सिखा रखा है. यानी हमारे सब काम हमारे और हमारे दोस्तोंकी नीयतकी कसौटीपर नहीं कसे जाते, वह कसे जाते हैं समाजके गढ़े हुए हुक्मों या राजके बनाए कानूनोंकी कसौटीपर !

इसका साफ मतलब यह है कि हम और हमारे दोस्त, हम और हमारी संगिनी, हम और हमारे रिश्तेदार, हम और हमारे मेहमान, हम और हमारे हमसफर, सब वैसे उठे-बैठे जैसे समाज या राज चाहता है ; न वैसे, जैसे हम आपसमें जब जहां जैसे तय करें. मिसालके लिए, मैं और वे, जो मेरी जीवन-संगिनी बनना चाहती हैं, गृहस्थीकी गांठमें बंध लें और आगके चारों तरफ सात बार न घूमें तो समाज हम पर थूकेगा, कानून हमको डरायेगा. भले ही हम आगको देवता न माननेवाले हिन्दू हों ! इसका नतीजा यह होता है कि हमको समाजकी राय और रूढ़ियोंसे जोड़ बिठानेमें इतना जोर लगाना पड़ता है कि हम अपना सुख ही गवां बैठते हैं. इस मनमार रीति-रिवाजकी कीचड़में भैंसकी तरह आनन्द लेनेवाले समाजपर जबतक हम अपने रिवाजोंके लिए निर्भर रहेंगे तबतक सच्चे सुखसे कोसों दूर रहेंगे.

न हमारी तकदीर खराब है और न हमारी अक्ल तदबीर सोच निकालनेमें किसीसे कम है. कमी है इस बातकी कि हमने अपनी मन की आंख (अन्तरात्मा या जमीर) को न तो अबतक पूरा-पूरा खोला है और न उसको यह काम सिखाया है कि वे अपनी सोची तदबीरोंको ताड़ लें और उनका नैतिक मोल कितना है यह भांप लें. तदबीरें सोचे जाना और उनको काममें न लाना, आजादीसे सोचने-विचारनेकी ताकत को कम कर देता है. यों तदबीरें सूझना भी कम हो जाती हैं. जो सूझती हैं वे निकम्मी होती हैं. तदबीरें सूझती हैं कामके लिए, पर वे मनमें ही नाच-कूदकर रह जाती हैं. जब हमारी तदवीर हम

अमलमें नहीं लाते तब उस कामको तो करना ही होगा जिसके लिए हमें वह तदबीर सूझी है. इससे अब हमको मजबूर होकर उस तदबीरसे काम लेना पड़ता है जो समाजने हमको बता रखी है. मिसालके लिए हम समाजके कायदे तोड़कर एक विधवासे विवाह करना चाहते हैं. वह विधवा तैयार है, हमारे कुछ दोस्त भी तैयार हैं. तदबीर यह सुझाती है कि जो भी साथ दें उनकी मददसे खुल्लमखुल्ला शादी की जाए; पर हमारा भीतरका उस शादीकी नैतिक कीमत लगाता है सिफरसे भी कम. क्योंकि उसको कीमत लगाना हमने सिखाया ही कब है ? तब समाजका रिवाज चट हमारे कानमें आकर कहता है कि इस विधवाको अपने यहां रोटी बनानेको नौकर रख लो और मौज करो.

वह हमें और भी तरह-तरहकी ऊंच-नीच सुझाता है. हमको उसकी बात अपनी तदबीरसे ज्यादा कीमती जंचती है. हम सस्ता सौदा कर बैठते हैं और फिर आए दिन रोते रहते हैं. अब हमारा इतना बुरा हाल हो जाता है कि हमारा मन दुर्बल होकर वैसे ही सोचने लगता है जैसा समाजने सोचकर हमारे लिए रिवाज बना दिए हैं. और तो और हम और कामोंको भी रूढ़िकी कसौटीपर ही कसने लगते हैं. जिस तदबीरने हमको कीचड़से निकालनेके लिए जोर लगाया था उसको धकेल-कर पीछे पटक देते हैं. अब सोचिए हमें अपनी तदबीरें पटक-पटककर सच्चा सुख कैसे मिल सकता है.

समाज तो हमको तभी खुश-इखलाक और सुचाली कहेगा जब हमारे सारे काम, और औरोंके कामोंके बारेमें हमारे सब फैसले, वैसे ही होंगे जैसे समाजने करने या बतानेको बना रखे हैं. यह तो ठीक ही है. क्योंकि समाज और किसी तरह एक-एकको, अलग-अलग अपने चुंगलमें, अपनी मरजीके माफिक फंसाके नहीं रख सकता. जबतक कि एक-एक, अलग-अलग अपनी मर्जीसे अपनी कुछ शर्तोंके साथ समाजके चुंगलमें नहीं फंसता है; तबतक समाजको कोई हक इस तरह दबानेका नहीं है.

यह रूप कुछ तो ठीक है पर जब एक अपनी शर्तें ही भूल बैठा हो

तो समाज क्यों याद दिलाए और अपनी ताकतको कम करे. इधर एक अपनी शर्त भूलता है तो उधर समाज अपने बलवान् बननेकी कसरत भूल जाता है. उसको यह याद ही नहीं रहता कि एक-एकके बलवान् होनेसे ही समाज बलवान् बनता है. समाजोंका इतिहास गवाह है कि इस समाजको उसीने बलवान् बनाया है जिसको समाजने शुरूमें नालायक समझकर दुरदुराया था और दूधमेंसे मक्खीकी तरह अलग कर दिया था. आज भी हर जगह वही हो रहा है और होता भी रहेगा. न जाने क्यों इन सबसे 'एक' न एक सबक लेता है, न हिम्मत बांधता है और न समाज सुधारनेकी सोचता है. एक तो यह समझ ही बैठा है कि मैं अच्छा हूं, अगर समाज मुझे अच्छा कहता है. भले ही मैं झूठ बोलूं, चोरी करूं, लोगोंको सताऊं, मारूं-काटूं; चाहे कितना धन जोड़ूं और गरीबोंको चूसूं; सिर्फ इस बातका ख्याल रखूं कि कोई काम रूढ़िके खिलाफ न हो!! उधर रूढ़ियां हैं कि उन्होंने सब तरफ, सब तरहके दरवाजे खोल रखे हैं. रूढ़ियोंमें बंधे-बंधे भी हम सुचाली हो सकते हैं और दुखी भी हो सकते हैं; क्योंकि रूढ़िमें फंसे कोई सुखी हो ही नहीं सकता. हां, हमें इतनी तसल्ली रहेगी कि हमारा जमीर यानी भीतरका यह समझता रहेगा कि हमने कोई गुनाह नहीं किया.

बेशक समाज हमको बदइखलाक और कुचाली कहेगा अगर हमारे काम और दूसरेके कामोंके बारेमें हमारे फैसले समाजकी रूढ़िकी कसौटी पर खरे नहीं उतरते. अगर कहीं हमने उनके बनाए कायदे तोड़ डाले हों, तब तो वह हमको गुनाहगार और मुजरिम समझ लेगा और उसको वैसा हक भी है. पर यदि हम भी उसकी बातको ठीक समझ, अपने आपको गुनहगार समझने लगेंगे तो गुनहगारी तो किसीको सुखी नहीं कर सकती! क्योंकि रूढ़िवादी भी कोई गुनहगार सुखी देखनेमें नहीं आया. तब हमारा बुरा हाल होगा. हम पापके बोझसे दबे रहेंगे और न जाने कबतक दुःख भोगते रहेंगे. अब अगर हम उसी कामको अपनी समझ की चलनीमें छानकर करते तो कम-से-कम पापके बोझसे तो बच जाते,

सिर्फ समाजकी नजरोंमें गुनहगार रह जाते.

अब देखना यह है कि समाजके कानूनकी जड़में ऐसी क्या चीज है जो उसको इस कदर मजबूत बनाए हुए है कि मजबूत-से-मजबूत और समझदार-से-समझदार आदमी भी न उसको हिला सकता है, न उसमें कोई बदलाव कर सकता है. वह पण्डावाद जिसको खोलकर यों कहा जा सकता है कि हमने धर्म और कानूनकी किताबोंको हदसे ज्यादा सही समझ रखा है और यह भी समझ रखा है कि वह हर वक्त, हर मुल्कमें, हमेशा हमारी ठीक-ठीक रहनुमाई करती रहेंगी, क्योंकि हमने यह मान रक्खा है कि वह ईश्वर या ईश्वर जितने जबरदस्त आदमीकी कही हुई, लिखी हुई, बताई हुई हैं और यह कि उनको ठीक-ठीक पण्डे ही समझ सकते हैं.

यह सब भी अगर हमने आजादीसे समझा होता तब भी हर्ज न था. पर यह भी समाजने अपनी चालाकीसे, अपने सुभीतेके लिए हमारे दिल-पर बचपनमें ही ऐसा उकेर दिया है जैसे कोई पत्थरपर लोहेकी कीलसे उकेर दे. यह मिटाना मुश्किल है, पर मिट सकता जरूर है. यह ख्याल दूर किए वगैर असली सुखका पता हमको न मिल सकेगा. दो कामके लिए तो हमको समाजसे छुटकारा पाना ही होगा. उतनी आजादीके वगैर हम एक कदम भी आगे नहीं बढ सकते. वह दो बातें हैं :

(१) चाल-चलनसे ताल्लुक रखनेवाले सब कामोंका मोल हम तय करेंगे.

(२) अपने मोलपर काम करने और काम चलाने के पूरे इख्तियार और पूरी ताकत चाहेंगे.

हम पैदाइशी बदनीयत नहीं हैं. समाजकी सोहबतसे बदनीयत बने हैं. समाजने भी हमको जान-बूझकर बदनीयत नहीं बनाया, पर अपनी नासमझीसे, हमको मुनासिब आजादी न देकर, बदनीयत बना दिया है. हम जब नेकनीयतसे एक बात सोचते हैं और फिर उसपर अमल करते हैं तो समाज हमको रोकता और सजा देता है. हम बद-

नीयत बन जाते हैं या फिर बागी हो उठते हैं. नेकनीयतसे सोचनेके काम भी जब हम नहीं कर पाते तब सुखी कैसे हो सकते हैं ? इस सुखकी खातिर तो हम मचल उठेंगे और समाजके खिलाफ बगावतपर उतारू हो जाएंगे.

आदमीमें मिल-बैठने नामकी एक खासियत है. चाल-चलन उसी खासियतकी हालत या हालतोंका नाम है. जैसे पानीमें प्यास बुझाने, ठण्डक पहुंचाने नामकी खासियत हैं—पर बहना, जमना, हवा बन जाना उसका चलन है. खासियत, याने गुण अटल होते हैं. पर चलन हमेशा बदलता रहता है. चलन शब्द ही आप कह रहा है कि मुझे चलने और बदलने दो. खासियत और चलन दोनों मिलकर ही जान कहलाते हैं. चलनको अगर अलग माना जाए, जो असलमें है नहीं, और उसकी कोई सिफ्त (बोल या परिभाषा) तय की जाए तो वह होगी, 'जो हर छन बदलता रहे वह चलन' मतलब यह कि चाल-चलनके कायदे बदलते रहने चाहिएं. पर समाज है कि उनको बदलने ही नहीं देता.

आजकी रूढ़ियोंके पास आज टिके रहनेकी कोई काबलियत नहीं है. उनका यह हाल है कि वह आप ही आपसमें टकराती हैं. ईश्वरकी इच्छा जैसे मानी नहीं जा सकती, ठीक वैसे ही चालचलनके मामलेमें प्रकृतिकी इच्छा भी समझी नहीं जा सकती. चाल-चलनके अटल नियम न धर्म-शास्त्र बना सकते हैं और न साइंस तैयार कर सकती है. हवा बदलनेपर चाल-चलन बदलेगा ही; जैसे पानी गरमीमें उड़ेगा ही और सर्दीमें जमेगा ही.

पानी अगर बहते रहकर यह समझता है कि वह बेगुनाह है तो भूल करता. अगर जमकर या उड़कर यह समझता है कि वह गुनाह करता है तो भी भूल करता है. ठीक इसी प्रकार आदमी अपनेको गुनहगार समझकर उतनी ही भूल करता है जितनी अपनेको बेगुनाह समझकर. भड़किए नहीं. बात यह है कि चालचलनके मामलेमें जमीर यानी अंतरात्मा एकदम खामोश रहता है, तभी तो बच्चा बेगुनाह कहा गया है.

बच्चेका अन्तरात्मा बच्चेको कभी गुनहगार नहीं समझता, भले ही वह अपना पेशाब भी पी ले या कोई गलीज चीज मुंहमें रख ले. उसकी बाहरी आत्माने, चालचलनका न अभी खुद ही मोल लगाया है और न समाजके लगाए मोलको माना है. कोई काम ऐसा है ही नहीं जो अपने आपमें पूरा नेक या पूरा बद हो. फिर अन्तरात्मा खामोश न रहे तो क्या करे. सुख इसीमें है कि हम अपने कामोंका आप ही मोल लगाएं.

दुनिया दिन-दिन नहीं, दिनके ही घण्टेमें कई बार बदलती है. शाह अमानुल्लाकी बेगम सुरैया बुरकेमें सोई थी और बे-बुरके उठी थी. टर्की में तो सारे मुल्ककी औरतोंके परदेकी कायापलट एक रातमें हो गई थी. और बिहारके जलजलेमें क्या हुआ था. बिहारमें जिन औरतोंने अपने चालचलनका अपने आप मोल आंका वे बच गई और जिन्होंने समाजके मोलको ठीक समझा वे मिट्टीमें दबकर मिट्टी बन गई! जो यह समझता है कि उसका हर एक काम वैसा होता है जैसा पहले कभी हुआ ही नहीं, उसको अपने कामोंका मोल आंकना सीखना ही पड़ता है.

अब यह पता चल गया कि रूढ़ि किसे कहते हैं और समाज किस को फूँककर हमें अपने काबूमें करता है.

रूढ़ि चालचलनका वह तरीका या कायदा है जो यह कहता है कि किसीका कोई काम अनोखा नहीं होता. सब काम हमेशा वैसे ही होते हैं जैसे होते आए हैं और आगे भी वैसे ही होते रहेंगे. समाजका मंत्र यह है कि दुनिया हमेशासे एक ही चालपर चल रही है और चलती रहेगी, उसमें कोई बदलाव नहीं होता. समाजने रूढ़िके जरिए यह तय कर दिया है कि यह काम बुरा, इसकी सजा मिलेगी या तुम खुद ही सजा ले लो. पर सचाई इसके खिलाफ है और साइंस गवाह है. सचाई यह है कि काम कामके सिवा कुछ नहीं. वह अपने आपमें अच्छा बुरा कुछ नहीं है. नतीजेको या फिर नीयतको कोई देख-सुन नहीं सकता और जान भी नहीं सकता. उसको तो करनेवाला ही जानता है. यही वजह है कि समाजके बताए हुए बहुत-से बुरे कामोंका नतीजा अच्छा होता देखा जाता है और

उसीके बताए बहुत-से भले कामोंका नतीजा बेहद बुरा निकलता पाया गया है दोनोंकी मिसाल बेहद हैं, सब जानते भी हैं, मिसालोंका देना बेकार है.

ज्ञान चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है, समझदारीसे काम लो, पर नासमझ जनता रूढ़िके चालचलनसे चिपकी हुई है और समझदारीके कान बन्द किए हुए है. जिनके हाथमें समाज है, उन पंडोंमें से बहुत-से जो नासमझ हैं, वह तो रूढ़ियोंको ठीक समझते हैं और उनको जनताकी तरह ही मानते हैं. पर जो पंडे समझदार हैं और जो खुद रूढ़ियोंको न ठीक समझते हैं और न उनको काममें लाते हैं, वह लालचमें फंसे रूढ़ियोंको ठीक बताते हैं और जनताको बहकाते हैं. यों रूढ़ियां जिन्दा हैं और समाज आगे बढ़नेसे रुका हुआ है.

रूढ़ियां एक ही लकड़ीसे सबको हांकती हैं. इनमें न उम्रकी तमीज और न अक्लकी. मिसालके लिए पांच बरसके दुलहेको ऐसे ही सजाया जाएगा जैसे पच्चीस बरसके जवानको या साठ बरसके बूढ़ेको. और तीनों जानवर बने, कान पूँछ हिलाए बिना, सज लेंगे, भले ही उनका जमीर अन्दरसे उनको कोंचता रहे !! मजबूत कमजोर तकका ख्याल वहां नहीं है, गरीब-अमीरका तो ख्याल ही कौन करता. इसका तो यह मतलब हुआ कि हम बच्चेसे जवान होकर बदलते ही नहीं है और न अपढ़को पढ़ा-लिखाकर बदला जा सकता है. फिर गरीबसे पैसेवाले होकर तो हममें कोई फर्क आ ही कैसे सकता है.

इतनी गलत बात, जिसपर जरा भी अक्लपर जोर देनेकी जरूरत नहीं, हमको क्यों गलत नहीं दिखाई देती ? हम कैसे मान लें कि हम हम नहीं हैं ? कौन नहीं जानता कि वह अपनी उम्रमें कितनी बार ऐसा बदलता है कि उसको अपने पर भी शक होने लगता है कि क्या वह वही है जो बचपनमें था या जवानीमें था. फिर भी वह उन रूढ़ियोंको क्यों ठीक समझता है जो बचपन और जवानीमें एक ही रहतीं हैं, या गरीबी-अमीरीमें बिल्कुल नहीं बदलतीं ?

रूढ़ियां हमारी समझका मजाक उड़ाती हैं और हम समझसे काम लेना नहीं चाहते. समाजके दबावसे या अपनी कमजोरीसे यह हम कभी नहीं कर सकते कि समझको नासमझीके अमूल समझा दें. पानी आगकी गर्मी अपनाकर जैसे फफोला ही डालेगा वैसे ही समझ नासमझीकी बेवकूफी अपनाकर ठोकरें ही खाएगी और कदम-कदमपर जिन्दगीको दुखी ही बनाएगी. हमको अपने जमीरको ऐसा बनाना होगा कि वह उन कायदोंको नही माने जो छोटे-बड़ेमे तमीज ही नही करते. वह बड़ोंके साथ उन रस्मोंको हरगिज ठीक न समझेगा जो छोटोंके साथ की जाती है. वह उन रस्मोंको हरगिज न मानेगा जो अबसे कुछ वर्ष पहले जैसे काममें आती थी वैसे ही आज आती है. वह उन रूढ़ियोंको बेकार समझेगा जो पंजाब और बंगालमें एक ही तरह काममें आती है.

खुलासा यह कि चालचलन ऐसा ही ठीक समझा जाएगा जो उम्र, अक्ल, तन्दुरुस्ती, वक्त, मुल्क वगैर के लिहाजसे बदलनेकी काबलियत रखता हो. जब यह साफ देखनेमें आता है कि जो काम एकके लिए बेहद बुरा है वह दूसरेके लिए बेहद अच्छा है और यह कि जो एक उम्र मे बेहद बुरा वह दूसरी उम्रमें बेहद अच्छा है. तब क्यों रूढ़ियोंसे चिपटा जाए और उनकी बेजा इज्जत की जाए.

रूढ़ियोंको ठुकरानेका डर नहीं, तो रुठानेका डर क्यों ?